इकाई 1 रोग का अर्थ, परिभाषा एवं कारण, रोगों का वर्गीकरण

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 रोग का अर्थ
1.4 रोग की परिभाषा
1.5 रोग के कारण
1.6 रोगों का वर्गीकरण
1.6.1 शारीरिक रोग
1.6.2 मानसिक रोग
1.6.3 आध्यात्मिक रोग
1.7 सारांश
1.8 पारिभाषिक शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, वर्तमान समय में रोग शब्द अत्यन्त व्यापक रुप से समाज में फैला है। इसे बिमारी, व्याधि व डिजीज आदि नामों से जाना जाता है। प्राचीन काल में जब मनुष्य का आहार विहार संयमित था तथा वह निश्चित समय पर शयन व जागरण करता हुआ दिनचर्या व ऋतुचर्या का पालन करता था उस समय वह प्रायः रोगमुक्त जीवन व्यतीत करता था किन्तु आधुनिकता के दौर में व पश्चिमी दर्शन को अपनाने के कारण जब मनुष्य का आहार विहार असंयमित हुआ, उसके उठने के समय से लेकर दिनचर्या व ऋतुचर्या अव्यवस्थित हुई, उसके आहार में अप्राकृतिक रासायनिक पदार्थो का प्रयोग एवं दवाईयों का प्रयोग बढा, तब से समाज में रोगों की एक बाढ सी आ गई। वर्तमान समय में छोटे बच्चों से लेकर व्यस्क व वृद्ध तक लगभग सभी किसी न किसी रोग से जूझ रहें है। नित्य समाज में नये–नये रोग जन्म ले रहें हैं। आधुनिक समय में रोगों नें इस प्रकार समाज को घेरा कि चिकित्सकों के पास रोगियों की लम्बी–लम्बी लाइनें लगी रहती है, चिकित्सालयों में रोगियों को भर्ती करने के लिए स्थान कम पड रहा है तथा अनेकों मनुष्य विभिन्न गम्भीर रोगों से ग्रस्त होकर असमय मृत्यु के मुख में समा रहें हैं। रोग ने समाज को इस प्रकार भयभीत कर रखा है कि प्रत्येक मनुष्य इसके नाम से ही डरता है। वास्तव में रोग आज के समय की एक बडी समस्या के रुप में उभरी है।

रोगों के इस व्यापक स्वरुप को जानने के बाद अब आपके मन में रोगों के अर्थ, कारण तथा वर्गीकरण (प्रकरों) को जानने की जिज्ञासा उत्पन होनी स्वाभाविक है अतः अब हम रोगों के अर्थ, कारण तथा वर्गीकरण का सविस्तार अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- रोग का अर्थ की विवेचना कर सकेंगे।
- रोगों का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- रोग को परिभाषित करने में सक्षम हो सकेंगे।
- रोग के कारणों का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकेंगे।
- रोगों को वगीकृत कर समझाने में सक्षम हो सकेगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

1.3 रोग का अर्थ

रोग का अर्थ शरीर, मन एवं आत्मा की उस अवस्था से है जिसमे शरीर, मन एवं आत्मा अपने सामान्य कार्यो को सामान्य रुप से सम्पादित करने में असक्ष्म होते हैं। शरीर के सामान्य कार्यो में श्वसन, पाचन, उर्त्सजन, रक्त परिसंचरण, व गतिशीलता आदि क्रियाओं अर्थात कार्यो का वर्णन आता है, वह अवस्था जब शरीर अपने इन कार्यो को सामान्य रुप से करने में असक्ष्म होता है, शारीरिक रोग कहलातें हैं। इसी प्रकार मन के सामान्य कार्यो में मानसिक सोच–विचार, मनन–चिन्तन, व मानसिक संवेग– आवेग आदि क्रियाओं का समावेश होता है, वह अवस्था जब मन अपने इन कार्यो को सामान्य रुप से करने में असक्ष्म होता है, मानसिक रोग अथवा मनोरोग कहलातें हैं। वह अवस्था जब आत्मा में ऊर्जा (आध्यात्मिक ऊर्जा) की कमी हो जाती है तथा आत्महीनता की अवस्था उत्पन्न होती है, आध्यात्मिक रोग कहलाते हैं। रोग का अर्थ शरीर, मन एवं आत्मा की उस नकारात्मक अवस्था से भी होता है जिसमें शरीर , मन, व आत्मा की ऊर्जा में ह्रास हो जाता है। ऊर्जा में ह्रास होने पर शरीर, मन एवं आत्मा की अपने कार्यो के प्रति सक्रियता कम हो जाती है तथा इनके कार्यो में असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है। शरीर में ऊर्जा की कमी होने पर यह स्वंम को कार्य करने में असक्ष्म अनुभव करता है , ठीक इसी प्रकार मन व आत्मा में भी ऊर्जा की कमी होने पर यें स्वंम को कार्य करने में असक्ष्म अनुभव करते हैं, इस अवस्था के अर्न्तगत शरीर, मन एवं आत्मा में एकरुपता का अभाव हो जाता है।

रोग के अर्थ को अलग– अलग चिकित्सा पद्धतियों में अलग–अलग रुपों में परिभाषित किया गया है–

(क) एलोपैथी चिकित्सा के अनुसार–

शरीर में भौतिक कारणों से रासायनिक असन्तुलन होने पर अथवा बाहय रोगाणु के संक्रमण होने पर शरीर की चयापचय दर सन्तुलन का बिगडने का अर्थ रोग है।

(ख) आयुर्वेद के अनुसार–

आयुर्वेद शास्त्र में शरीर के वात पित्त व कफ नामक त्रिदोषों, अग्नियों, धातुओं व मलों की विषम अवस्था को रोग के अर्थ में लिया जाता है। इसके साथ साथ इन्द्रियों, मन व आत्मा की प्रसन्न अवस्था स्वास्थ्य जबकि इनकी दुखद का अर्थ रोग है।

(ग) प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार–

प्राकृतिक चिकित्सा में शरीर की उत्पत्ति का आधार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश नामक पंचमहाभूतों को माना गया गया है, शरीर में इन पंचमहाभूतों का समयोग स्वास्थ्य तथा इन महाभूतों की विषम अवस्था का अर्थ रोग है।

(घ) एक्यूप्रेशर चिकित्सा के अनुसार–

एक्यूप्रेशर चिकित्सा में शरीर के आन्तरिक अगों की ऊर्जा को स्वास्थ्य के अर्थ में लिया जाता है, शरीर से इस ऊर्जा के क्षय का अर्थ रोग है। इसके साथ साथ शरीर में विषाक्त तत्वों (होमोटाक्सिन्स) की श्रखंला बनने का अर्थ रोग है।

(घ) योग चिकित्सा एवं प्राण चिकित्सा के अनुसार–

योग चिकित्सा एवं प्राण चिकित्सा में प्राण ऊर्जा को शरीर एवं मन के स्वास्थ्य का आधार माना जाता है। विभिन्न योगांगों का अभ्यास इस प्राण ऊर्जा में वृद्धि के उद्देश्य से किया जाता है। शरीर एवं मन मे इस प्राण ऊर्जा के अभाव का अर्थ शारीरिक एव मानसिक रोग है।

(घ) स्पर्श चिकित्सा (रैकी) के अनुसार–

मनुष्य शरीर के बाहर व अन्दर ब्राहमाण्डीय ऊर्जा प्रवाह (आभा मण्डल) रहता है। इस ऊर्जा प्रवाह में सकारात्मक ऊर्जा की प्रबलता स्वास्थ्य जबकि इस ऊर्जा प्रवाह में नकारात्मक ऊर्जा की अधिकता का अर्थ रोग है।

प्रिय पाठकों स्वास्थ्य एक सकारात्मक अवस्था है जबकि इसके विपरित रोग वह नकारात्मक अवस्था है जो शरीर, मन व आत्मा पर नकारात्मक प्रभाव रखती है। सभी चिकित्सा पद्धतियां इस तथ्य को अलग अलग रुपों में वर्णित अवश्य करती हैं किन्तु मूल रुप से सभी विचारधाराओं में रोग का अर्थ एक समान भाव में (नकारात्मक) परिलक्षित होता है।

1.4 रोग की परिभाषा

प्रिय पाठकों चूकिं रोग एक नकारात्मक अवस्था है तथा स्वास्थ्य एक सकारात्मक अवस्था है अतः अधिकतर विद्धानों द्वारा स्वास्थ्य को परिभाषित किया गया है, वास्तव में इस स्वास्थ्य की विपरित अवस्था ही रोग है। स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए आयुर्वेद शास्त्र के विद्धान आचार्य सुश्रुत प्रसिद्ध ग्रन्थ सुश्रुत संहिता में कहते हैं–

समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रिय।
प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनः स्वस्थ इत्यभीधियते।।

(सुश्रुत संहिता 15/41)

अर्थात जिसके त्रिदोष सम अवस्था में हैं, जिसके शरीर में अग्नियों का व्यापार सम है, जिसके शरीर में धातुएं सम मात्रा में उपस्थित हैं तथा शरीर में मलों की सम स्थिति है। इसके साथ साथ

जिसकी इन्द्रियां, मन व आत्मा में प्रसन्नता के भाव हैं, वही व्यक्ति स्वस्थ है।

इसके विपरित वह व्यक्ति जिसमें इसके विपरित लक्षण प्रकट हो रहे हैं, वह अस्वस्थ अथवा रोगी व्यक्ति है।

इसी प्रकार विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) द्वारा स्वास्थ्य को परिभषित करते हुए कहा गया है–

Health is a state of complete Physical , Mental, Social and Sptiritual well being and not merely the absence of disease or infirmity.

अर्थात केवल रोगों की अनुपस्थिति मात्र को ही स्वास्थ्य नही कहा जा सकता है अपितु स्वास्थ्य तो वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्तर पूर्ण रुप से स्वस्थ हो।

1.5 रोग के कारण

रोग के कारण के संदर्भ में अलग अलग चिकित्सा पद्धतियां अलग अलग धारणाएं रखती है, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

(क) एलोपैथी चिकित्सा (आधुनिक चिकित्सा विज्ञान) के अनुसार–

एलोपैथी चिकित्सा पद्धति के अनुसार शरीर में बाहय रोगाणु (जीवाणु अथवा विषाणु) का संक्रमण रोग का मूल कारण है। बाहय रोगाणु के संक्रमण होने से शरीर में अनेक असामान्य एवं असहज लक्षण रोग के रुप में प्रकट होते हैं।

बाहय भौतिक कारण (दुर्घटनाएं व प्रदूषण) रोग के प्रमुख कारण हैं। इसके साथ साथ भोजन से शरीर लिए आवश्यक पोषक तत्व प्राप्त नही होने पर शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं। शरीर में स्रावित होने वाले हार्मोन्स भी रोगों के लिए जिम्मेदार होते हैं। शरीर में हार्मोन्स के असन्तुलन होने पर भी शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं।

(ख) आयुर्वेद चिकित्सा के अनुसार–

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के अनुसार विकृत आहार विहार रोग का मूल कारण होता है। विकृत आहार विहार के कारण शरीर के वात पित्त कफ नामक त्रिदोषों में विकृति उत्पन्न होती है, जिसके कारण शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं। विकृत आहार विहार के कारण ही शरीर की धातुओं एवं मलों में विषमता उत्पन्न होती है। ये विषमताएं विभिन्न रोगों को उत्पन्न करती है।

(ग) प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार–

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में अप्राकृतिक जीवन यापन एवं अप्राकृतिक आहार विहार को रोग के मूल कारण के रुप में स्वीकार किया जाता है। इसके अनुसार अप्राकृतिक जीवन यापन एवं अप्राकृतिक आहार विहार के कारण शरीर में विजातीय पदार्थो का भण्डारण होने लगता है । जब शरीर में विजातीय विषों की मात्रा अधिक हो जाती है तब इन विषों को शरीर से बाहर निकालने के लिए शरीर को रोग का सहारा लेना पडता है।

(घ) एक्यूप्रेशर चिकित्सा के अनुसार–

एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति के अनुसार कार्य करते समय शरीर में विषक्त तत्वों (होमोटाक्सिन्स) की उत्पत्ति होती है। शरीर में ये विषाक्त तत्व एक श्रृखंला का निर्माण कर लेते हैं। यह श्रृखंला जिस अंग अथवा स्थान पर बनती है, उस अंग अथवा स्थान में ऊर्जा प्रवाह बाधित हो जाता है परिणाम स्वरुप उस अंग से सम्बन्धित रोग उत्पन्न हो जाता है।

(घ) योग चिकित्सा एवं प्राण चिकित्सा के अनुसार–

योग चिकित्सा एवं प्राण चिकित्सा के अनुसार शरीर में जीवनी शक्ति का ह्रास होना ही रोग का मूल कारण है। विकृत आहार विहार एवं योगमय जीवनशैली के स्थान पर भोगमय जीवनशैली

(दिनचर्या, रात्रिचर्या व ऋतुचर्या का पालन नही करना) का अनुकरण करने से जब शरीर में विषाक्त तत्वों की मात्रा बढ जाती है तब शरीर की जीवनी शक्ति कम हो जाती है तथा शरीर रोगों से ग्रस्त हो जाता है।

(घ) स्पर्श चिकित्सा (रैकी) के अनुसार–

स्पर्श चिकित्सा (रैकी) के अनुसार शरीर में नकारात्मक ऊर्जा की अधिकता ही रोग का मूल कारण है। नकारात्मक ऊर्जा की अधिकता होने पर विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक रोग पैदा हीते हैं।

उपनिषद साहित्य में रोगों व उनके कारणें पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि मानव शरीर में रोग दो प्रकार (कारण) से आते हैं –

(A) **प्रारब्ध :** पूर्वजन्म के बुरे कर्मों के फलभोग हेतु मानव को रोग प्राप्त होते हैं।

(B) **कुपथ्य जन्य :** निषिद्ध खान पान एवं असंयमित आहार विहार के कारण रोग उत्पन्न होते हैं। इन कुपथ्य जन्य रोगों के भी चार प्रकार होते हैं–

(I) **साध्य रोग :** ऐसे रोग जो औषध सेवन से दूर हो जाते हैं, साध्य रोग कहलाते हैं।

(II) **कृच्छसाध्य रोग :** ऐसे रोग जो अधिक औषध सेवन तथा आहार विहार पर पूर्ण संयम करने के उपरान्त ही ठीक होते है, कृच्छसाध्य रोग कहलाते हैं।

(III) **याप्य रोग :** ऐसे रोग जो औषध सेवन एवं आहार विहार संयम के प्रभाव से दब जाते हैं, याप्य रोग कहलाते हैं।

(IV) **असाध्य रोग :** ऐसे रोग जो औषध सेवन एवं आहार विहार पर संयम के उपरान्त भी ना ही ठीक होते हैं तथा ना ही दबते हैं, असाध्य रोग कहलाते हैं।

प्रिय पाठकों रोग के कारणों का ज्ञान प्राप्त करने के बाद अब आपके मन में निश्चित ही इन रोगों के विषय में ओर अधिक जानने की जिज्ञासा अवश्य उत्पन्न हुई होगी। अब आपके मन में यह प्रश्न उत्पन्न होना भी स्वाभाविक ही है कि इन रोगों की विस्तृत स्वरुप को हम किस प्रकार वर्गीकरत कर सकते हैं अतः अब हम रोग के वर्गीकरण का अध्ययन करते हैं।

1.6 रोगों का वर्गीकरण

रोगों का वर्गीकरण करने से पूर्व आपको यह तथ्य भी स्पष्ट कर लेना चाहिए कि भले ही अलग अलग पद्धतियां रोग के कारणों को अलग अलग मानती हैं किन्तु रोगों के वर्गीकरण के संदर्भ में प्राय सभी पद्धतियों में समानताएं दृष्टिगोचर होती हैं। यहां पर सभी रोगों को निम्न लिखित तीन वर्गो में वर्गीकरत किया गया है।

रोगों के इन तीन वर्गो का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

1.6.1 शारीरिक रोग–आधुनिक विज्ञान मानव शरीर को कुल ग्यारह तंत्रों में विभाजित करता है। जब तक शरीर के ये तंत्र अपने कार्यों को भली भातिं सम्पादित करते रहते हैं तब तक यह शरीर स्वस्थ बना रहता है किन्तु जब इन तंत्रों में विकार उत्पन्न हो जाता है और ये तंत्र अपने कार्यों को भली भातिं सम्पादित करने में असक्ष्म हो जाते हैं, शरीर की यह अवस्था शारीरिक रोग कहलाती है। मनुष्य के शारीरिक रोगों को हम इस प्रकार वर्गीकरत कर सकते हैं–

(A) **पाचन तंत्र के रोग :** पाचन तंत्र के द्वारा भोजन के पाचन, अवशोषण एवं निष्कासन की किया को सही प्रकार नही करने की अवस्था पाचन तंत्र के रोग कहलाती है। इसके अर्न्तगत अपच, एसाडिटी, मधुमेह एवं कब्ज आदि रोगों का वर्णन आता है।

(B) **श्वसन तंत्र के रोग** : श्वसन तंत्र के द्वारा बाहय वायुमण्डल से आक्सीजन एवं शरीर से कार्बन डाई आक्साइड के आदान प्रदान की क्रिया को सही प्रकार नही करने की अवस्था श्वसन तंत्र के रोग कहलाती है। इसके अर्न्तगत खांसी, जुकाम एवं दमा आदि रोगों का वर्णन आता है।

(C) **उत्सर्जन तंत्र के रोग** : उत्सर्जी पदार्थो को शरीर से बाहर निकालने की क्रिया को सही प्रकार नही करने की अवस्था उत्सर्जन तंत्र के रोग कहलाती है। इसके अर्न्तगत वृक्क शोथ, वृक्क प्रदाह, वृक्क में पथरी एवं बहुमूत्र आदि रोगों का वर्णन आता है।

(D) **अस्थि तंत्र के रोग** : शरीर को आकार प्रदान करने वाली अस्थियों एवं उपास्थियों में विकृति अस्थि तंत्र के रोग कहलाती है। इसके अर्न्तगत हड्यिों में टेडापन तथा जोडों मे दर्द आदि रोगों का वर्णन आता है।

(E) **पेशिय तंत्र के रोग** : शरीर को गति प्रदान करने वाली मॉसपेशियों की विकृति पेशिय तंत्र के रोग कहलाती है इसके अर्न्तगत पेशियों में दर्द, पेशियों में जकडन तथा पेशियों में सूजन आदि रोगों का वर्णन आता है।

(F) **अध्याावरणीय तंत्र के रोग** : सम्पूर्ण शरीर को सुरक्षात्मक आवरण प्रदान करने वाली त्वचा से सम्बन्धित रोग अध्याावरणीय तंत्र के रोग कहलाती है। इसके अर्न्तगत त्वचा में खुजली, दाने, फोडे फुसीं आदि रोगों का वर्णन आता है।

(G) **रक्त परिसंचसण तंत्र के रोग** : सम्पूर्ण शरीर में परिभ्रमण करने वाली शरीर की महत्वपूर्ण धातु रक्त एवं हृदय की विकृति रक्त परिसंचरण तंत्र के रोग कहलाती है। इसके अर्न्तगत रक्त अल्पता, उच्च व निम्न रक्तचाप तथा हृदय से सम्बन्धित रोगों का वर्णन आता है।

(H) **अन्तःस्रावी तंत्र के रोग** : विभिन्न हार्मोन्स के द्वारा शरीर की चयापचय दर को सन्तुलित करने वाली अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से सम्बन्धित रोग अन्तःस्रावी तन्त्र के रोग कहलाते है। इसके अर्न्तगत मधुमेह, थायराइड, बौनापन व बांझपन आदि रोगों का वर्णन आता है।

(I) **प्रतिरक्षा तंत्र के रोग** : बाहय वातावरण में उपस्थित विषाणुओं, जीवाणुओं एवं रोगाणुओं से शरीर की सुरक्षा सही प्रकार नही करने की अवस्था प्रतिरक्षा तंत्र के रोग कहलाती है। इसके अर्न्तगत जुकाम, बुखार एवं हैजा आदि रोगों का वर्णन आता है।

(J) **तंत्रिका तंत्र के रोग** : शरीर की आन्तरिक एवं बाहय क्रियाओं को नियंत्रित करने वाले मस्तिष्क एवं नाडियों द्वारा सही प्रकार कार्य नही करने की अवस्था तंत्रिका तंत्र के रोग कहलाती है। इसके अर्न्तगत नर्वस विकनैस, दुर्बल स्मरण शक्ति, हाथों व पैरौं में कम्पन्न एवं तंत्रिकाओं से सम्बन्धित रोगों का वर्णन आता है।

(K) **प्रजनन तंत्र के रोग** : अपने वंश को आगे बढाने हेतु अपने समान रुप रंग एवं गुण कर्म स्वभाव वाली सन्तान उत्पन्न करने की क्षमता में कमी की अवस्था प्रजनन तंत्र के रोग कहलाती है। इसके अर्न्तगत बांझपन आदि रोगों का वर्णन आता है।

1.6.2 मानसिक रोग– मनुष्य द्वारा मानसिक क्रियाओं अथवा कार्यो को भली प्रकार सम्पादित नही कर पाने की अवस्था मानसिक रोग कहलाती है। मन में अपनी एक विषेश

प्रकार की ऊर्जा होती है जिसे मानसिक ऊर्जा की संज्ञा दी जाती है। इसके माध्यम से विभिन्न मानसिक कार्य किए जाते हैं, विषयों पर विचार मंथन किया जाता है, तर्क वितर्क किया जाता है, पूर्व की अनुभूतियों को संचित किया जाता है तथा भविष्य की योजनाओं का निर्माण किया जाता है। जब इस मानसिक ऊर्जा में वृद्धि अथवा कमी (असन्तुलन) हो जाती है तब इस असन्तुलन की अवस्था में उपरोक्त मानसिक कार्य भली भांति सम्पादित नही हो पाते अथवा इन मानसिक कार्यो में बाधा उत्पन्न होने लगती है, इस अवस्था को मानसिक रोग अथवा मनोरोग कहा जाता है। कुछ विद्वानों द्वारा इसकी व्याख्या मानव व्यवहार के साथ जोडकर करते हुए कहा गया है कि यदि किसी मनुष्य के व्यवहार में सकारात्मकता का अभाव है तथा वह व्यक्ति दूसरों के साथ अपना सामंजस्य स्थापित नही कर पाता है तब उस व्यक्ति को मानसिक रोगी की श्रेणी में रखा जा सकता है। अध्ययन के दृष्टिकोण से मानसिक रोगों को मुख्य रुप से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

(A) **उत्तेजनात्मक प्रभाव वाले मानसिक रोग** : इसके अर्न्तगत उन मनोरोगों का वर्णन आता है जिसमें मानसिक ऊर्जा में असामसन्य रुप से वृद्धि हो रही होती है। मानसिक तनाव, उद्विग्नता, क्रोध, ईष्या, बैचेनी एवं अनिन्द्रा, आदि रोग इस वर्ग के रोग हैं।

(B) **शामक प्रभाव वाले मानसिक रोग** : इसके अर्न्तगत उन मनोरोगों का वर्णन आता है जिसमें मानसिक ऊर्जा में असामसन्य रुप से कम हो जाती है। मानसिक अवसाद, उत्साह का अभाव, चिन्ता, घबराहट, स्मरण शक्ति में कमी, अतिनिन्द्रा व आलस्य आदि रोग इस वर्ग के रोग हैं।

प्रिय विधार्थियों मानसिक रोगों का प्रभाव मन के साथ साथ शरीर पर भी पडता है। मन की असन्तुलित ऊर्जा शरीर का चयापचय दर को भी असन्तुलित कर देती है जिससे शरीर के तंत्रों में विकृति (शारीरिक रोग) उत्पन्न हो जाती है। उदाहरण के लिए मानसिक तनाव की अवस्था में उत्तेजक हार्मोन्स का स्रावण अधिक मात्रा में होने के कारण रक्तचाप बढ जाता है, जो हृदय पर प्रतिकूल प्रभाव रखता हुआ हृदय रोग को जन्म देता है। इस प्रकार मानसिक तनाव का सम्बन्ध हृदय के साथ स्वीकार करते हुए आधुनिक चिकित्सक अधिकांश शारीरिक रोगों को रोगों को मनोशारीरिक रोगों (Pshycosomatic Disease) की श्रेणी में रखते हैं जिनकी उत्पत्ति मन से होने के बाद जिनका प्रभाव सम्पूर्ण शरीर पर पडता है।

1.6.3 आध्यात्मिक रोग– आध्यात्मिक रोगों का सम्बन्ध आत्मा की ऊर्जा से होता है । आत्मा की यह ऊर्जा आध्यात्मिक ऊर्जा (चेतना) कहलाती है। इस ऊर्जा के माध्यम से आत्मा क्रियावान एवं बलवान बना रहता है जबकि इस ऊर्जा के अभाव में आत्मा बलहीन हो जाता है। आत्मा की यह बलहीनता एवं रुग्णता की अवस्था आध्यात्मिक रोगों को जन्म देती है।

विकृत आहार विहार करते हुए कुमार्ग पर चलने से, भजन, कीर्तन, सत्संग एवं स्वाध्याय आदि के अभाव से आत्मा की आध्यात्मिक ऊर्जा क्षीण पड जाती है तथा वह व्यक्ति आध्यात्मिक रोगों से ग्रस्त हो जाता है। आध्यात्मिक ऊर्जा के क्षीण पडने का नकारात्मक प्रभाव मानसिक एवं शारीरिक स्तर पर भी पडता है इससे उसकी मानसिक एवं शारीरिक ऊर्जा भी कमजोर पड जाती है तथा इसी कारण आध्यात्मिक रोगों से ग्रस्त व्यक्ति जल्दी ही मानसिक एवं शारीरिक रोगों की चपेट में भी आ जाता

है। तार्त्पय यह कि आध्यात्मिक रोग मानसिक एवं शारीरिक रोगों की तुलना में अधिक गम्भीर होते हैं जो व्यक्ति के मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य को भी प्रभावित करते हैं। आध्यात्मिक रोगों के अर्न्तगत आत्मबल में कमी, आन्तरिक भय की अनुभूति, आन्तरिक अशान्ति, कमजोर एवं प्रभावहीन व्यक्तित्व एवं हीनता के भाव आदि रोगों का वर्णन आता है।

प्रिय पाठकों वैदिक शास्त्रों (उपनिषद्) में उदाहरण देकर समझाया गया है कि जो सम्बन्ध एक रथ, सारथी एवं रथी का होता है, वही सम्बन्ध शरीर ,मन एवं आत्मा का होता है। वहां पर शरीर की तुलना रथ के साथ, मन की तुलना सारथी के साथ एव आत्मा की तुलना रथी के साथ की गयी है। जिस प्रकार रथ, सारथी एवं रथी आपस में गहराई से जुडे होते हैं, उसी प्रकार शरीर, मन एवं आत्मा का आपस में बहुत घनिष्ट सम्बन्ध होता है। इस घनिष्टता के कारण शारीरिक रोग, मानसिक रोग एवं आध्यात्मिक रोग एक दूसरे के पूरक होते हैं अर्थात शरीर रुपी रथ में शारीरिक रोग होते ही मन रुपी सारथी में मानसिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं जो आगे चलकर आत्मा रुपी रथी में भी हलचल अर्थात आध्यात्मिक रोगों को पैदा कर देते हैं।

आयुर्वेद शास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ माधवनिदान में रोग के प्रकारों पर प्रकाश डालते हुए इसमें तीन प्रकार के रोगों का वर्णन किया गया है–

(A)कर्मज रोग –अकरणीय कर्मो के परिणामस्वरुप उत्पन्न रोग कर्मज रोग कहलाते है। ये रोग योग्य कर्मों को करने से ठीक हो जाते हैं।

(B)दोषज रोग –वात,पित्त कफ नामक त्रिदोषों की विषमता उत्पन्न रोग दोषण रोग कहलाते है।यें रोग औषधियों के सेवन से ठीक हो जाते है।

(C)उभयज रोग –इन दोनों अवस्थाओं से उत्पन्न रोग उभयज रोग कहलाते हैं। यें रोग योग्यकर्मो, औषधियों के साथ–साथ जप, तप व दान आदि से ठीक हो जाते हैं।

शरीर में होने वाली पीडा अथवा कष्टों के आधार पर रोगों को चार भागों में बांटा जाता है–

(A) शारीरिक रोग – हाथ–पैर, पेट व सिर आदि शारीरिक अगों में होने वाली पीडा शारीरिक रोग कहलाती है।

(B) मानसिक रोग – काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईष्या, द्वेष आदि विकारों के कारण उत्पन्न होने वाली पीडा मानसिक रोग कहलाती है।

(C) आगन्तुक रोग – दैवीय आपदा जैसे अत्यधिक गर्मी, सर्दी, बरसात आदि के कारण उत्पन्न पीडा आगन्तुक रोग कहलाती है।

(D) स्वभाविक रोग – भूख–प्यास, निन्द्रा–अनिन्द्रा आदि प्रतिदिन की अनुभूतियों से उत्पन्न पीडा स्वभाविक रोग कहलाती है।

प्राकृतिक चिकित्सा में रोग के दो वर्गों (प्रकारो) का वर्णन किया गया है–

(A) व्रीव रोग (Acute Disease)

(B) जीर्ण रोग (Chronic Disease)

(A) व्रीव रोग (Acute Disease) :

व्रीव रोगों से तात्पर्य उन रोगों से होता है जो तेजी से शरीर में आते है एवं उसी व्रीवता के साथ शरीर से चले जाते हैं। इन रोगों के द्वारा शरीर की सफाई होती है

तथा सफाई होने से शरीर की जीवनी शक्ति एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है। इस प्रकार इन व्रीव रोगों को शरीर के लाभकारी अर्थात मित्र रोगों की श्रेणी में रखा जाता है। व्रीव रोग साध्य श्रेणी के रोग होते हैं। व्रीव जुकाम, बुखार, खाँसी, वमन एवं पेचिश आदि इस वर्ग के रोग हैं।

(B) जीर्ण रोग (Chronic Disease) :

जीर्ण रोगों से तात्पर्य उन रोगों से होता है जो धीरे धीरे शरीर में आते है एवं शरीर में आने के बाद शरीर में ही ठहर जाते हैं। इन रोगों की समयावधि बहुत अधिक होती है तथा समायावधि अधिक होने से इन रोगों के कारण शरीर की जीवनी शक्ति एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है। इन जीर्ण रोगों को जीवन के लिए घातक माना जाता है क्योकि ये रोग शरीर की जीवनी शक्ति को कम करते हुए मृत्यु की ओर ले जाते हैं। लम्बे समय का जुकाम, बुखार, खाँसी, मधुमेह, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग एवं कैसंर आदि इस वर्ग के रोग हैं।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

1– **सत्य असत्य**

(क) रोग का अर्थ शरीर, मन एवं आत्मा की नकारात्मक अवस्था से होता है

(ख)शरीर में विषाक्त तत्वों की मात्रा बढने पर शरीर की जीवनी शक्ति भी बढ जाती है

(ग) आध्यात्मिक रोगों से ग्रस्त व्यक्ति जल्दी से मानसिक एवं शारीरिक रोगों की चपेट में नही आता है।

(घ) शारीरिक रोग मानसिक एवं आध्यात्मिक रोगों की तुलना में अधिक गम्भीर होते हैं

(ड) स्पर्श चिकित्सा (रैकी) के अनुसार शरीर में नकारात्मक ऊर्जा की अधिकता ही रोग का मूल कारण है।

2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) शारीरिक रोग, मानसिक रोग एवं आध्यात्मिक रोग एक दूसरे के ..... होते हैं।

(ख) मन की असन्तुलित ऊर्जा शरीर की ..... को असन्तुलित कर देती है।

(ग) व्रीव रोगों को ..... की श्रेणी में रखा जाता है।

(घ) बाह्य वातावरण में उपस्थित विषाणुओं, जीवाणुओं एवं रोगाणुओं से शरीर की सुरक्षा सही प्रकार नही करने की अवस्था ..... तंत्र के रोग कहलाती है।

(ड) योग चिकित्सा एवं प्राण चिकित्सा के अनुसार शरीर में ..... का ह्रास होना ही रोग का मूल कारण है।

3–बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) मानव रोगों को कुल कितने वर्गो में वर्गीकरत किया गया है–

(a) तीन (b) पांच

(c) आठ (d) ग्यारह

(ख) मन से उत्पन्न होने के बाद सम्पूर्ण शरीर को प्रभावित करने वाले रोग कहलाते हैं –

(a) शारीरिक रोग (b) मानसिक रोग

(c) आध्यात्मिक रोग (d) मनोशारीरिक रोग

(ग) दूसरों के साथ अपना सामंजस्य स्थापित नही कर सकने वाले व्यक्ति को किस श्रेणी में रखा जा सकता है–

(a) मानसिक रोगी की (b) शारीरिक रोगी की

(c) आध्यात्मिक रोगी की (d) इनमें से कोई नही।

(घ) मधुमेह, थायराइड, बौनापन व बांझपन आदि रोगों का सम्बन्ध किस तन्त्र से है–

(a) पाचन तन्त्र (b) अन्तःस्रावी तन्त्र

(c) श्वसन तन्त्र (d) उर्त्सजन तन्त्र

(ड) एलोपैथी चिकित्सा पद्धति के अनुसार शरीर में रोग का मूल कारण है

(a) बाहय रोगाणु (जीवाणु अथवा विषाणु) (b) भौतिक कारण

(c) हार्मोन्स (d) सभी

1.7 सारांश

प्रिय पाठकों प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त यह स्पष्ट होता है कि रोग का अर्थ विषम, विपरीत अथवा प्रतिकूल अवस्था से है जबकि स्वास्थ्य का अर्थ सम अथवा अनुकूल अवस्था से है। विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों में रोग रुपी प्रतिकूल अवस्था को अलग–अलग रुपों में अभिवयक्त किया गया हैं।

रोग को आचार्य सुश्रुत अपने ग्रथं सुश्रुत संहिता में अत्यन्त स्पष्ठ रुप में परिभाषित करते है तथा रोगों की अनुपस्थिति मात्र को ही स्वास्थ्य नही कहते हुये स्वास्थ्य शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक रूपों में अभिव्यक्त करते हैं।

रोगों के कारणों के सन्दर्भ में अलग–अलग चिकित्सा पद्धतियों में अलग–अलग धारणायें प्रस्तुत की गयी हैं जिसका सविस्तार वर्णन हमने प्रस्तुत इकाई में किया हैं।रोगों के कारणों के सन्दर्भ में उपनिषद साहित्य में वर्णित प्रारब्ध एवं कुपथ्य जन्य रोगों का वर्णन आधुनिक समय में भी उचित सा प्रतीत होता है।

रोगों का वर्गीकरण शारीरिक रोग, मानसिक रोग एवं आध्यात्मिक रोगों के रूप में किया गया है।शारीरिक रोगों का सम्बन्ध शरीर के विभिन्न तंत्राो के साथ मानसिक रोगो का सम्बन्ध मन एवं मानसिक ऊर्जा के साथ तथा आध्यात्मिक रोगों का सम्बन्ध आत्मा एवं आध्यात्मिक ऊर्जा के साथ वर्णित किया गया है।

अन्त में प्रस्तुत इकाई में प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार रोगो को दो वर्गों–त्रीव रोग एवं जीर्ण रोग पर प्रकाश डाला गया है। यहां स्पष्ट किया गया है कि त्रीव रोग शरीर के लिये अत्यन्त लाभकारी अर्थात मित्रा रोग होते है जो साध्य श्रेणी के रोग है जबकि इसके विपरीत जीर्ण रोग शरीर के लिये हानिकारक अर्थात शत्रु होते है जो असाध्य श्रेणी के रोग होते हैं, का उल्लेख प्रस्तुत इकाई में किया गया है।

1.8 पारिभाषिक शब्दावली

ह्रास	क्षय होना अथवा कमजोर पडना
परिलक्षित होना	व्यक्त अथवा प्रर्दशित होना
पूरक	निर्भर या आश्रित होना

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.	सत्य	क.	पूरक	क.	d
ख.	असत्य	ख.	चयापचय दर	ख.	d
ग.	असत्य	ग.	मित्र रोग	ग.	a
घ.	असत्य	घ.	प्रतिरक्षा	घ.	b
ड.	सत्य	ड.	जीवनी शक्ति	ड.	d

1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कल्याण आरोग्य अंक – गीता प्रेस गोरखपुर।
2. मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान– प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता, सुमित प्रकाशन, आगरा।
3. शरीर और शरीर क्रिया विज्ञान – मंजु तथा महेश चन्द्र गुप्ता, सांई प्रिन्ट, नई दिल्ली।
4. स्वस्थवृत्त विज्ञान– प्रो0 रामहर्ष सिंह , चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
5. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान– डा0 राकेश जिन्दल, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मुरादनगर (उ0 प्र0) ।
6. प्राकृतिक चिकित्सा – राम गोपाल शर्मा, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. एक्यूप्रेशर – डा0 अतर सिंह, एक्यूप्रेशर हैल्थ सेटंर, चण्डीगढ।

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न–

1. रोग के अर्थ को विभिन्न परिभाषाओं द्वारा स्पष्ट किजिए।
2. रोग के विभिन्न वर्गों (प्रकारों) पर सविस्तार प्रकाश डालिए।
3. रोग उत्पन्न होने के विभिन्न कारणों को सविस्तार लिखिए।

इकाई 2 रोगी तथा निरोगी व्यक्ति के लक्षण

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 रोगी व्यक्ति के लक्षण
2.3.1 शारीरिक रोगी व्यक्ति के लक्षण
2.3.2 मानसिक रोगी व्यक्ति के लक्षण
2.3.3 आध्यात्मिक रोगी व्यक्ति के लक्षण
2.4 निरोगी व्यक्ति के लक्षण
2.4.1 शारीरिक निरोगी व्यक्ति के लक्षण
2.4.2 मानसिक निरोगी व्यक्ति के लक्षण
2.4.3 आध्यात्मिक निरोगी व्यक्ति के लक्षण
2.5 रोगी एवं निरोगी व्यक्ति में अन्तर
2.6 सारांश
2.7 पारिभाषिक शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, पूर्व की इकाई में आपने रोगों के विषय में ज्ञान प्राप्त किया तथा रोगों के कारणों एवं प्रकारों के विषय में जाना। अब इन रोगों के विषय में जानने के उपरान्त आपके मन में यह प्रश्न अवश्य उपस्थित हुआ होगा कि हम रोगी और निरोगी व्यक्ति के बीच कैसे अन्तर कर सकते है अर्थात हम किस व्यक्ति को रोगी व्यक्ति कह सकते हैं और किस व्यक्ति को निरोगी व्यक्ति कह सकते हैं। शारीरिक रोग, मानसिक रोग एवं आध्यात्मिक रोगों के विषय में जाननें के उपरान्त अब यह जानना भी अनिवार्य हो जाता है कि इन रोगों से ग्रस्त व्यक्ति के लक्षण क्या क्या होते हैं और किन लक्षणें के आधार पर हम किसी मनुष्य को रोगी और निरोगी सिद्ध कर सकते हैं।

वास्तव में मूल रुप में मनुष्य स्वस्थ ही होता है किन्तु विकृत आहार विहार एवं अव्यवस्थित दिनचर्या एवं रात्रिचर्या के परिणाम स्वरुप उसके अन्दर कुछ ऐसे लक्षण प्रकट होते हैं जिससे उसकी गणना रोगी पुरुष में होने लगती है। ये लक्षण कौन कौन से होते हैं और किस किस रुप में प्रकट होते हैं, प्रस्तुत इकाईं में हम इन्ही बिन्दुओं पर विचार मंथन करेगें एवं जान सकेंगे कि कौन व्यक्ति रोगी की श्रेणी में आता है और किस व्यक्ति को हम निरोगी व्यक्ति की श्रेणी में रख सकते हैं।

यह अत्यन्त व्यापक एवं रोचक विषय है जिसका सम्बन्ध समाज के प्रत्येक मनुष्य के साथ है क्योंकि समाज के प्रत्येक मनुष्य में यह जिज्ञासा अवश्य होती है कि वह निरोगी पुरुष की श्रेणी में आता है अथवा रोगी पुरुषों की। इस जिज्ञासा का उत्तर हम इस इकाई में वर्णित लक्षणों के आधार दें सकते हैं। इसके साथ साथ इन लक्षणों के आधार पर ही रोगों का सरल एवं सामान्य उपचार किया जा सकता है अतः हम पर के इस व्यापक स्वरुप को जानने के बाद अब आपके मन में रोगों के अर्थ, कारण तथा वर्गीकरण (प्रकरों) को जानने की जिज्ञासा उत्पन होनी स्वाभाविक है अतः अब हम रोगी तथा निरोगी व्यक्ति के लक्षणों का सविस्तार अध्ययन करेंगे।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- रोगी व्यक्ति के लक्षणों की व्याख्या कर सकेंगे।
- निरोगी व्यक्ति के लक्षणों की विवेचना कर सकेंगे।
- शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्म्मिक रोगी को परिभाषित करने में सक्षम हो सकेंगे।
- रोगी एवं निरोगी व्यक्ति में अन्तर समझाने में सक्षम हो सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

2.3 रोगी व्यक्ति के लक्षण

एक रोगी व्यक्ति शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर अपने सामान्य कार्यों को भली– भांति नही कर पाता है अर्थात उस व्यक्ति के शारीरिक कार्य जैसे भोजन का पाचन, श्वसन, उत्र्सजन व रक्त परिभ्रमण आदि कार्य अव्यवस्थित हो जाते हैं। मानसिक स्तर पर उसे निरसता, उदासी, तनाव, क्रोध, ईष्या, घबराहट एवं बैचेनी आदि उद्वेगों की अनुभूति होने लगती है। आध्यात्मिक स्तर पर भी ऊर्जा की कमी होने पर रोगी व्यक्ति के अन्दर आत्महीनता के भाव उत्पन्न हो जाते है। इस प्रकार शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक कार्यों का अव्यवस्थित होना क्रमशः शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं। अब हम इन शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रोगी व्यक्ति के लक्षणों का सविस्तार अध्ययन करेगें

2.3.1 शारीरिक रोगी व्यक्ति के लक्षण

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मानव शरीर को ग्यारह तंत्रों में विभाजित करता है, इन ग्यारह तंत्रों का सुव्यवस्थित रुप में कार्य करना ही शारीरिक स्वास्थ्य है अर्थात इन तंत्रों का भलि भांति कार्य करना शारीरिक सवस्थ व्यक्ति के लक्षण हैं जबकि इन तंत्रों में विकार उत्पन्न होना शारीरिक रोगी व्यक्ति के लक्षण है। मानव शरीर के तंत्रों के आधार पर शारीरिक रोगी व्यक्ति के लक्षण इस प्रकार हैं–

(L) **पाचन तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण :** समय पर ठीक तरह से भूख नही लगना, ग्रहण किए गये भोजन का ठीक प्रकार से पाचन नही होना तथा मल पदार्थो का शरीर से ठीक प्रकार से निष्कासन नही होना पाचन तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं। इसके अर्न्तगत भोजन ग्रहण करने के उपरान्त पेट में भारीपन रहना, खट्टी डकारें आना, गैस बनना आदि लक्षणों का वर्णन भी आता है।

(M) **श्वसन तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण :** श्वास– प्रश्वास की क्रिया में कठिनाई उत्पन्न होना श्वसन तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं। इसके अर्न्तगत श्वास नलिका में जकडन, कफ की अधिकता, गले में टॉसिल्स, खांसी एवं जुकाम आदि लक्षणों का वर्णन आता है।

(N) **उत्सर्जन तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण** : शरीर की उर्त्सजन क्रिया में बाधा होना उर्त्सजन तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं। शरीर से मूत्र के रुप में उत्सर्जी पदार्थो की सही मात्रा निष्कासित नही होने की अवस्था उत्सर्जन तंत्र रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं। वक्क में सूजन, जलन, भारीपन व बहुमूत्र आदि लक्षण व्यक्ति को रोगी की श्रेणी में रखते हैं।

(O) **अस्थि तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण** : शरीर को आकृति एवं ढाँचा प्रदान करने वाली अस्थियों एवं उपास्थियों में विकृति उत्पन्न होना अथवा किसी दुर्घटना आदि के कारण अस्थियों का टूट जाना अस्थि तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण है। शरीर की लम्बाई ठीक नही होना भी अस्थि तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं।

(P) **पेशिय तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण** : शरीर के जोडों में सूजन, दर्द एवं जकडन पेशिय तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं। कमर दर्द, गर्दन दर्द, हाथों–पैरों में दर्द, चलने में कठिनाई एवं लिगामेंटस में खिचाव व दर्द का सम्बन्ध पेशिय तंत्र के साथ है तथा ये लक्षण पेशिय तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं।

(Q) **अध्यावरणीय तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण** : त्वचा में अधिक लालीपन, खुजली, जलन, दाने, फोडे फुसीं आदि लक्षण अध्यावरणीय तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं।

(R) **रक्त परिसंचसण तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण** : रक्त में स्थित लाल रक्त कणों, श्वेत रक्त कणों व प्लेटलेट्स की संख्या सामान्य से कम अथवा अधिक होना रक्त परिसंचरण तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं। हृदय का रोगग्रस्त होना एवं रक्तवाहीनियों में रक्त का सामान्य से कम अथवा अधिक दबाव से परिभ्रमण करना रक्त परिसंचसण तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण है।

(S) **अन्तःस्रावी तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण** : शरीर में स्थित अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्रावों का अव्यवस्थित रुप से स्रावित होना अन्तःस्रावी तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण है। शरीर की चयापचय दर का असन्तुलित होना, बौनापन, बाँझपन, थायराइड, मधुमेह तथा अनिन्द्रा आदि लक्षणों का सम्बन्ध अन्तःस्रावी तंत्र के साथ है।

(T) **प्रतिरक्षा तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण** : जुकाम होना, एलर्जी होनी, बुखार होना, टॉसिल्स बढना व उल्टी–दस्त आदि संक्रामक रोगों का बार–बार होना एवं जल्दी से ठीक नही होना प्रतिरक्षा तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण है।

(U) **तंत्रिका तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण** : शरीर की नस–नाडियों पर नियंत्रण का अभाव, दुर्बल स्मरण शक्ति, हाथों–पैरों में कम्पन्न व शरीर के अंगों में सुन्नपन रहना अथवा चिटियों के रेंगनें जैसी अनुभूति होना तंत्रिका तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण है।

(V) **प्रजनन तंत्र के रोग** : पुरुषों में पुरुषत्व का अभाव एवं नारियों में नारीत्व का अभाव प्रजनन तंत्र के रोगी व्यक्ति के लक्षण है।

2.3.2 मानसिक रोगी व्यक्ति के लक्षण

प्रिय विधार्थियों शारीरिक रोग के अतिरिक्त मानसिक रोग से ग्रस्त व्यक्ति कहीं अधिक कष्टों को प्राप्त होता है। एक मानसिक रोगी व्यक्ति कहीं पर भी सुख एवं चैन प्राप्त नही कर पाता है। मानसिक रोग से ग्रस्त हाने का प्रभाव शरीर पर भी पडता है तथा इसके परिणाम स्वरुप शारीरिक रोग भी जन्म लेने लगते है। एक मानसिक रोगी व्यक्ति के अन्दर निम्नलिखित लक्षण प्रकट होते हैं–

(C) मानसिक ऊर्जा में असामान्य रुप से वृद्धि होने के परिणाम स्वरुप मानसिक तनाव, उद्विग्नता, क्रोध, ईष्या एवं बैचेनी आदि लक्षणों का प्रकट होना एक मानसिक रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं। कुछ अवस्थओं में इसके शरीर में सुक्ष्म कम्पन्न भी होने लगता है। इस व्यक्ति की नींद बहुत कम हो जाती है तथा वह प्रतिक्षण उत्तेजना से ग्रस्त रहता है।

(D) मानसिक ऊर्जा में असामान्य रुप से कमी होने के परिणाम स्वरुप मानसिक अवसाद, निराशा, शोक, मूढता एवं घबराहट आदि लक्षणों का प्रकट होना एक मानसिक रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं। इस व्यक्ति के शरीर में आलस्य, भारीपन, कार्यों में अरुचि एवं अतिनिन्द्रा आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

(E) मानसिक स्तर पर सांवेगिक अस्थिरता मानसिक रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं। छोटी–छोटी बातों पर गुस्सा करना, दूसरों के साथ झगडा करना, समय पर कार्य नही करना, अनुशासन को नही अपनाना, धैर्य की कमी होना, सही एवं गलत का निर्णय ठीक प्रकार से नही कर पाना अर्थात बुद्धिमत्ता का अभाव होना तथा गलत दिनचर्या को अपनाते हुए विकृत आहार विहार का सेवन करना मानसिक रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं।

(F) अपने आसपास के वातावरण, परिवार एवं समाज के अन्य व्यक्यिों के साथ सामन्जस्य का अभाव होना एक मानसिक रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं। ऐसे मानसिक रोगी व्यक्ति का स्वभाव चिडचिढा रहता है तथा वह अन्य व्यक्तियों के साथ अच्छे सम्बन्ध नही बना पाता है।

2.3.3 आध्यात्मिक रोगी व्यक्ति के लक्षण

शरीर एवं मन का संचालन आत्मा से होता है, इस आत्मा में ऊर्जा (आध्यात्मिक ऊर्जा) के असन्तुलन की अवस्था में आध्यात्मिक रोग उत्पन्न होते हैं। एक आध्यात्मिक रोगी व्यक्ति के निम्न लिखित लक्षण होते हैं–

(A) ईश्वर के प्रति नास्तिकता के भाव रखते हुए स्वंम को पूजा–पाठ, हवन, यज्ञ, प्रार्थना आदि कर्मकाण्डों एवं सत्कार्यों से दूर कर लेना एवं स्वंम को बुरे रास्ते पर बुराईयों के साथ जोडकर अपना जीवन यापन करना एक आध्यात्मिक रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं।

(B) शारीरिक एवं मानसिक कार्यो पर नियंत्रण का अभाव होना एक आध्यात्मिक रोगी व्यक्ति का सबसे प्रमुख लक्षण है। इस व्यक्ति को अपने द्वारा किए जाने वाले कार्यों का भलि भांति ज्ञान अथवा अनुभूति नही होती है। ऐसा व्यक्ति स्वंम में ही खोया–खोया सा रहता है एवं दूसरों के साथ अपने दुख, पीड़ा अथवा कष्टों को नही बांटता हैं।

(C) किसी भी छोटे–बडे दुख अथवा समस्या के आने स्वमं को दुख एवं पीडा में डूबा अनुभव करना तथा हीनता के भावों से ग्रस्त होकर जीवन के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण को अपना लेना आध्यात्मिक रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं।

(D) जीवन में प्रेम, विनम्रता, परिश्रम, ईमानदारी, उत्साह, उमंग, हर्ष, उल्लास एवं सकारात्मक भावों के स्थान पर घृणा, द्वेष, शोक, निराशा, हताशा, चिन्ता एवं नकारात्मक भावों को अपनाते हुए नीरस रुप में जीवनयापन करना आध्यात्मिक रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं।

(E) कभी भी दूसरों के काम नही आना तथा दूसरों के जीवन व कार्यों में व्यवधान उत्पन्न करना एक आध्यात्मिक रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं।

2.4 निरोगी व्यक्ति के लक्षण

एक निरोगी व्यक्ति के लक्षणों पर प्रकाश डालते हुए आचार्य सुश्रुत आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ सुश्रुत संहिता में लिखते हैं–

समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रिय।
प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनः स्वस्थ इत्यभीधियते।।

(सुश्रुत संहिता 15/41)

अर्थात जिसके त्रिदोष सम अवस्था में हैं, जिसके शरीर में अग्नियों का व्यापार सम है, जिसके शरीर में धातुएं सम मात्रा में उपस्थित हैं तथा शरीर में मलों की सम स्थिति है। इसके साथ साथ जिसकी इन्द्रियां, मन व आत्मा में प्रसन्नता के भाव हैं, वही व्यक्ति स्वस्थ अर्थात निरोगी है।

इस प्रकार यहां पर आचार्य सुश्रुत स्वस्थ अथवा निरोगी व्यक्ति के तीन पक्षों अर्थात शारीरिक स्वस्थ व्यक्ति, मानसिक स्वस्थ व्यक्ति एवं आध्यात्मिक स्वस्थ व्यक्ति पर प्रकाश डालते हैं, इनका सविस्तार वर्णन इस प्रकार है–

2.4.1 शारीरिक निरोगी व्यक्ति के लक्षण

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार मानव शरीर के सभी तंत्रों का सुव्यवस्थित रुप में अपने कार्यों को करना एक शारीरिक निरोगी व्यक्ति के लक्षण है अर्थात वह व्यक्ति जिसके शरीर के सभी तंत्र अपने कार्यों को भलि भांति सम्पादित कर रहे हैं, एक शारीरिक निरोगी व्यक्ति है। इसके साथ– साथ कुछ निम्न लिखित लक्षणों को भी शारीरिक निरोगी व्यक्ति के लक्षणों के रुप में देखा जाता है–

(A) सही समय पर अच्छी प्रकार से भूख लगनी चाहिए।

(B) ग्रहण किए भोजन का भलि प्रकार पाचन होना चाहिए।

(C) समय पर पेट साफ (शौच) होना चाहिए।

(D) मुख से दुर्गन्ध नही आनी चाहिए तथा शुद्ध डकार आनी चाहिए।

(E) अपान वायु शब्द एवं दुर्गन्ध रहित होनी चाहिए।

यहां पर आचार्य जैमीनी मुनि द्वारा उपदेशित इस तथ्य का वर्णन करना भी उचित प्रतीक होता है जिसमें जब आचार्य जेमीनी मुनि से पूछा – कोऽरुक् , अर्थात निरोगी कौन है? तब इसके प्रतिउत्तर में आचार्य जैमीनि मुनि कहते हैं– हितभुक, अर्थात वह व्यक्ति जो अपने शरीर, मन और आत्मा के हितकर, पुष्टिकर तथा अनुकुल आहार का सेवन करता है, वह निरोगी व्यक्ति है। पुनः इसी प्रश्न के पूछे जाने पर आचार्यवर कहते हैं– मितभुक, अर्थात वह व्यक्ति जो परिमित आहार करता है, वही निरोगी व्यक्ति

है। इन दोनों उत्तरों को मिलाने पर हम कह सकते हैं कि वह व्यक्ति जो हितकर, पुष्टिकर तथा अनुकुल आहार निश्चित समय पर एवं निश्चित मात्रा में करता है, वही निरोगी व्यक्ति है अथवा दूसरे शब्दों में यही निरोगी व्यक्ति के लक्षण हैं।

2.4.2 मानसिक निरोगी व्यक्ति के लक्षण

मन में सकारात्मक ऊर्जा की पूर्णता एक मानसिक निरोगी व्यक्ति की पहचान है। इस ऊर्जा की प्रबलता के परिणामस्वरुप वह व्यक्ति सुव्यवस्थित दिनचर्या का पालन करता है। इस व्यक्ति में मानसिक स्थिरता पायी जाती है। इस मानसिक स्थिरता के कारण उसके शारीरिक एवं मानसिक कार्यों में समता पायी जाती है, ऐसा व्यक्ति सुख–दुख, लाभ–हानि, मान–अपमान, जय–पराजय आदि द्वन्दों एवं जीवन की विषम परिस्थितियों को सम भाव से सहन करता हुआ इनका सामना सहजता एवं सरलता के साथ करता है। एक मानसिक निरोगी व्यक्ति अपने जीवन में नकारात्मकता को स्थान नही देता है अपितु वह सकारात्मक दृष्टिकोण को अपनाता है। कुछ निम्न लिखित लक्षणों के आधार पर हम किसी व्यक्ति को मानसिक निरोगी व्यक्ति का श्रेणी में रख सकते हैं–

(A) मन में सकारात्मकता एवं प्रसन्नता के भावों का होना मानसिक निरोगी व्यक्ति के लक्षण हैं। ऐसे व्यक्ति में सन्मार्ग एवं कुमार्ग में अन्तर करने ही क्षमता विकसित रुप में पायी जाती है तथा यह व्यक्ति सदैव सन्मार्ग का चयन करता हुआ अपने जीवन में सत्कार्यों को हर्षोल्लास के साथ करता है।

(B) स्वंम पर नियंत्रण रखते हुए मानसिक स्तर पर सांवेगिक स्थिरता के भाव मानसिक निरोगी व्यक्ति के लक्षण हैं। अपने समस्त कार्यों को बुद्धिपूर्ण ढगं से करने के साथ साथ अनुशासन को अपनाना तथा प्रातः काल से लेकर रात्रिकाल तक सुनिश्चित दिनचर्या का पालन करना एक मानसिक निरोगी व्यक्ति के लक्षण हैं। निश्चित समय पर जागरण एवं निश्चित समय पर शयन के साथ साथ शुद्ध सात्विक आहार विहार करना एक मानसिक निरोगी व्यक्ति के लक्षण हैं।

(C) जीवन की कठिन तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में दूसरों पर गुस्सा करने के स्थान पर धैर्य के साथ अर्थात स्थिर मनोभाव के साथ उस कठिन उवं प्रतिकूल परिस्थिति का सामना करना मानसिक निरोगी व्यक्ति के लक्षण हैं।

(D) मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा मनुष्य का अपने आसपास के वातावरण, परिवार एवं समाज के अन्य व्यक्यिों के साथ अच्छा आपसी तालमेल होना एक मानसिक निरोगी व्यक्ति का लक्षण हैं। एक मानसिक निरोगी व्यक्ति अत्यन्त संवेदनशीलता के साथ व्यवहार करता हुआ दूसरों के सुख–दुख को बाटंता है। वह अन्य व्यक्तियों के साथ श्रेष्ठता, शालीनता, सभ्यता एवं शिष्टाचार का व्यवहार करता है इस कारण उसकी आस पास के लोगों से घनिष्टता पायी जाती है अर्थात व्यवहार में सामाजिकता, शालीनता, सभ्यता व श्रेष्ठता आदि गुणों का होना एक मानसिक निरोगी व्यक्ति के लक्षण हैं।

2.4.3 आध्यात्मिक निरोगी व्यक्ति के लक्षण– प्रिय विधार्थियों जिस प्रकार पौष्टिक भोजन शरीर को पोषण प्रदान करता है, सद्विचार मन को ऊर्जा प्रदान करते हैं, ठीक इसी प्रकार सत्कार्य आत्मा को बल (आत्मबल) प्रदान करते है। अपने जीवन में सत्कार्य करने वाला

व्यक्ति उच्च आत्मबल को प्राप्त करता हुआ आध्यात्मिक स्तर पर निरोगी जीवन यापन करता है। एक आध्यात्मिक निरोगी व्यक्ति के निम्न लिखित लक्षण होते हैं–

(A) एक आध्यात्मिक निरोगी व्यक्ति ईश्वर में पूर्ण निष्ठा रखते हुए स्वंम को निमित्त मात्र मानकर अपने समस्त कार्यों को ईश्वर को समर्पित करते हुए करता है अर्थात वह अपने जीवन को ईश्वर समर्पण के भावों से युक्त होकर जीता है।

(B) एक आध्यात्मिक निरोगी व्यक्ति हवन, सन्धा, पूजा–पाठ, दान–दक्षिणा आदि कार्यों को पूर्ण निष्ठा के साथ करता है। वह जीवन में सत्कार्यों एवं परोपकार को स्थान देता हुआ दूसरो के दुखों, कष्टों व पीडाओं को दूर करने के लिए प्रयासरत रहता है।

(C) एक आध्यात्मिक निरोगी व्यक्ति सुख, शान्ति एवं आनन्द के साथ सुव्यवस्थित रुप में अपना जीवन यापन करता है। वह अपने प्रत्येक कार्य शुभ संकल्प से प्ररित होकर सुव्यवस्थित रुप से करता है।

(D) एक आध्यात्मिक निरोगी व्यक्ति की समस्त शारीरिक एवं मानसिक क्रियाएं सुव्यवस्थित होती हैं। इसका अपने शरीर एवं मन पर पूर्ण नियंत्रण रहता है।

(E) एक आध्यात्मिक निरोगी व्यक्ति अहिंसा, सत्य, आदि योगांगों का पालन करता हुआ स्थिर मनोभाव से ब्रह्म में लीन रहता है, वह स्वर्ण तथा लौह में समान दृष्टि (समभाव) रखता है।

(F) ऐसा व्यक्ति उच्च आत्मबल एवं बहुमखी व्यक्तित्व का धनी होता है। इसके कार्यों में दिव्यता पायी जाती है। वह स्वार्थ एवं संर्कीणता की भावना से उपर उठकर अपने जीवन को आर्दश रुप में जीते हुए समाज में प्रेरणा का स्रोत बनता है।

2.5 रोगी एवं निरोगी व्यक्ति में अन्तर

प्रिय विधार्थियों रोगी एवं निरोगी व्यक्ति के लक्षणों का अध्ययन करने के उपरान्त अब आपके मन में रोगी एवं निरोगी व्यक्ति में अन्तर को जानने की इच्छा अवश्य उत्पन्न हुई होगी अर्थात किन किन लक्षणों के आधार पर प्रकार हम रोगी व निरोगी व्यक्ति में अन्तर कर सकते हैं, इस अन्तर को हम निम्न सारणी से आसानी से स्पष्ट कर सकते हैं–

अन्तर

निरोगी व्यक्ति के लक्षण	रोगी व्यक्ति के लक्षण
1. निरोगी व्यक्ति के शरीर के सभी तंत्र स्वस्थ एवं सक्रिय बने रहते हैं।	1. रोगी व्यक्ति के शरीर के तंत्र भली भांति कार्य नही करते हैं तथा ये कम क्रियाशील अथवा विकारों से ग्रस्त होकर कार्य करते हैं।
2. निरोगी व्यक्ति का शरीर शारीरिक रोगों से मुक्त रहता है।	2. रोगी व्यक्ति का शरीर शारीरिक रोगों से ग्रस्त रहता है।
3. निरोगी व्यक्ति के शरीर एवं मन में किसी प्रकार की पीडा नही होती है।	3. रोगी व्यक्ति के शरीर एवं मन में अनेकों प्रकार की पिड़ाएं रहती है।
4. निरोगी व्यक्ति अपने सभी कार्य बुद्धिपूर्ण, विवेकपूर्ण एवं सुव्यवस्थित रुप से करता है।	4. रोगी व्यक्ति के कार्य बुद्धिहीनतापूर्ण, अविवेकपूर्ण एवं अव्यवस्थित रुप से किए जाते है।
5. निरोगी व्यक्ति निश्चित दिनचर्या एवं	5. रोगी व्यक्ति की कोई निश्चित दिनचर्या

रात्रिचर्या का पालन करता हुआ अनुशासित ढंग से अपना जीवन यापन करता है।	एवं रात्रिचर्या नही होती है।
6. साफ स्वच्छ चिन्तन, त्रीव स्मरण शक्ति, दूसरों के साथ अच्छा समायोजन एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व एक निरोगी व्यक्ति के लक्षण हैं।	6. नकारात्मक चिन्तन, दुर्बल स्मरण शक्ति, कार्यों एवं दूसरों के साथ कुसमायोजित व्यवहार तथा प्रभावहीन व्यक्तित्व एक रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं।
7. नित्यप्रति पूजा, प्रार्थना, जप, पाठ, दान दक्षिणा एवं यज्ञ हवन में रुचिपूर्वक भाग लेना एक निरोगी व्यक्ति के लक्षण हैं।	7. सत्कार्यों के स्थान पर कुमार्ग का अनुसरण करना एक रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं।
8. एक निरोगी व्यक्ति का अपने शरीर (इन्द्रियों) एवं मन पर पूर्ण नियंत्रण रहता है।	8. एक रोगी व्यक्ति का अपने शरीर एवं मन पर कोई नियंत्रण नही रहता है।
9. उच्च आत्मबल एवं आर्दश जीवन शैली एक निरोगी व्यक्ति के लक्षण हैं।	9. आत्महीनता एवं दीन हीन जीवन शैली एक रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं।
10. निरोगी व्यक्ति अपने जीवन को सुख एवं शान्ति पूर्वक व्यतीत करता है।	10.रोगी व्यक्ति का जीवन विभिन्न प्रकार के दुखों, कष्टों व पीडाओं से भरा होता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

1– **सत्य असत्य**

(क) एक रोगी व्यक्ति का जीवन विभिन्न प्रकार के दुखों, कष्टों एवं पीडाओं से मुक्त होता है।

(ख) आध्यात्मिक स्तर पर ऊर्जा की कमी होने पर व्यक्ति के अन्दर आत्मबल बढ जाता है।

(ग) मानसिक स्तर पर सांवेगिक स्थिरता मानसिक रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं।

(घ) शरीर एवं मन का संचालन आत्मा से होता है।

(ड) इन्द्रियों, मन व आत्मा में प्रसन्नता के भाव रोगी व्यक्ति के लक्षण हैं।

2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) वास्तव में मूल रुप में मनुष्य ..... होता है।

(ख) आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मानव शरीर को ..... तंत्रों में विभाजित करता है।

(ग) कमर दर्द, गर्दन दर्द, हाथों–पैरों में दर्द एवं चलने में कठिनाई का सम्बन्ध ..... तंत्र के साथ है।

(घ) मानसिक रोग से ग्रस्त हाने का प्रभाव ..... पर भी पडता है।

(ड) सद्विचार मन को ..... प्रदान करते हैं।

3–बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) एक शारीरिक निरोगी व्यक्ति का लक्षण हैं–

(a) हर समय अच्छी भूख लगना (b) समय पर अच्छी भूख लगना
(c) समय पर कम भूख लगना (d) कभी भूख नही लगना।

(ख) एक मानसिक रोगी व्यक्ति का लक्षण हैं–

(a) मानसिक तनाव से ग्रस्त रहना (b) सांवेगिक अस्थिरता से ग्रस्त रहना
(c) सामंजस्य का अभाव (d) सभी।

(ग) एक आध्यात्मिक निरोगी व्यक्ति का लक्षण हैं–

(a) ईश्वर के प्रति सर्मपण के भाव (b) सत्कार्यों में लीन रहना
(c) शरीर एवं मन पर पूर्ण नियंत्रण (d) सभी।

(घ) मन में सकारात्मक ऊर्जा की पूर्णता किस वर्ग के व्यक्ति का लक्षण है–

(a) शारीरिक निरोगी (b) शारीरिक रोगी
(c) मानसिक निरोगी (d) मानसिक रोगी।

(ड) मितभुक का अर्थ है–

(a) अधिक आहार ग्रहण करना (b) परिमित आहार लेना
(c) पौष्टिक आहार लेना (d) सभी।

2.6 सारांश

प्रिय विधार्थियों, सारांश रुप में यह सिद्ध होता है कि शरीर, मन एवं आत्मा की विकारयुक्त अवस्था अथवा विषम अवस्था एक रोगी व्यक्ति का लक्षण है जबकि शरीर, मन एवं आत्मा की विकारमुक्त अवस्था अथवा सम अवस्था (समभाव) एक निरोगी व्रूक्ति के लक्षण हैं। शरीर की विषम अवस्था में शरीर के विभिन्न तंत्रों जैसे पाचन तंत्र, श्वसन तंत्र, उर्त्सजन तंत्र व रक्त परिसंचण तंत्र आदि तंत्रों से सम्बन्धित रोगों का वर्णन आता है। ये तंत्र रोगों से ग्रस्त होकर विभिन्न पूर्व वर्णित लक्षणों को प्रकट करते हैं। मानसिक ऊर्जा की विषम अवस्था के अर्न्तगत मानसिक रोगों का वर्णन आता है। इस अवस्था में मानसिक तनाव, अवसाद, चिन्ता, घबराहट, बैचेनी आदि रोग प्रकट होते हैं। आध्यात्मिक ऊर्जा की विषमता आध्यात्मिक रोगों के रुप में प्रकट होती है, इसके परिणाम स्वरुप व्यक्ति में नास्तिकता, आत्महीनता व अधार्मिकता आदि लक्षण प्रकट होते हैं। ऐसे व्यक्ति का आत्मबल कमजोर हो जाता है तथा उसमें आत्महीनता के भाव प्रबल हो जाते हैं परिणाम स्वरुप उसे कहीं पर भी सुख व शान्ति नही मिलती है।

एक निरोगी व्यक्ति शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर स्वस्थ रहता हुआ अपने समस्त शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक कार्यों को सुव्यवस्थित रुप में करता है। एक निरोगी व्यक्ति अपने जीवन को अनुशासित एवं सुव्यवस्थित रुप में व्यतीत करता है, इसके द्वारा प्रत्येक कार्य समय पर एवं सुव्यवस्थित रुप से किए जाते हैं। ऐसा निरोगी व्यक्ति समय पर भोजन, भजन व अन्य कार्यों को विवेकपूर्ण ढगं से एवं सुव्यवस्थित रुप में करता है। ऐसे व्यक्ति के चरित्र में कर्मण्यता, बुद्धिमत्ता, चिन्तनता, विवेकता एवं धैर्यता आदि सकारात्मक गुणों का समावेश होता है।

एक निरोगी व्यक्ति अपने प्रत्येक कार्य को उत्साहपूर्ण ढंग से करता हुआ अपने जीवन को सुख शान्ति पूर्वक व्यतीत करता है। एक निरोगी व्यक्ति में ईश्वर के प्रति पूर्ण आस्था,

निष्ठा एवं श्रद्वा के भाव होते हैं। वह स्वमं को ईश्वर के प्रतिनिधि के रुप में मानता हुआ कर्तापन के भाव से मुक्त होकर सर्मपण भाव से कार्य करता है। इसके कार्यों में स्वार्थ के स्थान पर परोपकार के भाव प्रबल होते हैं, ऐसा निरोगी व्यक्ति अपने अच्छे गुणों के कारण उच्च व्यक्तित्व का धनी होकर समाज में एक आर्दश प्रस्तुत करता है।

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

परिमित	निश्चित मात्रा में
विचार मंथन	चिन्तन करना
उद्विग्न	उत्तेजित
अनुभूति होना	ज्ञान होना
व्यवधान	बाधा अथवा परेशानी
द्वन्द	कष्ट

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.	असत्य	क.	स्वस्थ	क	b
ख.	असत्य	ख.	ग्यारह	ख.	d
ग.	असत्य	ग.	पेशिय	ग.	d
घ.	सत्य	घ.	शरीर	घ.	c
ड.	असत्य	ड.	ऊर्जा	ड.	b

2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कल्याण आरोग्य अंक – गीता प्रेस गोरखपुर।
2. मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान– प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता, सुमित प्रकाशन, आगरा।
3. शरीर और शरीर क्रिया विज्ञान – मंजु तथा महेश चन्द्र गुप्ता, सांई प्रिन्ट, नई दिल्ली।
4. स्वस्थवृत्त विज्ञान– प्रो0 रामहर्ष सिंह , चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
5. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान– डा0 राकेश जिन्दल, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मुरादनगर (उ0 प्र0) ।
6. प्राकृतिक चिकित्सा – राम गोपाल शर्मा, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. एक्यूप्रेशर – डा0 अतर सिंह, एक्यूप्रेशर हैल्थ सेटंर, चण्डीगढ।

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1 रोगी व्यक्ति के लक्षणों को सविस्तार लिखिए।
2. रोगी व्यक्ति एवं निरोगी व्यक्ति के लक्षणों में तुलनात्मक अध्ययन किजिए।
3. एक निरोगी व्यक्ति पर निबन्ध लिखिए।

इकाई 3 शारीरिक रोग की अवधारणा, कारण तथा वर्गीकरण

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 शारीरिक रोग की अवधारणा
3.4 शारीरिक रोग के कारण
3.5 शारीरिक रोगों का वर्गीकरण
3.6 सारांश
3.7 पारिभाषिक शब्दावली
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रिय विधार्थियों, पूर्व की इकाईयों में आपने रोग के अर्थ, कारण एवं वर्गीकरण के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। रोगों के अध्ययन में सबसे पहले शारीरिक रोगों का वर्णन आता है। यद्यपि मानव शरीर को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चार पुरुषार्थों की प्राप्ति का मूल साधन माना गया है किन्तु कुछ शास्त्रकार इस शरीर को व्याधियों का घर मानते हुए कहते हैं–

'शरीर व्याधिमन्दिरम्'।

अर्थात यह मानव शरीर रोगों का भण्डारगृह है। यहाँ पर शास्त्रकार का संकेत शारीरिक रोगों की ओर ही है।

इस मानव शरीर को एक ऐसे वाहन की संज्ञा दी जाती है जिसके द्वारा आत्मारुपी सवार अपनी जीवन यात्रा पूरी करता है। यदि यह शरीर रुपी वाहन स्वस्थ अर्थात विकार रहित है तब इसके माध्यम से जीवात्मा अपनी जीवन यात्रा आसानी से पूर्ण कर लेता है किन्तु शरीर के रोगग्रस्त होने पर उसकी यह जीवन यात्रा कठिन हो जाती है। शरीर, मन एवं आत्मा का आपस में अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध होता है। एक व्यक्ति जब तक शारीरिक रोगों से मुक्त रहता है तब तक उसके मन में कार्यों के प्रति उत्साह, उमंग, हर्ष, सकारात्मक भाव एवं आत्मा मे ऊर्जा की प्रबलता रहती है जबकि शरीर के रोगी होने पर वह व्यक्ति मानसिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर भी कमजोर पड जाता है। इस स्वस्थ शरीर के महत्व को देखते हुए इससे प्राप्त सुख को जीवन के सबसे प्रथम एवं उत्तम सुख की संज्ञा दी गयी है। इस तथ्य को लोकोक्ति के रुप में प्रकट करते हुए कहा गया–

प्रथम सुख निरोगी काया।

अर्थात मानव शरीर का सबसे प्रथम सुख स्वस्थ शरीर होता है।

इस प्रकार स्वस्थ शरीर के महत्व को समझने के उपरान्त अब आपके मन में यह प्रश्न उत्पन्न होना स्वभाविक ही है कि इस शरीर के रोगी होने का क्या अर्थ होता है अर्थात शारीरिक रोगों की अवधारणा क्या है? यह शरीर रोगी क्यों होता है अर्थात शारीरिक रोगों के क्या कारण होते हैं, तथा इन शारीरिक रोगों को कितने वर्गों में बांटा जा सकता है? प्रस्तुत इकाई में आप अन सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त करेगें।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- शारीरिक रोग के अर्थ को समझा सकेंगे।
- शारीरिक रोगों की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेगें।
- शारीरिक रोगो को परिभाषित करने में सक्षम हो सकेंगे।
- शारीरिक रोग के कारणों का विस्तारपूर्वक वर्णन कर सकेंगे।
- शारीरिक रोगों को वर्गीकृत करने में सक्षम हो सकेगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

3.3 शारीरिक रोग की अवधारणा

शारीरिक रोग का सामान्य अर्थ शरीर की रोगावस्था से लिया जाता है। इस तथ्य को यदि हम सरल शब्दों में कहें तो जब मनुष्य का शरीर अपने सामान्य कार्यों को सामान्य रुप से अथवा भली प्रकार से करने में असक्ष्म होता है तब शरीर की इस अवस्था को शारीरिक रोग का संज्ञा दी जाती है। प्रिय पाठकों जैसा कि हम जानते हैं कि प्रत्येक मनुष्य प्रातःकाल सोकर उठते ही अपने शरीर से कार्य करना प्रारम्भ कर देता है। यदि कोई मनुष्य अपने शरीर से दैनिक कार्यों से लेकर विभिन्न निमैतिक कार्यों को सहजता एवं सरलता पूर्वक करता है तब वह व्यक्ति शारीरिक रुप से स्वस्थ कहलाता है जबकि इसके विपरित वह अवस्था जिसमें शरीर इन कार्यों को भलि भंति सम्पादित नही कर पाता है, शारीरिक रोग की अवस्था कहलाती है।

इस प्रकार शारीरिक रोग का अर्थ शरीर की उस विषम अवस्था से है जिसमें शरीर विभिन्न कार्यों को करने में असक्ष्म अथवा असमर्थ होता है। शारीरिक रोग की अवधारणा को अलग अलग चिकित्सा पद्धतियों में अलग अलग प्रकार से वर्णित किया गया है, जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

(क) आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार शारीरिक रोग की अवधरणा–

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार शरीर में आवश्यक पोषक तत्वों का अभाव शरीर की चयापचय दर को असन्तुलित कर देता है जिसके कारण शरीर की विभिन्न आन्तरिक एवं बाह्य क्रियाओं में बाधाएं उत्पन्न होने लगती है, शरीर की यह अवस्था ही शारीरिक रोग कहलाती है।

शरीर में बाहय रोगाणु, जीवाणु अथवा विषाणु के आक्रमण के परिणामस्वरुप भी शरीर की चयापचय दर असन्तुलित हो जाती है यह असन्तुलित चयापचय दर की अवस्था शारीरिक रोग कहलाती है।

बाहय वातावरणीय कारक जैसे अत्यधिक गर्मी, सर्दी, बरसात, भूख, प्यास, चोट एवं दुर्घटना आदि प्रतिकूल कारकों के कारण उत्पन्न शरीर की विषम अवस्था शारीरिक रोग कहलाती है।

इस प्रकार शारीरिक स्वास्थ्य के संदर्भ में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में शरीर की चयापचय दर को स्वस्थ शरीर का मूल आधार स्तम्भ माना गया है। यहां पर सन्तुलित चयापचय दर का अर्थ शारीरिक स्वास्थ्य के रुप में तथा असन्तुलित चयापचय दर को शारीरिक रोग के रुप में वर्णित किया गया है। यहां पर स्पष्ट किया गया है कि जब तक शरीर की चयापचय दर संन्तुलित रहती है तब तक शरीर ऊर्जा से परिपूर्ण रहता है किन्तु

जब किसी कारणवश शरीर की चयापचय दर असन्तुलित हो जाती है तब विभिन्न शारीरिक रोग उत्पन्न होते हैं।

(ख) आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार शारीरिक रोग की अवधारणा –

भारतीय संस्कृति में आयुर्वेद शास्त्र का अपना एक विशिष्ट स्थान है। आयुर्वेद शास्त्र का अर्थ आयु अर्थात जीवन के ज्ञान से होता है। इस शास्त्र में स्वास्थ्य एक रोग विषय पर सविस्तार प्रकाश डाला गया है। इस शास्त्र में शरीर में उपस्थित वात, पित्त एवं कफ नामक त्रिदोषों को शारीरिक स्वास्थ्य एवं शारीरिक रोगों के मूल आधार के रुप में वर्णित किया गया है।

आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार वात दोष शरीर में होने वाली विभिन्न गतियों अथवा चेष्टाओं का आधार है। इस दोष की सम अवस्था से शरीर के जोड़ (संन्धिया) भलि भांति गतिशील रहती हैं जबकि इस दोष की विषम अवस्था से जोड़ों के दर्द, सन्धिवात एवं गठिया आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

पित्त दोष शरीर को उष्णता प्रदान करता है। पित्त दोष ही शरीर के ओज, तेज एवं आभा का मूल आधार होता है। इस दोष की विषमता के कारण विभिन्न रक्त विकार, पाचन तंत्र के रोग व त्वचा आदि से सम्बन्धित रोग उत्पन्न होते हैं।

कफ दोष शरीर को बल प्रदान करता है अर्थात शारीरिक बल का मूल आधार कफ दोष होता है। कफ दोष की विषमता शारीरिक दुर्बलता को उत्पन्न करती है, इसके साथ साथ सर्दी, जुकाम, खॉसी तथा बुखार आदि रोगों का सम्बन्ध कफ दोष की विकृति ही है।

प्रिय पाठकों, शरीर में उपरोक्त त्रिदोषों की साम्यावस्था रहने पर शरीर की समस्त बाहय एवं आन्तरिक क्रियाएं सुव्यवस्थित रुप में चलती रहती है जबकि इन त्रिदोषों में विषमता होने पर शरीर की ये क्रियाएं अव्यवस्थित एवं कष्टकारी हो जाती है परिणाम स्वरुप शरीर में विषम अवस्था उत्पन्न हो जाती है, शरीर की इस विषम अवस्था को ही शारीरिक रोग की संज्ञा दी जाती है।

(ग) प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार शारीरिक रोग की अवधारणा –

प्राकृतिक चिकित्सा में शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश नामक पंचमहाभूतों अथवा पंचतत्वों के समयोग को शारीरिक स्वास्थ्य के मूल आधार के रुप में वर्णित किया गया है। इन पंच महाभूतों की विषम अवस्था विभिन्न शारीरिक रोगों को उत्पन्न करती है। पृथ्वी तत्व मानव शरीर में उपस्थित सबसे स्थूल तत्व है। इस तत्व के शरीर में सम अवस्था में बने रहने पर रस, रक्त, अस्थि व मज्जा आदि धातुएं सम बनी रहती हैं जबकि इस तत्व में विषमता होने पर पाचन सम्बन्धी रोग, मोटापा तथा गठिया आदि रोग उत्पन्न होते हैं। जल तत्व की विषमता के कारण शरीर का शोधन भलि भांति नही हो पाता तथा विभिन्न प्रकार के त्वचा रोग, शरीर में गांठ, मूत्र सम्बन्धी विकार तथा पथरी आदि रोग उत्पन्न होते हैं। अग्नि तत्व की विषमता भूख नही लगना, भोजन का ठीक प्रकार नही पचना, अति अम्लता व रक्त विकार आदि रोग उत्पन्न होते हैं। वायु तत्व का सम्बन्ध श्वास– प्रश्वास के साथ है। इस तत्व के विषम योग से विभिन्न श्वसन रोग जैसे दमा, खॉसी, नजला, एलर्जी आदि उत्पन्न होते हैं। आकाश तत्व का सम्बन्ध शरीर में स्थित रिक्त स्थान से है। शरीर में इस तत्व का विषम अवस्था होने पर शरीर का रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है तथा शरीर विभिन्न संक्रामक रोगों से ग्रस्त हो जाता है। इस प्रकार मानव शरीर में इन पंचतत्वों की विषम अवस्था ही शारीरिक रोगों का मूल आधार है।

(घ) योग चिकित्सा के अनुसार शारीरिक रोग की अवधारणा –

योग चिकित्सा में प्राण तत्व को शारीरिक स्वास्थ्य का मूल आधार माना गया है। योग चिकित्सा के अनुसार प्राण वह ऊर्जा है जिसके कारण मनुष्य की समस्त शारीरिक एवं मानसिक क्रियाएं संचालित होती है। जब तक शरीर में यह प्राण तत्व विद्यमान है तब तक जीवन है तथा इस प्राण तत्व के नही रहने पर शरीर निष्प्राण अर्थात मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। शरीर में इस प्राण तत्व की न्यूनता होने पर आलस्य तथा अति निन्द्रा आदि लक्षण प्रकट होते हैं, प्राण तत्व के ओर अधिक न्यून होने पर विभिन्न शारीरिक रोग उत्पन्न होते हैं जबकि शरीर में प्राण तत्व की प्रबलता अथवा अधिकता होने पर शरीर में लघुता अर्थात हल्कापन आता है।

योग चिकित्सा में प्राण के पॉच भेदों – प्राण वायु, अपान वायु, समान वायु, उदान वायु एवं व्यान वायु का वर्णन किया गया है। प्राण वायु का मुख्य स्थान हृदय होता है। यह श्वसन क्रिया को नियंत्रित करता है। इस प्राण वायु के न्यून अथवा विकृत होने पर श्वसन सम्बन्धी रोग उत्पन्न होते हैं। अपान वायु का मुख्य स्थान गुदा होता है। यह अपान वायु नाभि से नीचे के आन्तरिक अंगों जैसे गुदा, वृक्क, मूत्रेन्द्रिय आदि को नियंत्रित करता है। इस अप्राण वायु के विकृत होने पर इन अंगों से सम्बन्धी रोग उत्पन्न होते हैं। समान वायु का मुख्य स्थान नाभि प्रदेश है। यह समान वायु हृदय से नाभि पर्यन्त गति करता हुआ विभिन्न पाचन अंगों जैसे आमाशय, यकृत, क्लोमग्रंथि, छोटी आंत व बडी आंत आदि की क्रिया को नियंत्रित करता है। इस वायु में विकृति उत्पन्न होने पर इन अंगों से सम्बन्धी रोग उत्पन्न होते हैं। उदान वायु का मुख्य स्थान कंठ है। इस वायु से नाक, कान, आंख आदि इन्द्रियाँ संचालित होती है। व्यान वायु सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त यह जीवनी शक्ति शरीर का आधार है। व्यान वायु के द्वारा सम्पूर्ण शरीर की गतिविधियाँ सम्पन्न संचालित होती हैं। इस व्यान वायु में विकृति उत्पन्न होने पर शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं में बाधाएं उत्पन्न होती है।

प्रिय पाठकों , इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों के अनुसार शारीरिक रोग की यह अवधारणा स्पष्ट होती है कि शरीर द्वारा विभिन्न सामान्य कार्यों एवं क्रियाओं को सरलता एवं सहजतापूर्वक ढंग से नही कर पाने की अवस्था शारीरिक रोग कहलाती है किन्तु यहॉ पर अब आपके मन में यह प्रश्न उत्पन्न होना भी स्वाभाविक ही है कि ऐसे क्या कारण होते हैं जिनकी वजह से शरीर के इन कार्यों एवं क्रियाओं में बाधाएं अर्थात शारीरिक रोग उत्पन्न होते हैं, अतः अब आप शारीरिक रोग के कारणों का अध्ययन करेगें–

3.4 शारीरिक रोग के कारण

शारीरिक रोग के उत्पत्ति के बहुत सारे कारण होते हैं। इन कारणों में मुख्य रुप से असंयमित जीवन शैली एवं विकृत आहार विहार का वर्णन आता है। इनके साथ साथ प्रदूषण एवं अनुवांशिकता भी शारीरिक रोगों की उत्पत्ति के महत्वपूर्ण कारण हैं। जिस प्रकार आपने विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों में रोगों की अवधारणा की व्याख्या अलग अलग रुपों में की गयी है, उसी प्रकार अलग अलग चिकित्सा पद्धतियों में इन कारणों को भी अलग अलग प्रकार से वर्णित किया गया है जो इस प्रकार है–

(क) आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार शारीरिक रोग के कारण–

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार शारीरिक रोग की उत्पत्ति के महत्वपूर्ण कारण निम्न लिखित हैं

(1) पौष्टिक एवं सन्तुलित आहार के अभाव के कारण शरीर में पोषक तत्वों एवं आवश्यक खनिज लवणों की कमी होना शारीरिक रोगों का सबसे प्रथम एवं महत्वपूर्ण कारण होता है।

(2) प्रदूषित वातावरण में वास करने एवं अपने आस पास के रहन सहन व खान पान में स्वच्छता का अभाव रखने से शारीरिक रोग पैदा होते हैं।

(3) विकृत सोच विचार एवं अनियमित शयन–जागरण के परिणाम स्वरुप शरीर में हार्मोन्स असन्तुलित होने के कारण शरीर में रोग पैदा होते है।

(4) बाहय वातावरणीय कारक जैसे अत्यधिक गर्मी, सर्दी, बरसात, भूख, प्यास, चोट एवं दुर्घटना आदि प्रतिकूल कारकों के कारण विभिन्न शारीरिक रोग उत्पन्न होते हैं।

(5) अनुवांशिकता शारीरिक रोगों का महत्वपूर्ण कारण होता है अर्थात शारीरिक रोग अनुवांशिक रुप में माता पिता से उनकी सन्तानों में पहुॅच जाते हैं।

(ख) आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार शारीरिक रोग के कारण–

आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार शारीरिक रोग की उत्पत्ति के कारण इस प्रकार हैं

1 स्वस्थवृत्त अर्थात स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का उल्लंघन करने से शारीरिक रोग पैदा होते हैं।

2 शुद्ध और सात्विक आहार के स्थान पर राजसिक एवं तामसिक (अधिक मिर्च मसाले युक्त गरिष्ट भोजन) का सेवन करने के कारण शारीरिक रोग पैदा होते हैं।

3 प्रदूषित वातावरण में रहने के कारण शारीरिक रोग उत्पन्न होते हैं।

4 चोट, दुर्घटनाओं अदि के कारण शारीरिक रोगों की उत्पत्ति होती है।

5 बुरे प्रारब्ध अर्थात पूर्व जन्म में किए बुरे कर्मों के फलभोग के रुप में शारीरिक रोग पैदा होते हैं।

(ग) प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार शारीरिक रोग के कारण– प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार शारीरिक रोग की उत्पत्ति के महत्वपूर्ण कारण निम्न लिखित हैं–

(1) अप्राकृतिक जीवनशैली को अपनाने के कारण शरीर में विजातीय पदार्थों की अधिक मात्रा एकत्र होने के परिणाम स्वरुप शारीरिक रोग पैदा होते हैं।

(2) पंचमहाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) के सम्यक रुप में उपभोग नही करने के कारण शारीरिक रोगों की उत्पत्ति होती है।

(3) प्रकृति के मूल नियमों अथवा सिद्धान्तों जैसे अनुशासन, सृजनात्मकता आदि का उल्लंघन करने के कारण शारीरिक रोग पैदा होते हैं।

(4) भोजन में प्राकृतिक पदार्थों के स्थान पर कृत्रिम एवं रासायनिक पदार्थों से युक्त भोजन का सेवन करने के परिणाम स्वरुप शारीरिक रोग उत्पन्न होते हैं।

(5) अधिक प्रदूषित, घुटनयुक्त एवं अप्राकृतिक वातावरण में वास करने के कारण विभिन्न शारीरिक रोग पैदा होते हैं।

(ग) योग चिकित्सा के अनुसार शारीरिक रोग के कारण–

योग चिकित्सा के अनुसार शारीरिक रोग की उत्पत्ति के निम्न लिखित कारण होते हैं–

(1) अनुशासित योगमय जीवनशैली के स्थान पर भोगमय जीवनशैली का अनुकरण करने के कारण शारीरिक रोग पैदा होते हैं।

(2) षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्राणायाम व ध्यान आदि यौगिक क्रियाओं का नियमित अभ्यास नही करने के कारण शारीरिक रोग पैदा होते हैं।

(3) आहार सम्बन्धी नियमों का पालन नही करते हुए तामसिक आहार का अधिक सेवन काने के कारण शारीरिक रोगों की उत्पत्ति होती है।

(4) गलत मुद्राओं से कार्य करने, अधिक कार्य करते हुए विश्राम नही करने के कारण शारीरिक रोग उत्पन्न होते हैं।

(5) निश्चित दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या का पालन नही करने के कारण शारीरिक रोग पैदा होते हैं।

प्रिय विधार्थियों, ऊपर वर्णित कारणों से मानव शरीर में शारीरिक रोगों की उत्पत्ति होती है किन्तु यहॉ ध्यान देने योग्य तथ्य यह भी है कि केवल कुछ परिस्थितियों में ही कोई एक कारण प्रबल रुप में शरीर के प्रभावित करता हुआ शारीरिक रोग को पैदा करता है अपितु अधिकाशं परिस्थितियों में एक कारण के स्थान पर दो अथवा अधिक कारण साथ मिलकर शरीर में रोग पैदा करते हैं। अब यहॉ पर इन शारीरिक रोगों के कारणों को जानने के उपरान्त इनके प्रकारों अर्थात वर्गों के विषय में जानना भी आवश्यक हो जाता है अतः अब हम शरीरिक रोगों के वर्गों पर विचार करते हैं–

3.5 शारीरिक रोगों का वर्गीकरण

शारीरिक रोगों को अलग अलग चिकित्सा पद्धतियों में अलग अलग प्रकार के वर्गों में विभाजित किया गया है। अलग अलग चिकित्सा पद्धतियों के अनुसार इन शारीरिक रोगों के वर्गों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

(क) आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार शारीरिक रोगों का वर्गीकरण–

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मानव शरीर के ग्यारह तंत्रों के आधार पर शारीरिक रोगों को निम्न लिखित ग्यारह वर्गों में विभाजित करता है–

पाचन तंत्र के रोग : पाचन तंत्र में विकृति के परिणाम स्वरुप उत्पन्न रोगों का वर्ग पाचन तंत्र के रोग कहलाते हैं। इसके अर्न्तगत आमाश्य, यकृत, छोटी ऑत व बडी ऑत आदि पाचन अगों से सम्बन्धित अपच, एसाडिटी, अल्सर, एपेन्डिक्स, मधुमेह एवं कब्ज आदि रोगों का वर्णन आता है।

श्वसन तंत्र के रोग : श्वसन तंत्र में विकृति के परिणाम स्वरुप उत्पन्न रोगों के वर्ग को श्वसन तंत्र के रोग कहा जाता हैं। इसके अर्न्तगत गले, कंठ, श्वासनली एवं फेफड़ों आदि अगों से सम्बन्धित टॉसिल्स, श्वास नली शोथ, खांसी, जुकाम एवं दमा आदि रोगों का वर्णन आता है।

उत्सर्जन तंत्र के रोग : उत्सर्जन तंत्र में विकृति के परिणाम स्वरुप उत्पन्न रोगों का वर्ग उत्सर्जन तंत्र के रोग कहलाते हैं। इसके अर्न्तगत वृक्क एवं मूत्र नलिका वृक्क शोथ, वृक्क प्रदाह, वृक्क में पथरी एवं बहुमूत्र आदि रोगों का वर्णन आता है।

अस्थि तंत्र के रोग : अस्थियों एवं उपास्थियों की संरचना एवं कार्यों में उत्पन्न विकृति के परिणाम स्वरुप उत्पन्न रोगों का वर्ग अस्थि तंत्र के रोग कहलाते हैं। इसके अर्न्तगत हड्यिों में टेडापन तथा जोडों मे दर्द आदि रोगों का वर्णन आता है।

पेशिय तंत्र के रोग : शरीर के विभिन्न अंगों में स्थित मॉसपेशियों की विकृति से उत्पन्न रोग पेशिय तंत्र के रोग कहलाते है इस वर्ग में हाथों– पैरों में दर्द, जोड़ों में दर्द, जोड़ों में जकड़न तथा पेशियों में सूजन आदि रोगों का वर्णन आता है।

अध्यावरणीय तंत्र के रोग : शरीर के आन्तरिक एवं बाहय अंगों को ढकने वाली त्वचा की विकृति से सम्बन्धित रोगों का वर्ग अध्यावरणीय तंत्र के रोग कहलाता है। इस वर्ग में त्वचा में खुजली, जलन, सूजन, दाने व फोडे फुसीं आदि रोगों का वर्णन आता है।

रक्त परिसंचसण तंत्र के रोग : शरीर में स्थित रक्त एवं हृदय की विकृति से उत्पन्न रोगों के समूह को रक्त परिसंचरण तंत्र के रोगों का वर्ग कहा जाता है। इसके अर्न्तगत रक्त अल्पता, उच्च व निम्न रक्तचाप तथा हृदय से सम्बन्धित रोगों का वर्णन आता है।

अन्तःस्रावी तंत्र के रोग : शरीर में निश्चित स्थानों पर स्थित अन्तःस्रावी ग्रन्थियों जैसे पीनियल, पीटयूटरी, थायराइड एवं पैराथायराइड आदि से स्रावित हार्मोन्स की विकृति को अन्तःस्रावी तन्त्र के रोग कहा जाता है। इस वर्ग के अर्न्तगत हार्मोन्स असन्तुलन से उत्पन्न मधुमेह, थायराइड, बौनापन व बांझपन आदि रोगों का वर्णन आता है।

प्रतिरक्षा तंत्र के रोग : शरीर की बाह्य जीवाणुओं, विषाणुओं एवं रोगाणुओं से सुरक्षा का सम्बन्ध प्रतिरक्षा तंत्र के साथ होता है। इस तंत्र में विकार उत्पन्न होने पर विभिन्न संक्रामक रोग उत्पन्न होते हैं।

तंत्रिका तंत्र के रोग : तंत्रिका तंत्र में विकृति के परिणाम स्वरुप उत्पन्न रोगों के वर्ग को तंत्रिका तंत्र के रोग कहा जाता हैं। इस वर्ग के अर्न्तगत मस्तिष्क एवं सुषुम्ना नामक अगों सम्बन्धित दुर्बल स्मरण शक्ति, हाथों व पैरौं में कम्पन्न, कमजोर शारीरिक सन्तुलन एवं तंत्रिकाओं से सम्बन्धित रोगों का वर्णन आता है।

प्रजनन तंत्र के रोग : प्रजनन तंत्र में विकृति के परिणाम स्वरुप उत्पन्न रोगों के वर्ग को प्रजनन तंत्र के रोग कहा जाता हैं। इस वर्ग के अर्न्तगत स्त्री रोग, पुरुष रोग व बांझपन आदि रोगों का वर्णन आता है।

(ख) आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार शारीरिक रोगों का वर्गीकरण–

आयुर्वेद शास्त्र में वात, पित्त एवं कफ नामक त्रिदोषों के आधार पर रोगों के निम्न लिखित तीन वर्ग के रोगों का उल्लेख किया गया है–

(A) **वात दोष के रोग :** आयुर्वेद शास्त्र में वात दोष को पित्त एवं कफ दोष की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इस दोष की विषमता से उत्पन्न रोगों के वर्ग को वात दोष के रोग कहा गया है इसके अर्न्तगत जोड़ों में दर्द, सूजन, गठिया, आर्थराइटिस, कमर दर्द, सवाईकल, पेट में गैस, पेट दर्द, सिर दर्द एवं माइग्रेन आदि रोगों का वर्णन आता है।

(B) **पित्त दोष के रोग :** पित्त दोष शरीर को उष्मा एवं ऊर्जा प्रदान करने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। शरीर में इस दोष की विषमता शरीर को तेजहीन एवं ऊर्जाहीन बना देती है। है। इस दोष की विषमता से उत्पन्न रोगों के वर्ग को पित्त दोष के रोग कहा गया है इसके अर्न्तगत पीलिया, रक्त अल्पता, पेट में जलन, अल्सर एवं त्वचा से सम्बन्धित रोगों का वर्णन आता है।

(C) **कफ दोष के रोग :** आयुर्वेद शास्त्र में कफ दोष शरीर को शरीर के बल का मूल आधार माना गया है। शरीर में इस दोष की विषमता शरीर को बलहीन बना देती है। इस दोष की विषमता से उत्पन्न रोगों के वर्ग को कफ दोष के रोग कहा गया

है इसके अर्न्तगत सर्दी, जुकाम, बुखार, खाँसी व न्यूमोनिया आदि रोगों का वर्णन आता है।

(ग) प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार शारीरिक रोगों का वर्गीकरण–

प्राकृतिक चिकित्सा में शारीरिक रोगों के दो वर्गों (प्रकारों) का वर्णन किया गया है–

व्रीव रोग (Acute Disease) :

प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार रोग वह अवस्था है जिसमें शरीर अपने अन्दर स्थित विषाक्त तत्वों को अस्वभाविक रुप से बाहर निकालता है, जब ये विषाक्त तत्व तेजी से एवं कम समयान्तराल में शरीर से बाहर निकलते हैं तब शरीर की इस अवस्था को व्रीव रोग की संज्ञा दी जाती है। चूंकि व्रीव रोगों द्वारा कम समय में शरीर की सफाई होती है तथा शरीर की जीवनी शक्ति एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है अतः इन व्रीव रोगों को शरीर के लाभकारी अर्थात मित्र रोगों की श्रेणी में रखा जाता है। व्रीव जुकाम, बुखार, खाँसी, वमन एवं पेचिश आदि इस वर्ग के रोग हैं।

जीर्ण रोग (Chronic Disease) :

शरीर की वह अवस्था जिसमें शरीर में स्थित विषाक्त तत्व धीरे धीरे एवं लम्बे समय तक शरीर से निकलते रहते हैं तब शरीर की यह अवस्था को जीर्ण रोग कहलाती है। जीर्ण रोगों का समय बहुत लम्बा होता है तथा समय लम्बा होने से इन रोगों के ग्रस्त होने पर शरीर की जीवनी शक्ति एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता क्षीण पड जाती है। लम्बे समय का जुकाम, बुखार, खाँसी, मधुमेह, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग एवं कैसंर आदि इस वर्ग के रोग हैं।

(घ) योग चिकित्सा के अनुसार शारीरिक रोगों का वर्गीकरण–

योग चिकित्सा में मूल रुप से आयुर्वेद शास्त्र में वर्णित रोग की अवधारणा से साम्य स्थापित किया गया है। योग चिकित्सा आयुर्वेद शास्त्र में वर्णित वात, पित्त व कफ दोषों की विषमता को ही शारीरिक रोगों की उत्पत्ति का मूल आधार मानती हुई शारीरिक रोगों के इन्ही वर्गों की चिकित्सा पर बल देती है। इसके साथ साथ योग चिकित्सा में पंच प्राणों के आधार पर रोगों को वर्गीकृत किया गया है। वर्तमान समय में योग चिकित्सा आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित रोगों के प्रकारों पर भी अपनी सममति प्रकट करती है।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

1– **सत्य /असत्य**

(क) शरीर, मन एवं आत्मा का आपस में अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध होता है।

(ख) आयुर्वेद शास्त्र में पित्त दोष को वात एवं कफ दोष की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

(ग) भोगमय जीवनशैली के स्थान पर योगमय जीवनशैली का अनुकरण करने के कारण शारीरिक रोग पैदा होते हैं।

(घ) शारीरिक रोग का अर्थ शरीर की विषम अवस्था से है

(ड) उच्च व निम्न रक्तचाप तथा हृदय रोग उर्त्सजन तंत्र के रोग हैं।

2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) कफ दोष की विषमता शरीर को ..... बना देती है।

(ख) योग चिकित्सा मूल रुप से आयुर्वेद शास्त्र में वर्णित रोग की अवधारणा से ..... रखती है।

(ग) प्राकृतिक चिकित्सा में शारीरिक रोगों के ..... वर्गों का वर्णन किया गया है।

(घ) योग चिकित्सा में प्राण के ..... भेदों का वर्णन किया गया है।

(ड) शारीरिक रोग ..... रुप में माता पिता से उनकी सन्तानों में पहुॅच जाते हैं।

3–बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार स्वास्थ्य का मूल आधार स्तम्भ है–

(a) त्रिदोष (b) पंचमहाभूत
(c) चयापचय दर (d) पौष्टिक भोजन

(ख) आयुर्वेद शास्त्र में शारीरिक रोगों को कितने वर्गों (प्रकारों) में बांटा गया है

(a) दो (b) तीन
(c) पॉच (d) ग्यारह

(ग) प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार शारीरिक रोगों का कारण है –

(a) अप्राकृतिक जीवन शैली (b) प्रदूषित वातावरण
(c) कृत्रिम व रासायनिक आहार (d) सभी।

(घ) निम्न में से कौन सा रोग वात दोष से सम्बन्धित है –

(a) पीलिया (b) गठिया
(c) खॉसी (d) जुकाम

(ड) प्राण वायु की विकृति से कौन से रोग उत्पन्न होते हैं –

(a) श्वसन सम्बन्धी (b) पाचन सम्बन्धी
(c) इन्द्रियों सम्बन्धी (d) सभी।

3.6 सारांश–

प्रिय पाठकों प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त यह स्पष्ट होता है कि शारीरिक रोग का अर्थ शरीर की विषम अवस्था से है, इस विषम अवस्था को अलग अलग चिकित्सा पद्धतियों में अलग अलग प्रकार से व्यक्त किया गया है। यहॉ पर सबसे पहले वर्तमान समय में यर्वाधिक प्रचलित आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का उल्लेख किया गया है जिसमें शरीर की चयापचय दर को स्वास्थ्य का मूल आधार स्तम्भ माना गया है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार सन्तुलित चयापचय दर शारीरिक स्वास्थ्य एवं असन्तुलित चयापचय दर शारीरिक रोग का जनक है।

आयुर्वेद शास्त्र में वात, पित्त एवं कफ दोषों की विषमता से उत्पन्न अवस्था को शारीरिक रोग के रुप में वर्णित किया गया है। इस संदर्भ में प्राकृतिक चिकित्सा में पंचमहाभूतों की सम अवस्था के शारीरिक स्वास्थ्य एवं इन महाभूतों की विषम अवस्था को शारीरिक रोग के रुप में व्यक्त किया गया है। योग चिकित्सा में प्राण तत्व के आधार पर शारीरिक स्वास्थ्य एवं रोग की व्याख्या की गयी है।

इन रोगों के कारणों के संदर्भ में मूल रुप से विकृत आहार विहार , असंयमित जीवन शैली एवं बाह्य भौतिक कारकों की भूमिकाओं पर प्रायः सभी चिकित्सा पद्धतियों में समान रुप से प्रकाश डाला गया है प्ररन्तु इन बिन्दुओं को अलग अलग प्रकार से संशोधित करते हुए अभिव्यक्त किया गया है।

शारीरिक रोगों के वर्गीकरण के संदर्भ में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मानव शरीर के ग्यारह मंत्रों के आधार पर शारीरिक रोगों को ग्यारह वर्गों में वर्गीकृत करता है। आयुर्वेद शास्त्र त्रिदोषों के आधार पर शारीरिक रोगों को तीन वर्गों में विभाजित करता है। प्राकृतिक चिकित्सा में पंच महाभूतों के आधार पर एवं योगचिकित्सा में पंच प्राण के आधार पर शारीरिक रोगों को पॉच वर्गों में बांटा गया है।

इस प्रकार प्रस्तुत इकाई में शारीरिक रोग की अवधारणा, कारण एवं वर्गीकरण को विभिन्न दृष्टिकोणों से स्पष्ट किया गया है।

3.7 पारिभाषिक शब्दावली–

पुरुषार्थ	विषेश कार्य
निमेतिक कार्य	कारण हेतु किया जाने वाला कार्य
विकृत	कम अथवा अधिक
साम्य	समानता
सममति	सकारात्मक भाव

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.	सत्य	क.	बलहीन	क.	c
ख.	असत्य	ख.	साम्य	ख.	b
ग.	असत्य	ग.	दो	ग.	d
घ.	सत्य	घ.	पॉच	घ.	b
ड.	असत्य	ड.	अनुवांशिक	ड.	a

3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.कल्याण आरोग्य अंक – गीता प्रेस गोरखपुर।
2. मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान– प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता, सुमित प्रकाशन, आगरा।
3. शरीर और शरीर क्रिया विज्ञान – मंजु तथा महेश चन्द्र गुप्ता, सांई प्रिन्ट, नई दिल्ली।
4. स्वस्थवृत्त विज्ञान– प्रो0 रामहर्ष सिंह , चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
5. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान, डा0 राकेश जिन्दल, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मुरादनगर (उ0 प्र0) ।
6. प्राकृतिक चिकित्सा – राम गोपाल शर्मा, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न–

1. शारीरिक रोग की अवधारणा को सविस्तार स्पष्ट किजिए।
2. शारीरिक रोग के कारणों को समझाते हुए इनको वर्गीकृत किजिए।
3. शारीरिक रोगों पर निबन्ध लिखिए।

इकाई–4 कब्ज एवं अजीर्ण– कारण, लक्षण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 कब्ज
  4.3.1 कारण
  4.3. 2 लक्षण
  4.3.3 कब्ज के प्रकार
4.4 – वैकल्पिक चिकित्सा
  4.4.1 यौगिक चिकित्सा
  4.4.2 प्राकृतिक चिकित्सा
  4.4.3 चुम्बक चिकित्सा
  4.4.4 प्राण चिकित्सा
  4.4.5 जड़ी बूटी चिकित्सा
  4.4.6 आहार चिकित्सा
4.5 अजीर्ण
  4.5.1 कारण
  4.5.2 लक्षण
4.6 वैकल्पिक चिकित्सा
  4.6.1 यौगिक चिकित्सा
  4.6.2 प्राकृतिक चिकित्सा
  4.6.3 चुम्बक चिकित्सा
  4.6.4 प्राण चिकित्सा
  4.6.5 जड़ी बूटी चिकित्सा
  4.6.6 आहार चिकित्सा
4.7 सारांश
4.8 शब्दावली
4.9 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.11 सहायक पाढ़य सामग्री
4.12 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

कब्ज को आधुनिक सभ्यता का प्रतिष्ठित रोग कहा जा सकता है। मानव शरीर में अधिकतर रोगो को उत्पन्न करने में कोष्ठबद्धता (कब्ज) की महत्वपूर्ण भूमिका है, इसीलिए कोष्ठबद्धता (कब्ज) को रोगों की जननी कहा गया है। हम जो कुछ भी खाते है, उस भोजन के उपयोगी अंश से रस की उत्पत्ति होती है तथा अनुपयोगी अंश से मल की उत्पत्ति होती है। मनुष्य जो कुछ भी खाता है उसका आमाशय एवं आंतों द्वारा, पाचन एवं अवशोषण होता है तथा शेष अनुपयोगी अंश, मल के रूप में स्वतः बाहर निकाल दिया जाता है। जब यह मल सुचारू रूप से बाहर नहीं निकल पाता है उसी को कब्ज या कोष्ठबद्धता कहा जाता है।प्रस्तुत इकाई में आप कब्ज के साथ–साथ अजीर्ण अर्थात अपच के बारे में अध्ययन करेगें।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप–

- कब्ज या कोष्ठबद्धता को समझ सकेंगे।
- कब्ज या कोष्ठबद्धता के कारण लक्षण का अध्ययन करेंगे।
- कब्ज या कोष्ठबद्धता की विभिन्न वैकल्पिक चिकित्सा– यौगिक चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, प्राण चिकित्सा तथा जड़ी बूटी चिकित्सा का विश्लेषण करेंगे।
- अजीर्ण रोग को समझ सकेंगे।
- अजीर्ण रोग के कारण लक्षण का अध्ययन करेंगे।
- अजीर्ण रोग की विभिन्न वैकल्पिक चिकित्सा, यौगिक चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, प्राण चिकित्सा तथा जडी बूटी चिकित्सा का विश्लेषण करेंगे।

4.3 कब्ज

कब्ज जिसे की मलाप्रवृति वद्धविटकता, विड्गह, विडविबद्धता आदि अनेक शब्दों द्वारा शास्त्रों में जाना जाता है। सुश्रुत संहिता में 'अनाह' शब्द का प्रयोग विबंध अर्थ में किया गया है। कब्जियत, कोष्ठबद्धता या मलबन्ध आदि नामों से जाना जाता है।

साधारण भाषा में शुष्क मल के रूकने में होने वाला रोग ही कब्ज है, कब्ज हमारे गलत आहार– विहार अर्थात् खान–पान सम्बन्धी अनेक अनियमितताओं के कारण मल का रूक जाना ही कब्ज है।

हम जो भी खाते है, उस भोजन का आमाश्य तथा आंतों द्वारा पाचन, अवशोषण तथा सात्मीकरण किया जाता है। अनपचा कूड़ा स्वतः मल के रूप में निकाल दिया जाता है, जब मल बाहर नही निकलता है, उसे ही कब्ज या कोष्ठबद्धता कहते है।

अतः कब्ज वह अवस्था है, जिसमें लिए गये आहार का अवशोषण (residue) 48 घण्टे में भी शरीर से बार नही निकल पाता है और आंतों में ही पड़ा रहकर अनेंको रोग उत्पन्न करता है।

4.3.1 कारण– कब्ज हमारे गलत आहार– विहार के कारण होता है। कब्ज होने के कुछ अन्य प्रमुख कारण निम्न है–

- अत्यधिक गरिष्ठ एवं मिर्च–मसाले व तली–भुनी चीजों का अत्यधिक सेवन करना।

- अत्यधिक रूखा एवं बासी भेजन करने से कब्ज हो जाता है।
- भोजन का समय निश्चित नहीं होना भी कब्ज का एक कारण है।
- चोकर रहित अति महीन आटा, बिना छिलके की दाल तथा रेशे रहित आहार का अधिक सेवन भी कब्ज का एक कारण है।
- परिश्रम कम करना, अकर्मण्य जीवन जीने वाले भी कब्ज से ग्रस्त हो जाते है।
- अत्यधिक व्यवस्तता के कारण या शर्म या संकोच के कारण मलोत्सर्जन रोके रखने की आदत भी इस रोग के लिए उत्तरदायी है।
- अपर्याप्त आहार एवं अत्यधिक परिश्रम के कारणों से भी कब्ज का हो जाता है।
- भय चिंता क्रोध आदि मानसिक विकार के कारण भी इस रोग के लिए उत्तरदायी है।
- मल मार्ग के रोगों के कारण जैसे बवासीर, भगन्दर आदि।
- भोजन को चबा–चबाकर नहीं खाना।
- बार–बार भोजन करने की आदत।
- भोजन में शाक–सब्जी का अभाव।
- भोजन में विटामिन का अभाव।
- कब्ज के कारणो में वृद्धावस्था में खून की कमी, उदर की पेशियों की दुर्बलता आदि है।
- शरीर में पानी की कमी।
- लम्बी बीमारी के कारण शारीरिक दोनो की प्रबलता जिससे शरीर के अन्य अंग–अवयव सही से कार्य नही कर पाते है।
- बीमारी के कारण अधिक औषधियों का सेवन तथा लीवर आदि के ठीक से कार्य ना कर पाने के कारण भी कब्ज रोग होता है।

4.3.2 लक्षण–कब्ज होने पर अनेक शारीरिक एवं मानसिक रोगों की उत्पत्ति होने लगती है।

- होने पर शौंच में कठिनाई होती है।
- रोगी के पेट में हर समय भारीपन रहता है।
- किसी रोगी की भूख बढ़ जाती है, परन्तु अधिकतर रोगियों की भूख कम हो जाती है।
- कुछ रोगियों को हल्का मीठा–मीठा दर्द रहता है तथा कुछ रोगियो में ये दर्द नही रहता है।
- कब्ज के रोगियो के मुख से अक्सर दुर्गन्ध आती रही है। जीभ पर सफेद परत सी जीम रहती है।
- मल के जमे रहने से, सड़ने से अधोमार्ग द्वारा दुर्गन्धयुक्त वायु निकलती रहती है।
- आँतो में अन्न की सड़न से, रोगी के सिर दर्द, चक्कर आना, मानसिक तनाव व मितली एवं शिथिलता के लक्षण उत्पन्न होते है।

- कब्ज के रोगियो में आलस्य, सुस्ती, नींद ना आना तथा ज्वर आदि लक्षण देखने को मिलते है।
- कब्ज के रोगियो में अग्निमांद्य, अरूचि, अफारा आदि लक्षण भी देखने को मिलते है।
- स्नायु सम्बन्धी रोगों का शिकार हो जाता है।
- अधिक दिनों तक कब्ज रहने से अर्श (बवासीर) की उत्पत्ति हो सकती है।
- गैस बनने लगती है। पेट पर गैस बनने पर सिर दर्द तथा यह गैस हृदय को प्रभावित पर घबराहट को जन्म देती है।
- एसिडिटी भी उत्पन्न हो जाती है तथा गले में जलन की शिकायत होती है।
- सुबह सोकर उठने के बाद भी थकावट होना,
- कब्ज के रोगियो को बार–बार सिर में दर्द होता है।
- कई त्वचा सम्बन्धी समस्याएं उत्पन्न हो जाती है।
- रोगी में कमजोरी, चिड़चिड़ापन एंव बौखलाहट आदि लक्षण देखने को मिलते है।
- नेत्रों में भारीपन की समस्या भी बनी रहती है।
- सम्पूर्ण शरीर में भारीपन व्याप्त हो जाता है।

4.3.3 कब्ज के प्रकार–

आयुर्विज्ञानियो ने कब्ज को तीन भागो में विभाजित किया हैः–

1.यान्त्रिक या कायिक कब्ज–

गर्भाशय, आमाशय या आँतो के विभिन्न रोग ट्यूमर, अल्सर, सूजन, घाव, निशान, फिशर, रक्तार्भ आदि कारणो से उत्पन्न कब्ज यान्त्रिक या कायिक कब्ज कहलाता है।

2.कियात्मक कब्ज–

मानसिक संवेगो, स्नायविक कमजोरी, अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियो के विकार, मल के वेग को रोकना, औषधिजन्य एंव आहार विषाक्तता, कम पानी पीना, श्रम का अभाव, धूम्रपान, बिना चबाये भोजन करना, भोजन में फाइबर की कमी, मैदा, बेसन आदि से बने पदार्थो का अधिक से अधिक प्रयोग से आँतो के स्वाभाविक कार्य में रूकावट आ जाती है। जिससे कियात्मक कब्ज होता है।

3.जन्मजात कब्ज–

बचपन में ही आँतो की संरचनात्मक विकृति के कारण जन्मजात कब्ज होता है।

4.4 वैकल्पिक चिकित्सा

प्रिय पाठको आपने अभी तक कोष्ठबद्धता के कारण, लक्षण का अध्ययन किया। अब आपके मन में प्रश्न आ रहा होगा कि कब्ज या कोष्ठबद्धता की चिकित्सा कैसे की जाए। आइये अब अध्ययन करे कि चिकित्सा कैसे व कितने प्रकार से की जा सकती है। कई वैकल्पिक तरीको से कब्ज की चिकित्सा की जा सकती है।

4.4.1 यौगिक चिकित्सा–जिसमें आप सर्वप्रथम अध्ययन करेंगे कब्ज की वैकल्पिक चिकित्सा कैसे की जा सकती है।

कब्ज की यौगिक चिकित्सा–

कब्ज की चिकित्सा उचित आहार–विहार व योग की क्रियाओं के अभ्यास के द्वारा की जा सकती है। यौगिक क्रियाओं में निम्न अभ्यास कब्ज से मुक्ति दिला सकते है।

- **षट्कर्म–** अग्निसार क्रिया,वस्ति कर्म एवं नौलि का अभ्यास। आवश्यकतानुसार 15 दिन में एक बार लघु शंखप्रक्षालन भी किया जा सकता है। शंखप्रक्षालन उचित मार्गदर्शन में ही करवायें।
- **आसन–** पवनमुक्तासन, कौआचालासन, त्रिकोणासन, ताड़ासन, कटि चक्रासन, उदराकर्षण, तिर्यक भुजंगासन, मत्स्यासन, अर्द्ध मत्स्येन्द्रासन, हलासन आदि आसन कब्ज रोगियो के लिए अति उत्तम है। कब्ज के रोगी को भोजन के तुरन्त बाद 10 मिनट तक वज्रासन में बैठना चाहिए। सूर्यनमस्कार– सूर्यनमस्कार का प्रतिदिन सूर्योदय के समय 12 आवृतियो तक अभ्यास करना चाहिए।
- **प्राणायाम–** प्रतिदिन भ्रस्त्रिका प्राणायाम, सूर्यभेदी प्राणायाम एवं नाड़ीशोधन प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।
- **मुद्रा एवं बध–** कब्ज रोगियो के लिए योगमुद्रा, पाानी मुद्रा, अश्विनी मुद्रा एवं बन्धो में उड्डियान बंध और महाबन्ध का अभ्यास करना चाहिए।
- **ध्यान–** कब्ज के रोगियो को ध्यान के माध्यम से अन्तमौन का अभ्यास करना चाहिए।

टिप्पणी–

1. कब्ज होने पर कभी भी रेचक औषधियों का उपयोग करे। रेचक दवाइयाँ आँतो को कमजोर करती है और आँते अपनी मल निष्कासन प्रकिया को सुचारू रूप से नही कर पाता है। यदि नियमित रेचक दवाइयों का उपयोग किया जाए तो यह कब्ज के बढ़ने का एक कारण बन जाती है।

2. कई व्यक्तियों में एनिमा को लेकर कई भ्रम है। उन्हे लगता है कि एनिमा की आदत पड़ जाती है, यह सर्वथा गलत है।

4.4.2 प्राकृतिक चिकित्सा

मिट्टी तत्व चिकित्सा – मिट्टी की पट्टी–

- कब्ज के रोगी को सर्वप्रथम् प्रातः काल खाली पेट आधे घण्टे मिट्टी की पट्टी पेडू पर रखनी चाहिए।
- भोजन के 4–5 घण्टे बाद मध्य काल में मिट्टी की पट्टी प्रतिदिन देनी चाहिए।

जल तत्व चिकित्सा–उषापान–

- प्रातः काल सोकर उठते ही सूर्योदय से पहले सायःकाल ताम्रपात्र रखा शुद्व जल पीना चाहिए।
- लगभग आधा किलो या जितना आसानी से पीया जा सके पीना चाहिए।

- उसके थोडी देर बाद शौच जाना कब्ज को आसानी से ठीक कर सकता है।

एनिमा–

- प्रातःकाल गुनगुने पानी का एनिमा जिसमें 2–3 बूंद कागजी नींबू का रस मिला हो पेट साफ कर लेना चाहिए।
- इस प्रयोग का जब भी पेट भारी हो करना चाहिए।
- आधे गिलास ठण्डे पानी में एक कागजी नींबू का रस मिला कर पेट साफ करने के लिए दिन में 4–6 बार तक पीना चाहिए।

अग्नि तत्व चिकित्सा–रंग चिक्त्सिा–

- नारंगी तथा पीली बोतल में बनाया हुआ सूर्य तप्त जल 50 ग्राम दिन में 3 बार पीना चाहिए।
- यह कब्ज के लिए अत्यन्त लाभकारी है।

वायु तत्व चिकित्सा–मालिश–

- प्रतिदिन प्रातःकाल उठते ही 10–15 मिनट की सूखी मालिश करना भी कब्ज में लाभ प्रदान करता है।
- प्रतिदिन यदि सूर्य नमस्कार की कसरत विधिपूर्वक कर ली जाए तो कब्ज बहुत जल्दी ठीक हो जाता है।
- नाभि के चारों ओर हथेलियों से मर्दन करने और हाथों को दाहिनी ओर से बाई ओर को मालिश करने पर रोगी को आराम मिलता है।

प्रातः कालीन भ्रमण–

प्रतिदिन नियमित रूप से प्रातः काल सूर्योदय से पहले भ्रमण करना चाहिए। इससे रोगी को आराम मिलता है तथा कब्ज धीरे–धीरे कम होने लगता है।

आकाश तत्व चिकित्सा– उपवास–

- सप्ताह में एक दिन उपवास करने का नियम बना लें।
- ताजे जल में कागजी नींबू का रस मिलाकर कई मात्रा में पीयें।
- एक दिन केवल जल पीकर उपवास करना चाहिए।

प्रार्थना–

- हर दिन कुछ मिनट प्रार्थना करने से भी हार्मोन्स एंव एन्जाइम सन्तुलित होते है।
- हमारे अन्दर की नकारात्मकता दूर होती है क्योंकि नकारात्मकता के कारण ही कब्ज उत्पन्न होती है।
- जब हम प्रार्थना करते है, तो सकारात्मक भाव उत्पन्न होते है और कब्ज दूर होती है।

4.4.3– चुम्बक चिकित्सा–

कब्ज के रोगी को निम्न प्रकार से चुम्बक चिकित्सा दी जाती सकती है–

- पुराने कब्ज हेतु तलुओ के नीचे शक्तिशाली चुम्बको का प्रयोग 10–10 मिनट तक दिन में दो बार करने से लाभ मिलता है।

- नाभि पर एंव नाभि की बायी ओर से एक्युप्रेशर बिंदु पर उत्तरी ध्रुव का चुम्बक रखना चाहिए।
- दिन में 3–4 बार चुम्बकीय जल का सेवन करने से लाभ मिलता है, चुम्बकीय जल एक बार में 50–75 मि. ली. की निधार्रित मात्रा में लेना चाहिए।

4.4.4 प्राण चिकित्सा–

प्राण चिकित्सा हेतु निम्न उपचार क्रम को अपनाना चाहिए–

- कब्ज रोग में नाभि चक्र, सौर जालिका चक्र और मूलाधार चक्र की जाँच करनी चाहिए।
- पेट की भी जाँच करे।
- नाभि चक्र और सम्पूर्ण पेट वाले स्थान की स्थानीय सफाई करे।
- नाभि चक्र की स्थानीय झाड़– बुहार के बाद उसे ऊर्जित करें।
- यही प्रकिया सौर जालिका चक्र के लिए करें। सर्वप्रथम् अग्र सौर जालिका चक्र की स्थानीय सफाई करे, स्थानीय झाड़– बुहार के बाद उसे ऊर्जित करें।
- प्रक्षेपित प्राण ऊर्जा की स्थिर होने की कल्पना करें।
- यही प्रकिया मूलाधार चक्र के लिए करें। सर्वप्रथम् मूलाधार चक्र की स्थानीय सफाई करे, स्थानीय झाड़– बुहार के बाद उसे ऊर्जित करें।
- प्रक्षेपित प्राण ऊर्जा की स्थिर होने की कल्पना करें।
- इस उपचार को रोगी को आवश्यकतानुसार देना चाहिए। यदि कब्ज सामान्य स्थिति में है तो सप्ताह में 2–3 बार इस उपचार क्रम को अपनाने में ही लाभ मिलता है।
- यदि रोगी कब्ज की जीर्ण स्थिति में है, तो प्रतिदिन इस उपचार क्रम की विधि द्वारा उपचार करना चाहिए।

4.4.5 जड़ी बूटी चिकित्सा–

1. मुनक्का–कब्ज होने की दशा में 5–7–11 दाने दूध में पकाकर लिये जा सकते है।
2. इस्सबगोल– 2 चम्मच दूध से या दही के साथ ले।
3. एरण्ड तेल– 1 चम्मच दूध के साथ लेने से लाभ मिलता है।
4. त्रिफला चूर्ण– 1 चम्मच पानी से, गुड के साथ भी दिया जा सकता है।
5. पंचसकार चूर्ण– 1 चम्मच गरम पानी से सेवन रात्रि सोने से पहले करना चाहिए।
6. चोकरयुक्त आटे की रोटियाँ कब्ज में लाभकारी होती है।
7. कब्ज में भीगे चने में नमक और अदरक मिलाकर खाने से लाभ होता है।
8. भोजन के 1–2 घण्टे बाद फलों का सेवन करना कब्जनाशक प्रयोग है।
9. भोजन के 1 घण्टे बाद अमरूद में नींबू, नमक, कालीमिर्च डालकर खाना लाभदायक है।
10. मलावरोध में 100 ग्राम टमाटर का रस नित्य पीना उत्तम प्रयोग है।

11. मलावरोध में प्रातःकाल खाली पेट 2 सेब खाने चाहिए।
12. प्रातःकाल 5 बजे उठकर ताम्र पात्र के जल को पीना चाहिए जिससे रात्रि में ही रख लेना चाहिए।
13. मध्यांह्न ने भोजन के साथ तक्र (मट्ठा) का सेवन करना चाहिए। तक्र में सेंधा नमक, भुनी हींग, सौंठ तथा भुना जीरा पिलाना चाहिए। यह कब्ज के लिए लाभकारी है।
14. कब्ज के रोगी के लिए रात्रि में दुग्धपान हितकारी होता हैं।

टिप्पणी–

- भोजन ग्रहण करने के दौरान जल को अत्यधिक कम मात्रा में ग्रहण करे। केवल एक–दो घूँट ही ले।
- भोजन करने के 2 घण्टे पश्चात् इच्छानुसार पानी पी सकते है। पानी को सदैव घूँट–घूँट पीकर उसका स्वाद महसूस करते हुए पीना चाहिए।

4.4.6– आहार चिकित्सा–

कब्ज के रोगी को निम्न आहार चिकित्सा दी जा सकती है,

- कब्ज को समाप्त करने वाले फलों में नाशपाती, आँवला, अमरूद, बिल्ब, टमाटर, मुनक्का, खजूर, शहतूत, पपीता, चीकू, अनार, किशमिश, खुबानी तथा अंजीर लाभप्रद है।
- इनके अतिरिक्त फलों में सेब, शरीफा, खरबूजा, तरबूजा, जामुन मौसम्मी तथा संतरा फांके निकालकर रेशे सहित आदि मौसमानुसार मिलने वाले फल खाने से कब्ज दूर होता है।
- सब्जियों में पालक, चौलाई बथुआ आदि पत्ते वाली सब्जी, लौकी, टिण्डा, चुकन्दर, तोराई गाजर, खीरा, प्याज, लहुसन, आलू, पत्तागोभी, फूल एंव गांठगोभी, मटर ये सभी प्रायः कब्ज में लाभकारी है।
- सब्जियों के अतिरिक्त अंकुरित गेहूँ, मूँग, मटर, चना, मसूर, सोयाबीन, छाछ, दूध, चोकर समेत आटे की रोटी, अंकुरित गेहूँ का दलिया एंव आटे की रोटी, काजू, बादाम, अखरोट, मूँगफली आदि का प्रयोग करें।
- अधिक भोजन, गलत चीजें परिशोधित, परिष्कृत तले–भुने, फास्ट एंव जंक फूड, परिशोधित कन्फेक्शनरी, संश्लिष्ट एंव गरिष्ठ आहार बिल्कुल नहीं करना चाहिए।

विशेष–

- प्रातःकाल खाली पेट आधा पपीता खाकर ऊपर से एक गिलास दूध पीने से कब्ज दूर होता है।
- नींबू पानी पर रहने से पेट को पूर्ण विश्राम मिलता है। उपवास काल में शरीर तथा तन को भी विश्राम देने के लिए पूर्ण मौन रखे। तीन दिन बाद, तीन दिन तक, तीन तीन घण्टे के अन्तराल से फल तथा सब्जी का रस मौसमानुसार तीन सौ मिली. के हिसाब से लें।

- पुनः तीन दिन तक फल, सलाद तथा उबली सब्जी पर रहें। पुनः धीरे धीरे रोटी, दलिया या भात से शुरू करें।

4.5 अजीर्ण

अजीर्ण जिसे अपचन, मंदाग्नि तथा अग्निमांद्य भी कहते है। अजीर्ण होने पर शरीर और पेट भारी रहता है। कभी–कभी दस्त और कभी–कभी कब्ज की भी शिकायत हो जाती है और कभी बदहजमी के कारण दस्त भी हो जाते है। भोजन के बाद जी मचलता है। खट्टी डकारे, कभी–कभी उल्टी (कै) भी हो जाती है।

आयुर्वेद के अनुसार–

' ग्लानिबम्ध प्रवृतिर्वा सामान्याजीर्ण लक्षणम्।।'

अर्थात्

शरीर में ग्लानि या मल का अवरोध या दस्तों का अधिक होना अजीर्ण के सामान्य लक्षण है।

अजीर्ण के रोगो में शरीर और पेट भारी रहता है। कब्ज और दस्त की शिकायत रहती है। कभी–कभी खट्टी डकारें आती है। भोजन के बाद जी मचलता है और उल्टी (कै) भी हो सकती है।

4.5.1 कारण–

अजीर्ण रोग के कारणो को निम्न दो भागो में बाँटा जा सकता है।

1. दैहिक कारण
2. मानसिक कारण

1. दैहिक कारण–

- भोजन समय पर नही करना।
- बहुत अधिक जल पीना।
- स्वाद के वशीभूत होकर बार–बार खाना।
- दिन में शयन करना।
- मल–मूत्र आदि वेगों को रोकना।
- रात्रि में जागरण करना।

2. मानसिक कारण–

अजीर्ण रोग के मानसिक कारण निम्न है–

- जो व्यक्ति अत्यधिक भयग्रस्त रहते है, उन्हे भी यह रोग होता है।
- जो व्यक्ति दूसरो से ईर्ष्या रखते है, उन्हे भी यह रोग अवश्य होता है।
- लोभी, शोक, दीनता, मत्सरता आदि कारण रोग को बढ़ाने वाले और रोग को उत्पन्न करने के प्रमुख मानसिक कारण है।

4.5.2 लक्षण–

अजीर्ण होने पर निम्न लक्षण उत्पन्न होते है–

- खट्टी डकार आना
- भोजन का ठीक से ना पचना
- शरीर और पेट भारीपन
- पेट का फूलना

- जी मचलना, मुँह में पानी आना
- गले व कलेजे में जलन होना
- सीने में भरीपन एवं घबराहट होना।
- दिल की धड़कन बढ़ना
- पाखाना ना होना या पतला होना
- भूख बिल्कुल भी ना लगना
- भोजन बिना पचे ही पाखाने के द्वारा निकल जाना
- स्नायविक दुर्बलता का होना और उपचार ना मिलने पर दुर्बलता और बढ़ जाना

4.5.3 अजीर्ण के प्रकार–

आयुर्वेद के अनुसार अजीर्ण रोग के छः प्रकार होते है–

1. आम अजीर्ण–

आम अजीर्ण के होने पर पेट में भारीपन होता है। गाल एवं आँखों में सूजन एवं जी मचलता है। भोजन ना पच पाने के कारण रोगी को उसी प्रकार की डकारें आती है। आमाजीर्ण कफ के प्रकोप से होता है।

2. विदग्ध अजीर्ण–

विदग्ध अजीर्ण में प्यास, मूर्च्छा, खट्टी डकारें, पसीना आना, शरीर में दाह आदि के लक्षण होते है। विदग्ध अजीर्ण पित्त के प्रकोप से होता है।

3. विष्टब्धाजीर्णा–

यह वायु के प्रकुपित होने पर होता है। इस प्रकार के अजीर्ण में ल एवं अधोवायु का रूक जाना, शरीर में षूल, जड़ता, शरीर में दर्द, अफारा आदि लक्षण होते है।

4. रस शेष अजीर्ण–

रस के शेष रहने पर रस शेष अजीर्ण होता है। इस प्रकार के अजीर्ण में हृदय में भारीपन, शरीर में भारीपन तथा अरूचि के लक्षण होते है।

5. दिन पाकी अजीर्ण–

इस प्रकार का अजीर्ण भोजन न पचने से होता है। भोजन रात व दिन में पचता है। इस अजीर्ण में अफारा और शरीर में दर्द के लक्षण नही होते है।

6. प्राकृत अजीर्ण–

यह अजीर्ण नित्य रहने वाला एवं स्वाभाविक है।

4.6 वैकल्पिक चिकित्सा–

प्रिय विद्याथियो, आपने अजीर्ण रोग के कारण लक्षण का अध्ययन किया, अब आपके मन में इस रोग के विभिन्न पद्धतियो द्वारा उपचार के प्रश्न उठ रहे होंगे। अब आप अजीर्ण का विभिन्न वैकल्पिक चिकित्सा विधियों द्वारा रोगोपचार का अध्ययन कर इन प्रश्नों के सामाधान पा सकेंगे।

4.6.1 यौगिक चिकित्सा–

प्रिय विद्याथियो, अजीर्ण रोग के रोगियो के लिए यौगिक चिकित्सा सबसे अच्छी चिकित्सा विधि है। अजीर्ण का एक कारण तनाव है। यौगिक चिकित्सा तनाव को कम करने एवं पाचन क्रिया को सुचारू बनाने में सहायक है।

यौगिक चिकित्सा में निम्न अभ्यासों द्वारा अजीर्ण को दूर किया जा सकता है–

- **षट्कर्म–**

षट्कमो में कुंजर नेति, धौति और नौलि क्रिया अजीर्ण रोग हेतु अति लाभकारी है।

- **आसन–**

अजीर्ण के रोगियो को शक्तिसंचालन के अभ्यासो को करना चाहिए, जैसे– चक्कीचालन, नौकासंचालन, उत्तान पादासन, पवनमुक्तासन, नौकासन, शलभासन, हलासन आदि का अभ्यास करना चाहिए।

अजीर्ण के रोगियो को भोजन के तुरन्त बाद वज्रासन में बैठना चाहिए।

- **प्राणायाम–**

प्राणायाम मे दीर्घ श्वास–प्रश्वास एवं अनुलोम–विलोम लाभकारी है।

- **मुद्रा एवं बन्ध–**

4.6.2– प्राकृतिक चिकित्सा–

मिट्टी तत्व चिकित्सा–मिट्टी की पट्टी –

- अर्जीण के रोग में रात भर के लिए पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी रखें इससे अर्जीण के रोग में अत्यन्त लाभ मिलता है।
- कमर की गीली लपेट लगाने से भी रोगी को लाभ मिलता है।

जल तत्व चिकित्सा – उषापान – एनिमा –

- यौगिक क्रियायें जलनेति, सूत्रनेति, घृतनेति आदि षट्कर्मो के बाद 7–8दिनों तक लगातार नीम के उबले पत्तों का एनिमा लेना चाहिए।
- भोजन से एक घण्टा पहले एक गिलास ठण्डें जल में एक कागजी नींबू का रस डालकर पीना चाहिए। यह क्रिया अर्जीण के रोग में अत्यन्त लाभकारी है।

कटि– स्नान –

- विशेषकर गरम और ठण्डा कटि स्नान इस रोग में अत्यन्त लाभकारी है।
- 5 मिनट तक गरम पानी में कटि– स्नान करने के बाद 3 मिनट तक ठण्डें पानी में कटि–स्नान लेना चाहिए।
- इस क्रिया को 3–4 बार तक दोहराना चाहिए। यह स्नान अर्जीण के रोगियों को ठीक करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अग्नि तत्व चिकित्सा–

प्रतिदिन नीली बोतल के सूर्य तप्त जल की 4 खुराकें 50 ग्राम ही पीने से लाभ मिलता है।

वायु तत्व चिकित्सा– अभ्यंग चिकित्सा–

- अर्जीण रोगियों को सक्रिय करने के लिए सर्वाग मालिश देना चाहिए, यह रोगी के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होता है।
- अर्जीण रोगियों को सुबह– शाम खाली पेट के चारों ओर हाथों की कटोरी बनाकर हल्की थपकी दें।
- कटोरी थपकी मालिश से अर्जीण रोगियों को चमत्कारिक लाभ मिलता है।

प्रातःकालीन भ्रमण–प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योदय से पहले ओस से भीगी घास पर भ्रमण करने से हमारा पूरा शरीर क्रियाशील हो जाता है, और हमारा पाचन तन्त्र हमेशा सक्रिय रहता है तथा अजीर्ण जैसे घातक रोग से छुटकारा मिलता है।

आकाश तत्व चिकित्सा–

- अर्जीण रोगी को 3–4 दिनों का उपवास कागजी नींबू के रस मिले जल पर करना चाहिए, या फलों के रस पर रहना चाहिए।
- उपवास काल के दौरान गाजर, संतरा, टमाटर आदि का रस अत्यन्त लाभकारी है।
- उपवास व अल्पाहार के बाद भूख एंव पाचन सशक्ति के अनुसार सादा और सात्विक आहार करना आरम्भ करना चाहिए।

प्रार्थना– जब हम प्रार्थना करते है, तो सकारात्मक भाव उत्पन्न होते है हमारे अन्दर की नकारात्मकता दूर होती है प्रार्थना के माध्यम से भी हार्मोन्स एंव एन्जाइम संतुलित होते है, पाचन तन्त्र क्रियाशील होते है तथा सम्पूर्ण शरीर स्वस्थ होता है और अजीर्ण जैसे घातक रोग में मुक्ति पाने में सफलता मिलती है।

4.6.3 चुम्बक चिकित्सा–अजीर्ण के रोगियों को चुम्बक चिकित्सा से अति लाभ मिलता है। अजीर्ण रोग के उपचार हेतु सुबह शाम नाभि के ऊपर शक्तिशाली चुम्बक लगाना चाहिए। नाभि में 20–30 मिनट तक चुम्बक का उत्तरी ध्रुव्र लगाना चाहिए। दोनों हथेलियों में भी चुम्बक का प्रयोग करना चाहिए। रोगी के पेट पर चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव्र लगाना चाहिए। साथ ही साथ 3–4 बार चुम्बक प्रभावित जल पीना चाहिए।

4.6.4 – प्राण चिकित्सा– कब्ज से ग्रस्त रोगी के सौर जालिका चक्र, नाभि चक्र, पेट और मूलाधार चक्र प्रभावित होते है। अतः इन चक्रो में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

- सर्वप्रथम् सौर जालिका चक्र, नाभि चक्र, और पेट की जाँच करनी चाहिए।
- तत्पश्चात् अग्र सौर जालिका चक्र की स्थानीय झाड़– बुहार के बाद उसे ऊर्जित करें।
- प्रक्षेपित प्राण ऊर्जा की स्थिर होने की कल्पना करें।
- नाभि चक्र की स्थानीय सफाई करे, पेट के ऊपरी एवं निचले भाग की भी स्थानीय झाड़– बुहार करें। नाभि चक्र की स्थानीय सफाई के बाद उसे ऊर्जित करें।
- प्रक्षेपित प्राण ऊर्जा की स्थिर होने की कल्पना करें।
- हाथकूटा उसना चावल का मांडयुक्त भात भी अत्यन्त उपयोगी होता है।
- बाजरी, तेल, घी, गुड़, मूंगफली को अधिक खाने से उत्पन्न अजीर्ण में छाछ पीयें।
- छाछ में सेंधा नमक, भुना जीरा, सौफ, काली मिर्च पीसकर मिलाकर पीने से प्रायः हर प्रकार के अजीर्ण में लाभ होता है।
- प्याज काटकर नीबू निचोड़कर भोजन के साथ खाने से लाभ होता है।
- बथुआ का उबालकर एक कप सूप पीयें।
- फूलगोभी या पत्तागोभी का रस तथा जल सम मात्रा में मिलाकर 40 मिली. लेने से लाभ मिलता है।

- नींबू काटकर उस पर काली मिर्च तथा नमक लगातार गर्म करके चूसने से लाभ मिलता है।
- आयुर्वेदिक चूर्ण, चटनी, बटी, आसव तथा अरिष्ट तथा एलोपैथिक दवाइयों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- तले भुने, चटपटे, नमकीन, मिर्च–मसाले, फास्ट फूड, जंक फूड़, कृत्रिम पेय, चाय, कॉफी, बिस्किट, ब्रेड नही खाना चाहिए।

विशेष–

- अजीर्ण में उपवास चिकित्सा चमत्कार है।
- तीन दिन रसाहार, तीन दिन नींबू पानी, शहद तथा ती दिन सिर्फ पानी, दो दिन रस, दो दिन उबली सब्जी, छाछ–दही तीन घण्टे के अन्तर से दें।
- भूख लगने पर ही भोजन दें।
- खाना खूब चबा–चबाकर खायें।
- खाने के मध्य तीन घण्टे का अन्तर रखें।
- खाने के एक घण्टे पहले या एक घण्टे बाद पानी पीयें।

अभ्यास प्रश्न

(क) आधुनिक सभ्यता का प्रतिष्ठित रोग है–

(अ) उच्चरक्तचाप (ब) कब्ज
(स) सिरदर्द (द) अतिसार

(ख) कब्ज के कारण है–

(अ) अत्यधिक तले भुने पदार्थो का सेवन
(ब) अधिक औषधियों का सेवन
(स) अत्यधिक रूखा व बासी भोजन
(द) उपरोक्त सभी

(ग) कब्ज की यौगिक चिकित्सा है–

(अ) षट्कर्म (ब) आसन
(स) प्राणायाम (द) उपरोक्त सभी

(घ) अजीर्ण के पर्यायवाची है–

(अ) अपचन (ब) मंदाग्नि
(स) अग्निमाद्यं (द) उपरोक्त सभी

(ड़) अजीर्ण के कारण है–

(अ) समय पर भोजन न करना (ब) अ व स दोनो
(स) भय ग्रस्त रहना (द) पीले रंग की सूर्य तप्त जल का सेवन

4.7 सारांश

प्रिय विद्यार्थियो इस इकाई मे आपने कब्ज एंव अर्जीण की वैकल्पिक चिकित्सा का अध्ययन किया वैकल्पिक चिकित्सा में यौगिक चिकित्सा, द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा चुम्बक चिकित्सा तथा प्राण व जड़ी बूटी चिकित्सा का अध्ययन किया कब्ज व अजीर्ण चिकित्सा का मूल कारण, गलत आहार–विहार अनियमित दिनचर्या ही है, सुपाच्य आहार व विहार से व इन चिकित्सा पद्वतियों को अपनाकर रोगो से मुक्त हुआ जा सकता है, किसी भी चिकित्सा को आप अपनाते है सभी चिकित्सा पद्वतियॉ जीवन शक्ति प्रबल कर, रोगो को समाप्त करती

है, स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ का रक्षण इन चिकित्सा पद्वतियों के द्वारा सम्भव है, तथा विकारी के रोग को दूर करने की सामर्थ्य भी है, अतः वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों को अपनाकर मनुष्य हमेशा स्वस्थ रह सकता है तथा रोग होने की स्थिति मे रोग का उपचार किया जा सकता है।

4.8 शब्दावली

- अवशोषण – बचा हुआ
- सात्मीकरण – अनुकूल सारूप्य
- अग्निमांद्य – अग्नि का मंद होना
- यान्त्रिक – जीवन धारण करने के उपयुक्त
- रेचक औषधियॉ – कोष्ठ की शुद्धि करने वाली औषधि
- ताम्र पात्र – तॉबे का बर्तन

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) – ब, (ख) – द, (ग) – द, (घ) – द, (ड़) – ब,

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- जिन्दल राकेश। (2005). प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मोदीनगर, उत्तर प्रदेश।
- कर्मानन्द स्वामी। (2010). रोग और योग, बिहार योग विद्यालय मुंगेर (बिहार)।
- नीरज, नागेन्द्र कुमार। (2013). असाध्य रोगों की सरल चिकित्सा, शीतल प्रेस, जयपुर।
- नीरज, नागेन्द्र कुमार। (2013). पेट के रोगों की सरल चिकित्सा, शीतल प्रेस, जयपुर।
- डा. सक्सेना, ओ. पी.। (2008). वृहद् आयुर्वेदिक चिक्त्सिा, हिन्दी सेवा सदन, हालनगंज, मथुरा।
- चौहान, डा. जहान सिंह। (2009). क्लीनीकल डायग्नोसिस एण्ड ट्रीटमेंण्ट्स सुमित प्रकाशन, आगरा।
- शुक्ल, डा. अमोल चन्द्र। (2010). धन्वन्तरित कृत आयुर्वेद चिकित्सा गाईड, डी. पी. बी. पब्लिकेशन्स, दिल्ली–6।

4.11 सहायक पाठ्य सामग्री–

1 प्रुर्थी राजकुमार (2005) वैकल्पिक चिकित्सा, प्रभात पेपर वैक्स, नई दिल्ली।
2 विवेक आर. एस. (2004) वैकल्पिक चिकित्सा, डायमण्ड पाकेट बुक्स नई दिल्ली।

4.12 निबन्धात्मक प्रश्न–

- ✓ कब्ज रोग क्या है, इसके कारण व प्राकृतिक चिकित्सा लिखिए।
- ✓ कब्ज की यौगिक व चुम्बक चिकित्सा का वर्णन कीजिए।
- ✓ अजीर्ण के कारण व लक्षण पर प्रकाश डालिए।
- ✓ अजीर्ण रोग की प्राकृतिक व यौगिक चिकित्सा लिखिए।
- ✓ अजीर्ण रोग की जड़ी बूटी चिकित्सा व प्राण चिकित्सा पर प्रकाश डालिए।

इकाई–5 अम्ल पित्त – कारण, लक्षण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 अम्ल पित्त का परिचय
5.3.1 कारण
5.3.2 लक्षण
5.3.3 प्रकार
5.4 वैकल्पिक चिकित्सा
5.4.1 यौगिक चिकित्सा
5.4.2 प्राकृतिक चिकित्सा
5.4.3 चुम्बक चिकित्सा
5.4.4 प्राण चिकित्सा
5.4.5 जड़ी – बूटी चिकित्सा
5.4.6 आहार चिकित्सा
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 सहायक पाठ्य सामाग्री
5.10 निबन्धात्मक प्रष्न

5.1 प्रस्तावना

आज मनुष्य प्रतिस्पर्द्धात्मक जीवन जी रहा है। प्रतिस्पर्द्धा ने मनुष्य को मोह, लोभ, क्रोध आदि से जकड़ लिया है। देखा जाए तो अम्ल पित्त से सम्बन्धित रोग है, परन्तु इसकी उत्पत्ति में मानसिक एवं भावनात्मक उद्वेगो का प्रमुख स्थान है। जो व्यक्ति अपने जीवन से असंतुष्ट हो, असुरक्षा के भाव तले जी रहा हो, वो भी इस रोग से ग्रसित हो जाता है।
इसके साथ ही आज हमें आवष्यकता है अपने षारीरिक आवष्यकताओं पर लगाम लगााने की। जीभ के स्वाद से जो सुख की अनुभूति होती है, उस पर रोक लगाने की।
अम्ल पित्त रोग को मानसिक असंतुष्टि को दूर कर तथा खान–पान को सयंमित कर ठीक किया जा सकता है।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत पंचम इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप –

- ❖ अम्ल पित्त रोग को समझ सकेंगे।
- ❖ अम्ल पित्त के कारण, लक्षण को जान सकेंगे।
- ❖ अम्ल पित्त के लक्षणों का अध्ययन करेंगे।

- ❖ अम्ल पित्त की यौगिक तथा प्राकृतिक चिकित्सा का अध्ययन करेंगे।
- ❖ अम्ल पित्त की चुम्बक, प्राण व जड़ी – बूटी चिकित्सा का विश्लेषण करेंगे।

5.3 अम्ल पित्त रोग से आशय –

सर्वप्रथम् यह जानना आवष्यक है कि अम्ल पित्त है क्या है ?
आयुर्वेद में कहा गया है–

अम्लं विदग्धं च तत्पित्तं अम्लपित्तम्।

जब पित्त कुपित होकर अर्थात् विदग्ध होकर अम्ल के समान हो जाता है, तो उसे अम्ल पित्त रोग की संज्ञा दी जाती है।
पित्त को अग्नि कहा जाता है।

त्रिदोषों में अति महत्वपूर्ण पित्त जब कुपित हो जाता है और अम्ल सा व्यवहार करने लगता है तो उसे अम्ल पित्त कहते है। पित्त का सम्बन्ध जठराग्नि से है। जठराग्नि के क्षीण हो जाने से पाचक रसो की षक्ति भी क्षीण हो जाती है। पाचक रस भोजन को पूर्णतः पचाने में असमर्थ हो जाते है। भोजन पेट में ही पड़ा– पड़ा सड़ने लगता है। आमाषय की पाचन प्रणाली बार– बार क्रियाषील हो भोजन को पचाने का प्रयास करती है। बार– बार पाचक रसो एवं अम्ल को स्त्रावित करती है। जिससे षरीर में अम्ल की अधिकता हो जाती है। अम्ल षरीर में अन्य विभिन्न तकलीफों को उत्पन्न करता है। वही अपचा भोजन पड़े– पड़े सड़ता है और आँतों द्वारा उसी रूप में रक्त में मिल जाता है। रक्त को दूषित कर सम्पूर्ण षरीर को भी दूशित करता है।

अम्ल पित्त का यदि सम्यक उपचार ना किया जाए तो वह आगे चलकर नये रोगों को जन्म देता है। अम्ल पित्त मात्र एक रोग नहीं है। अपितु षरीर में उपस्थित अन्य रोगों का परिणाम है।

सामान्यतः अम्ल पित्त को पाचन तन्त्र का एक रोग माना जाता है। जिसका कारण खान–पान की अनियमितता माना जाता है, परन्तु अम्ल पित्त का मूल कारण मानसिक द्वन्द है। जो व्यक्ति मानसिक रूप से अत्यधिक परेषान रहते है। अपने प्रियजनों पर भी जिसे विष्वास ना हो, जो हर समय स्वयं को असुरक्षित समझे। वे ही मुख्यतः इस रोग से ग्रस्त माने जाते है। समय के साथ यदि अम्ल पित्त बढ़ जाये तो यह अल्सर में बदल जाता है। अम्ल अधिक बन जाने पर वह पाचन अंगों पर घाव बना देता है।

5.3.1 कारण –

अम्ल पित्त रोग मुख्य रूप से मानसिक उलझनों और खान–पान की अनियमितता के कारण उत्पन्न रोग है जिसके प्रमुख लक्षण निम्नलिखित है–

- ❖ भोजन सम्बन्धी आदतें अम्ल पित्त रोग का एक प्रमुख कारण है। कुछ व्यक्तियों में अयुक्ताहार–विहार से यह रोग हो जाता है। जैसे– मछली और दूध को एक साथ मिलाकर खाने से यह रोग हो जाता है।
- ❖ इसके अतिरिक्त बासी और पित्त बढ़ाने वाले भोजन का सेवन करने से भी अम्ल पित्त रोग होता है। डिब्बाबंद भोजन का अत्यधिक सेवन करना भी अम्ल पित्त रोग को दावत देता है।
- ❖ भोजन कर तुरन्त सो जाना या भोजन के तुरन्त बाद स्नान करने से भी यह रोग हो जाता है।
- ❖ अम्ल पित्त रोग भोजन के बाद अत्यधिक पानी पीने से भी होता है।

- ❖ ठूस–ठूस कर खाने से भी ये रोग हो जाता है।
- ❖ यकृत की क्रियाषीलता में कमी होना भी इस रोग का प्रमुख कारण है।
- ❖ यदि दूषित एवं खट्टे–मीठे पदार्थो का अधिक सेवन किया जाए तो भी यह रोग हो जाता है।
- ❖ मल–मूत्र के वेग को रोककर रखना भी इस रोग की उत्पत्ति का कारण है।
- ❖ नषीली वस्तओं का अत्यधिक सेवन करना भी इस रोग का एक कारण है।
- ❖ इस रोग का एक कारण उदर की गर्मी को बढ़ाने वाले पदार्थो का अधिक सेवन करना है।
- ❖ अत्यधिक अम्लीय पदार्थो का बार– बार सेवन करने से भी यह रोग हो जाता है।
- ❖ कई व्यक्ति अत्यधिक भोजन कर दिन में सो जाने की आदत होती है जिससे यह रोग हो जाता है।
- ❖ दाँतों के रोगों के कारण भी अम्लपित्त रोग होने की सम्भावना रहती है।
- ❖ भोजन के तुरन्त बाद खूब पानी पीना भी इस रोग की प्रमुख वजह है।
- ❖ अम्ल पित्त रोग का ऋतु परिवर्तन और स्थान परिवर्तन से अति गहरा सम्बन्ध है।
- ❖ अम्लता उत्पन्न करने वाली औद्धधियों के निरन्तर सेवन से भी यह रोग हाता है।

5.3.2 लक्षण –

अम्ल पित्त रोग के कुछ लक्षण निम्नलिखित है–

- ❖ अपचन एवं कब्ज का सदैव बना रहना इस रोग का एक प्रमुख लक्षण है।
- ❖ इस रोग के रोगी की आँखें निस्तेज हो जाती है।
- ❖ जीभ पर सदैव हल्की सफेद– मैली परत जमी रहती है।
- ❖ त्वचा मटमैली एवं खुरदुरी हो जाती है।
- ❖ भोजन ठीक से नहीं पचता और कभी–कभी उल्टी भी होती है।
- ❖ यदि उल्टी के साथ हरे–पीले रंग का पित्त भी निकले तो यह अम्ल पित्त का प्रमुख लक्षण समझना चाहिए।
- ❖ अम्ल पित्त के रोगी को कड़वी और खट्टी ड़कारे आती है।
- ❖ गले और सीने में तीव्र जलन होती है।
- ❖ जी का मचलना, मुँह में कसौलापन एवं उबकाईयाँ आती है।
- ❖ ऐसा व्यक्ति सदैव बेचैन और घबराया हुआ रहता है।
- ❖ उदर में भारीपन रहता है।
- ❖ अम्ल पित्त के रोगियों का मल निष्कासन के समय गर्म रहता है।
- ❖ कभी–कभी पतले दस्त भी होते है।
- ❖ मूत्र का रंग लाल–पीलापन लिये हुए होता है।
- ❖ रोग की तीव्र अवस्था में षरीर में छोटी– छोटी फुन्सियाँ हो जाती है जिन पर खुजली भी होती है।
- ❖ कई बार व्यक्ति आँखों के आगे अन्धेरा छा जाने की भी षिकायत करता है।
- ❖ सिर में भारीपन एवं दर्द बना रहता है।
- ❖ शरीर में सुस्ती एवं थकान बनी रहती है।

- ❖ ऐसा व्यक्ति सदैव विचित्र एवं अनजाने भय से ग्रसित रहता है।
- ❖ कई बार व्यक्ति के सम्पूर्ण षरीर में जलन होती है। रोगी हाथों, पैरों, आँखों और सिर पर जलन की षिकायत करता है।
- ❖ अम्ल पित्त के कई रोगियों में रक्तस्त्राव भी हो जाता हैं।
- ❖ अम्ल पित्त रोग यदि लम्बे समय तक बना रहे तो बाल झड़ने और सफेद होने लगते है।
- ❖ अम्ल पित्त रोग जीर्ण हो जाने पर गैस्ट्रिक एवं ड्यूडिनम अल्सर में बदल जाता है।

5.3.3 अम्ल पित्त रोग के प्रकार –

अम्ल पित्त रोग के दो प्रकारो का वर्णन निम्न है–

उर्ध्वग अम्ल पित्त– जिस अम्ल पित्त में खट्टा, हरा, नीला, हल्का लाल, काला, चिपचिपा कड़वा वमन, ड़कार होता है तथा हृदय, गले तथा पेट में जलन और हाथ– पैरों में जलन होती है, उर्ध्वग अम्ल पित्त कहलाता है।

अधोग अम्ल पित्त–जिस अम्ल पित्त में गुदा से हरा, पीला, काला, माँस के धोवन के समान रक्तवर्ण अम्ल पित्त निकलता है तथा प्यास और जलन बनी रहती है, अधोग अम्ल पित्त कहलाता है।

प्रत्येक रोग के समान ही अम्ल पित्त रोग को भी उसकी अवस्था के आधार पर प्रारम्भिक अम्ल पित्त, मध्यम अम्ल पित्त और तीव्र अम्ल पित्त में भी बाँटा जा सकता है।

5.4 वैकल्पिक चिकित्सा –

अम्ल पित्त के रोगियों के लिए वैकल्पिक उपचार विधियाँ अति उपयोगी है। जिसकी उपचार विधियाँ निम्न है–

5.4.1 यौगिक चिकित्सा –अम्ल की अधिकता इस रोग की प्रमुख वजह है। अतः यौगिक चिकित्सा में ऐसे उपचार देने चाहिए, जो अम्ल की अधिकता को दूर कर सके।

षट्कर्म–षट्कर्मो में वमन इस रोग को दूर करने का अति उत्तम साधन है। आमाषय में असमय एवं अनिष्चित मात्रा में उठने वाले अम्ल को वमन द्वारा दूर करना चाहिए।

सप्ताह में एक बार लघु–षंखप्रक्षालन द्वारा अपचे सड़े भोजन को दूर करना चाहिए तथा जठर की अति उत्तेजना को षान्त करना चाहिए।

नेति, लौलिकी, व्याघ्र, अग्निसार और कुंजल क्रिया का नियमित रूप से अभ्यास करना चाहिए।

आसन–ऐसे आसनों का अभ्यास करना चाहिए जिसका प्रत्यक्ष रूप से उदर पर प्रभाव पड़े। उदर की जठराग्नि की क्षीण षक्ति को वर्द्धित कर सके। इसके लिए षक्ति संचालन के अभ्यास जैसे– उत्तान पादासन, नौकासन, हलासन, सुप्त–पवनमुक्तासन, धनुरासन, भुजंगासन, मत्स्यासन, वज्रासन आदि आसनों का प्रतिदिन अभ्यास करना चाहिए।

प्राणायाम–प्राणायाम मे अम्ल से उत्पन्न गर्मी को षान्त करने हेतु षीत्कारी, षीतली एवं चन्द्रभेदी प्राणायामों का अभ्यास करना चाहिए। यह हाथों, पैरों, सीने और पेट की जलन को दूर करने में सहायक है।

मुद्रा एवं बन्ध– रोगी को जालन्धर बन्ध और उड्डियान बन्ध का अभ्यास करना चाहिए। रोगी में प्राण ऊर्जा के स्तर को बनाये रखने हेतु प्राण मुद्रा का अभ्यास लाभकारी है।

ध्यान– रोगी को ध्यान के द्वारा असुरक्षा के भाव और मानसिक उलझनों को दूर करने की कोषिष करनी चाहिए। नाभि प्रदेष पर ष्वास की हलचल पर ध्यान करना चाहिए।

योगनिद्रा का भी नियमित अभ्यास करना चाहिए।

5.4.2 प्राकृतिक चिकित्सा – प्राकृतिक चिकित्सा में निम्न उपचार क्रम अपनाकर इस रोग से मुक्ति पायी जा सकती है–

- ❖ इस रोग में उपवास अति लाभ करता है। अतः 2–3 दिन का उपवास करना चाहिए।
- ❖ यकृत वाले स्थान पर प्रतिदिन हल्के हाथों से मसाज करनी चाहिए।
- ❖ पानी में नींबू मिलाकर बार–बार पीना चाहिए।
- ❖ इसके साथ ही नींबू मिले पानी का एनिमा देना चाहिए, जिससे दूषित अन्न कण बाहर निकल जाते है।
- ❖ पेट पर 3 मिनट का गर्म सेंक और 2 मिनट का ठण्डा सेंक 3–4 बार देना चाहिए तथा पेट पर हाथों से हल्की मसाज भी देनी चाहिए।
- ❖ स्नान से पूर्व सरसो एवं तिल के तेल से सम्पूर्ण षरीर पर मसाज करनी चाहिए।
- ❖ तत्पष्चात् कटि स्नान लिया जा सकता है।
- ❖ कटि स्नान के पष्चात् रोगी को थोड़ा टहलना चाहिए।
- ❖ रोगी को प्रतिदिन गर्म पाद–स्नान देना चाहिए।
- ❖ प्रतिदिन 15–20 मिनट के लिए उदर की ठण्डी मिट्टी की पट्टी देनी चाहिए।
- ❖ आहार में ताजे फल, सलाद, उबली सब्जियाँ, मट्ठा, दही लेना चाहिए।
- ❖ सूर्य तप्त पीले जल को 50–50 ग्राम की मात्रा में दिन–भर में 5–6 बार पीना चाहिए।

5.4.3 चुम्बक चिकित्सा –इसमें रोगियों की हथेलियों में प्रतिदिन 1 बार षक्तिषाली चुम्बको का प्रयोग करना चाहिए। इसके अतिरिक्त नाभि पर षक्तिषाली चुम्बक का दक्षिणी धुव्र लगाना चाहिए। नाभि पर चुम्बक प्रतिदिन दो बार 15–30 मिनट तक के लिए रखना चाहिए।

माथे पर कमजोर षक्ति के चुम्बक का दक्षिणी धुव्र लगाना चाहिए। यह अधिक से अधिक 15 मिनट ही रखना चाहिए।

अम्लता में हथेलियों पर षक्तिषाली चुम्बक का प्रयोग करना चाहिए। प्रतिदिन चुम्बकीय जल का सेवन भी करना चाहिए। प्रतिदिन दक्षिणी धुव्र द्वारा प्रभावित पानी को भी तीन बार पीना चाहिए।

5.4.4 प्राण चिकित्सा –

अतिसार से ग्रस्त रोगी के सौर जालिका चक्र, नाभि चक्र, पेट और मूलाधार चक्र प्रभाव होते है। अतः इन चक्रो में विषेष ध्यान देने की आवष्यकता होती है।

- ❖ सर्वप्रथम् सौर जालिका चक्र, नाभि चक्र, और पेट की जाँच करनी चाहिए।
- ❖ तत्पष्चात् अग्र सौर जालिका चक्र की स्थानीय झाड़– बुहार के बाद उसे ऊर्जित करें।
- ❖ प्रक्षेपित प्राण ऊर्जा की स्थिर होने की कल्पना करें।
- ❖ नाभि चक्र की स्थानीय सफाई करे, पेट के ऊपरी एवं निचले भाग की भी स्थानीय झाड़– बुहार करें। नाभि चक्र की स्थानीय सफाई के बाद उसे ऊर्जित करें।

- ❖ प्रक्षेपित प्राण ऊर्जा की स्थिर होने की कल्पना करें।
- ❖ यही प्रकिया मूलाधार चक्र के लिए करें। सर्वप्रथम् मूलाधार चक्र की स्थानीय सफाई करे, स्थानीय झाड़– बुहार के बाद उसे ऊर्जित करें।
- ❖ प्रक्षेपित प्राण ऊर्जा की स्थिर होने की कल्पना करें।
- ❖ यदि उपरोक्त उपचार के पष्चात् भी रोगी दर्द की षिकायत करे और उसे पतले दस्त हो रहे हो तो यह समझना चाहिए कि झाड़– बुहार की अधिक आवष्यकता है या झाड़– बुहार ढ़ग से नहीं किया गया है।

अतः अग्र सौर जालिका चक्र, नाभि चक्र, पेट और मूलाधार आदि चक्रो में विषेष ध्यान देते हुए पुनः इन चक्रो की स्थानीय झाड़– बुहार ढ़ग से करनी चाहिए।यदि उपरोक्त उपचार के बाद भी रोगी के रोग का प्रकोप कम ना हो, तो रोगी को अधिक उन्नत प्राणषक्ति उपचारक से मिलना चाहिए।

यदि उपरोक्त उपचार के बाद भी रोगी के रोग का प्रकोप कम ना हो, तो रोगी को अधिक उन्नत प्राणषक्ति उपचारक से मिलना चाहिए।

5.4.5 जड़ी – बूटी चिकित्सा–

- ❖ सौंठ एवं गिलोय का समभाग चूर्ण षहद के साथ सेवन करना उपयोगी है।
- ❖ मिश्री को त्रिफला एवं कुटकी के समभाग चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन करना उपयोगी है।
- ❖ हरड़, गुड़ और छोटी पीपल को समान मात्रा में मिलाकर उसकी गोली बना लें तथा सेवन करें।
- ❖ भृंगराज एवं हरीतकी का समभाग चूर्ण गुड़ के साथ मिलाकर सेवन करना उपयोगी है।
- ❖ प्रतिदिन नाष्ते में एक पका केले को खाये, तत्पष्चात् दूध पी लें। इससे यह रोग दूर हो जाता है।
- ❖ 50 ग्राम मुनक्का और 25 ग्राम सौंफ को रात में पानी में भिगाकर रख दें। सुबह इसे मसलकर छान ले। इसमें 10 ग्राम मिश्री मिलाकर इसे पी ले।
- ❖ करेले के पत्तों या फूल को घी में भूनकर उसका चूर्ण बना ले। इस चूर्ण को दिन में 2–3 बार एक से दो ग्राम की मात्रा में खायें।
- ❖ 20 ग्राम आँवला स्वरस में, 1 ग्राम जीरा चूर्ण मिलाकर सुबह–षाम पीयें।
- ❖ नीमपत्र रस और अडूसा पत्र रस को 20–20 ग्राम एकत्र कर इसमें थोड़ा षहद मिलाकर दिन में 2 बार खायें।
- ❖ बच के चूर्ण को 2–4 रती की मात्रा में मधु के साथ सेवन करे।
- ❖ षक्कर में ष्वेत जीरे के साथ धनिये का चूर्ण समान मात्रा में मिलाकर खाये।
- ❖ जौ अथवा गेहूँ अथवा चावल के सत्तू को मिश्री में मिलाकर खाना चाहिए।
- ❖ नीम की छाल, गिलोय व पटोल का काढ़ा बनाकर उसमें षहद डालकर पीने से लाभ मिलता है।
- ❖ सूखे आँवले को रात भर भिगोकर रख दें। सुबह उसमें जीरा और सौंठ मिलाकर बारीक पीस ले। इस मिश्रण को दूध में घोलकर पीयें।

- ❖ भोजन के पष्चात् दूध के साथ इसबगोल लेते रहने से अम्ल पित्त रोग कभी नहीं होता है।
- ❖ छोटी या बड़ी हरड़ का 3 ग्राम चूर्ण और 6 ग्राम गुड़ को मिलाकर दिन में 3 बार खायें।
- ❖ मिश्री को कच्चे नारियल के पानी में मिलाकर सेवन करे।
- ❖ भोजन के 1 घण्टे बाद आँवले का 5 ग्राम चूर्ण लेना चाहिए।
- ❖ अनार के रस में जीरा मिलाकर खाने से अम्ल पित्त रोग दूर हो जाता है।
- ❖ भुने हुए जीरे व सेंधा नमक को संतरे के रस में डालकर पीये। इससे अम्ल पित्त रोग का षमन हो जाता है।
- ❖ 50 ग्राम प्याज को महीन–महीन काट ले। इससे गाय के ताजे दही में मिलाकर खायें।
- ❖ अदरक और अनार के 6–6 ग्राम रस को मिलाकर पी लेने से यह रोग दूर हो जाता है।
- ❖ मूली के स्वरस में कालीमिर्च का चूर्ण और नमक मिलाकर खाने से अम्ल पित्त रोग में लाभ मिलता है।
- ❖ प्रत्येक भोजन के बाद एक लौंग खा लेनी चाहिए।
- ❖ ठण्डा दूध पीने से अम्ल पित्त रोग में लाभ मिलता है।

5.4.6–आहार चिकित्सा–

- ❖ आहार चिकित्सा में पूर्ण प्राकृतिक एवं ताजे भोज्य पदार्थो को षामिल करे। अत्यधिक तले–भुने, गरिष्ठ और मिर्च–मसाले युक्त आहार कदापि ना ले।
- ❖ रोगी को फलों में ताजे फल जैसे– नारंगी, आम, केला, पपीता देना चाहिए। कुछ समय के पष्चात् खूबानी, खरबूज, चीकू, तरबूज, सेब भी दे सकते है।
- ❖ सूखे मेवे में अखरोट, खजूर, मुनक्का, किषमिष देना चाहिए। कुछ दिनों तक रोगी की सामर्थ्यानुसार सेब का पानी, नारियल का पानी, खीरा और सफेद पेठे आदि का रस देना चाहिए।
- ❖ तोराई, टिण्डा, लौकी, परवल आदि की सब्जियाँ रोगी को खाने को दें। रोग के कम हो जाने पर मेथी, चौलाई, बथुआ आदि सब्जियाँ दी जा सकती है। यदि रोगी की आलू खाने की इच्छा हो तो रोगी को आलू उबालकर खाने को दें। ध्यान रखे यदि रोगी आलू ग्रहण कर रहा है तो आलू के साथ अन्य पदार्थ कदापि ना ले।
- ❖ अम्ल पित्त रोग में कच्चे नारियल का दूध और गूदा का उपयोग करना चाहिए।
- ❖ आँवले और अनार का रस भी अम्ल पित्त रोग में उपयोगी है।

अभ्यास प्रश्न –

1. **बहुविकल्पीय प्रष्न –**

(क) जब पित्त कुपित होकर अम्ल के समान हो जाता है तब उसे क्या रोग कहते हैं ?

(अ) अम्ल पित्त
(ब) अतिसार
(स) कब्ज

(द) इनमें से कोई नहीं

(ख) अम्ल पित्त रोग के मुख्य कारण क्या हैं –

(अ) बासी भोजन

(ब) खान – पान की अनियमितता

(स) नशीली वस्तुओं का अधिक सेवन

(द) उपरोक्त सभी

(ग) अम्ल पित्त रोग के लक्षण हैं ?

(अ) कब्ज का सदैव बना रहना

(ब) जी मचलना, सीने में जलन

(स) अ व ब दोनों

(द) श्वास लेने में कठिनाई तिसार

(घ) अम्ल पित्त रोग कितने प्रकार का होता है –

(अ) चार प्रकार

(ब) दो प्रकार

(स) पाँच प्रकार

(द) एक प्रकार

(ड़) अम्ल पित्त रोग की प्राकृतिकि चिकित्सा है –

(अ) नीबू पानी का एनिमा

(ब) मिट्टी की ठण्डी पट्टी उदर में

(स) सूर्य तप्त पीला जल

(द) उपरोक्त सभी

5.5 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों उपरोक्त इकाई में आपने अम्ल पित्त रोग का अध्ययन किया साथ ही अम्ल पित्त रोग की यौगिक चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, चुम्बक चिकित्सा, प्राण चिकित्सा का अध्ययन किया, इन सभी चिकित्सा पद्धतियों में से किसी भी एक चिकित्सया पद्धति का प्रयोग अपनाए तो किसी भी एक चिकित्सा के द्वारा ही अम्ल पित्त रोग ठीक हो सकता है। इन सभी चिकित्सा पद्धतियों द्वारा शरीर की अषुद्धि को शरीर से बाहर निकाला जाता है। यौगिक चिकित्सा जिसमें षटकर्म व आसन, **प्राणायाम, मुद्राबंध, ध्यान** के द्वारा चिकित्सा की जाती है, व प्राकृतिक चिकित्सा जिसमें जल चिकित्सा मिट्टी चिकित्सा, उपवास व सूर्य किरण चिकित्सा द्वारा विषाक्त पदार्थो को शरीर से बाहर निकाला जाता है तथा चुम्बक में विभिन्न प्रकार के चुम्बकों द्वारा चुम्बकीय जल द्वारा उपचार किया जाता है, प्राण चिकित्सा में प्राण ऊर्जा विभिन्न चक्रों को अर्जित कर तथा वहाँ स्थित दूषित पदार्थ (गन्दियों) को बाहर निकाला जाता है। जड़ी – बूटी चिकित्सा में विभिन्न जड़ी – बूटी के माध्यम से शरीर को आरोग्य लाभ मिलता है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन कर आप अम्ल पित्त रोग को समझ कर उसका उपचार की विधियों से परिचित हो गये होंगे।

5.6 शब्दावली –

रक्तवर्ण	–	लाल रंग
विचित्र	–	विलक्षण, असाधारण
कसैला	–	कषाय

अयुक्ताहार	–	अनुचित, अयोग्य
ऋतु परिवर्तन	–	मौसम में परिवर्तन
डद्वेग	–	चित्त की व्याकुलता, घबराहट, चिन्ता, भय, भारी,
गरिष्ट	–	भारी
स्वरस	–	फल, फूल, पत्ती आदि को कूटकर – पीसकर निकाला हुआ रस,

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

1. क) द (ख) द (ग) स (घ) ब (ड़) द

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जिन्दल राकेष, (2005) प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाषन, मोदीनगर, उत्तर प्रदेष।
2. कुमार नागेन्द, (2002) असाध्य रोगों की सरल चिकित्सा, पापुलर बुक डिपो, जयपुर।
3. सक्सेना, ओमप्रकाष, (2008) वृहद् आयुर्वेदिक चिकित्सा, हिन्दी सेवा सदन, मथुरा।
4. सरस्वती सत्यानन्द, (2002) रोग और योग, योग पब्लिकेषन ट्रस्ट मुंगेर, बिहार।
5. त्रिवेदी पीयूष, (2006) चुम्बकीय चिकित्सा, पापुलर बुक डिपो, जयपुर।
6. अग्रवाल, एस0आर0, (2006) चुम्बक चिकित्सा, मनोज पब्लिकेषन, चाँदनी चौक, दिल्ली।
7. शुक्ल चन्द्र अमोल, आयुर्वेद चिकित्सा गाइड, डी0पी0बी0 पब्लिकेषन दिल्ली।
8. चौहान गणेष नारायण क्या खायें और क्यों ?, पापुलर बुक डिपो, जयपुर।

ख

5.9 सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सत्यानन्द स्वामी (2004) समस्या पेट की समाधान योग, योग पब्लिकेषन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार।
2. गुप्ता राजकुमारी, (2010) आहार चिकित्सा। नारायण प्रकाषन, जयपुर।

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अम्ल पित्त रोग से क्या समझते हैं ? इस रोग के लक्षण व यौगिक चिकित्सा लिखिए ।
2. अम्ल पित्त पर प्रकाष डालते हुए इसकी प्राकृतिक चिकित्सा लिखिए।
3. अम्ल पित्त की चुम्बक व प्राण चिकित्सा का वर्णन कीजिए।
4. अम्ल पित्त रोग की जड़ी – बूटी चिकित्सा स्पष्ट कीजिए।

इकाई 6 मोटापा– कारण, लक्षण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 मोटापा
  6.3.1 कारण
  6.3.2 लक्षण
6.4 – वैकल्पिक चिकित्सा
  6.4.1 यौगिक चिकित्सा
  6.4.2 प्राकृतिक चिकित्सा
  6.4.3 चुम्बक चिकित्सा
  6.4.4 प्राण चिकित्सा
  6.4.5 जड़ी – बूटी चिकित्सा
  6.4.6 आहार चिकित्सा
6.5 सारांश
6.6 शब्दावली
6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.9 सहायक पाठ्य सामाग्री
6.10निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

मनुष्य दिन पर दिन तरक्की के मार्ग पर अग्रसर हो रहा है। वह नित्य नये संसाधनो की खोज कर रहा है। शरीर को आराम देने वाले नित्य नये साधनो का मनुष्य प्रतिदिन उपयोग कर रहा है। फ्रिज, कूलर ए.सी., बोल्यर, हिटलर, मोबाइल और इंटरनेट के नियमित प्रयोग से मनुष्य अक्रियाशील जीवन जी रहा है। भोजन जो की प्रकृति द्वारा उत्कृष्ट रूप में मिलता है, उसे वह अत्यधिक संषोधित और महीन करके खा रहा है। मनुष्य का जीवनशैली सम्बन्धी बदलाव ही उसे रोगग्रस्त कर रहा है। उसी का परिणाम है– मोटापा।

मोटापा व्यापक रूप से बच्चों, बढ़ों और व्यस्को में व्याप्त हो रहा है। मोटापे से ग्रस्त व्यक्तियो की संख्या में दिन दुगनी रात चौगुनी वृद्धि हो रही है। मोटापा सिर्फ शरीर का फूलना, मोटा होना या कुरूप होना भर नहीं है, अपितु एक बड़ी बीमारी का रूप धारण कर चुका है। समृद्ध समाज में श्रम अभाव से होने वाला रोग है मोटापा।

यदि व्यक्ति मोटा है तो यह उसकी अकर्मण्य जीवनशैली को दर्शाता है। मोटापा शरीर को अत्यधिक आरामदायक स्थिति में रखने के कारण उपजा है।

6.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

- ❖ मोटापे के रोग को समझ सकेंगे।
- ❖ मोटापे के कारण व लक्षण का अध्ययन कर उन्हें समझ सकेंगे।
- ❖ मोटापे की वैकल्पिक चिकित्सा के अन्तर्गत यौगिक चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा का अध्ययन कर सकेंगे।

❖ मोटापे की चुम्बक चिकित्सा व प्राण चिकित्सा का अध्ययन कर सकेंगे।

6.3 मोटापा

आज निःसंदेह मोटापा विश्व के अनेक देषों मे सर्वव्यापी समस्या के रूप में चिकित्सा विज्ञान के लिए बन गया है। मोटापा बढ़ने के साथ – साथ यह अनेक रोगों को जन्म देता है। यह शारीरिक अंगों की कुशलता को कम कर उनके कार्यो को प्रभावित करता है। मोटापे से अनेक रोग उत्पन्न होते है। जैसे – **बैरीकोणवेन, मधुमेह, ब्रोनकाइटिस, आस्ट्रियोआर्थोराइटिस, हाइपरटैन्शन, एन्जाइना, हार्टअटैक** आदि का सबंध मोटापे से ही है। **मोटापे का अर्थ** शायद सभी यही लगाते हैं **भीमकाय, गोलमटोल, विनोदप्रिय** या दिनभर कुछ न कुछ खाते रहने वाला व्यक्ति । मोटापे के संबध में सभी यही धारणा रखते हैं, वस्तुतः अधिकतर मोटे व्यक्ति कम भोजन करते हैं। अधिकतर मोटे व्यक्ति अपने को मोटा समझते ही नहीं है और कई मोटे व्यक्ति अपने को बहुत मोटा समझकर हीन भावना से ग्रस्त हो जाते है और अपने को अन्य व्यक्तियों से अलग महसूस करते है।

चिकित्सा विज्ञान के अनुसार माना गया है कि चर्बी की अधिकता ही मोटापा है।

6.3.1 – कारण –

मोटापे के कई कारण है। यहाँ पर कुछ मुख्य कारणों का वर्णन किया गया है–

- ❖ अक्रियाशील जीवनशैली मोटापे को जन्म देता है। दिन–भर बैठकर कार्य करना, कम्पयूटर और टी.बी. के सामने दिन भर बैठे रहने से भी मोटापा आता है।
- ❖ आवश्यकता से अधिक भोजन ग्रहण करना भी मोटापे का एक प्रमुख कारण है। अत्यधिक भोजन ग्रहण करने से भी व्यक्ति मोटापे से ग्रसित हो जाता है। व्यक्ति के अधिक भोजन ग्रहण करने के निम्नलिखित कारण हो सकते है–
  1. मानसिक तनाव और चिंता के कारण भी व्यक्ति बार–बार खाता है। यह उस व्यक्ति के तमोगुण को दर्शाता है। विशेष

  2. राजसिक प्रवृतियों जैसे प्रतिस्पर्द्धा क्रोध, आदि दबी इच्छाओ के कारण तेजी से भोजन कर अपनी अपूर्ण, दबी इच्छाओं को भोजन के माध्यम से पूर्ण करना भी मोटापे को दावत देता है। तेजी से खाते समय व्यक्ति आवश्यकता से अधिक खा लेता है।
- ❖ आजकल व्यायाम और शारीरिक गतिविधियों का दिन पर दिन अभाव हो रहा है। आज मनुष्य मानसिक गतिविधियाँ अधिक कर रहा है। वही शारीरिक गतिविधियों की उपस्थिति नगण्य है। जरा–सा शारीरिक श्रम उनके लिए दुःखदायी है। खेलों से भी बच्चें दूर हो रहे है। वीडियो गेम्स ही आज बच्चों का पसंदीदा खेल बन गया है। पूर्ण स्वास्थ्य हेतु शारीरिक और मानसिक कार्यो में सामन्जयस्य अति आवश्यक है। मानसिक कार्यो को अधिक करने और शारीरिक श्रम ना करने से मनस यशक्ति और प्राण ऊर्जा में असन्तुलन आने से ही मानव मोटापे आदि अनेक रोगों से ग्रसित हो रहा है।
- ❖ आनुवंशिकी भी मोटापे का एक प्रमुख कारण है। कई व्यक्तियों में मोटापा आनुवंशिक होता है। उस व्यक्ति विशेष के शरीर में उपस्थित जीन्स के कारण ही वह मोटा होता है। यह उसे पैतृक एवं वंशानुगत रूप से मिला होता है।

- ❖ मोटापे का एक कारण मासिक धर्म सम्बन्धी अनियमितताएं है। कई महिलाओ में मासिक धर्म का कई महीनो के बाद या अनियमित रूप से होना भी मोटापे को बढ़ाता है।
- ❖ आजकल फास्टफूड एवं कन्फेनशरी आहार का अत्यधिक सेवन किया जा रहा है। फास्टफूड, चाकलेट, कॉफी, चाय, कोल्ड डिंक में वसा की मात्रा अधिक होने पर यह मोटापे को बढ़ाता है।
- ❖ सामिष–निरामिष भोजन भी मोटापे को बढ़ाता है। मांस, मछली, अंडा में प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है। प्रोटीन पचने में देर करता है और मोटापा बढ़ते रहता है।
- ❖ कई व्यक्तियों में दवाइयों के दुष्प्रभाव के द्वारा भी मोटापा बढ़ जाता है। कई व्यक्तियों को छोटी– छोटी बीमारियों एवं तकलीफ में दवाइयाँ लेने की आदत होती है। जो आगे चलकर नुकसान करती है।
- ❖ प्रसव के उपरान्त भी कई महिलायें मोटापे का षिकार हो जाती है। प्रसवोपरान्त महिलायों का मोटापा बढ़ जाता है।
- ❖ दिनचर्या अस्त–व्यस्त होने से भी व्यक्ति मोटापे का षिकार होता है। सोने से सम्बन्धित गलतियाँ भी मोटापे को जन्म देती है। दिन में सोना मोटापे का एक कारण है, वही आवश्यकता से अधिक सोने से भी मोटापा बढ़ जाता है।
- ❖ मोटापे का एक कारण ह्रार्मोन्स असन्तुलन है। थाइराइड और पिट्यूटरी ग्रन्थि के ह्रार्मोन्स स्त्राव जब अनियमित हो जाते है। तब व्यक्ति मोटापे से ग्रसित हो जाता है।
- ❖ व्यक्ति में मोटापे का एक कारण क्षार तत्वो की कमी है। जो व्यक्ति क्षार तत्वों से युक्त भोजन कम करते है या ऐसे भोजन को ग्रहण करते है जिनमें क्षार तत्व नहीं पाया जाता मोटापे से ग्रसित हो जाते है।

6.3.2 – लक्षण –

मोटापे से ग्रस्त व्यक्ति में निम्न लक्षण देखने को मिलते है–

- ❖ मोटापे में विशेषकर पेट बढ़ जाता है।
- ❖ अधिक मोटापा बढ़ने पर कूल्हे, स्तन और पेट में अत्यधिक मांस जम जाता है।
- ❖ मोटापे में आन्तरिक अंगों पर भी प्रभाव पड़ता है। आन्तरिक अंगों में यकृत, मांसपेशियों, गुर्दो और ह्रदय आदि अंगों का आकार भी बढ़ जाता है।
- ❖ मोटे व्यक्तियो में मेद धातु में वृद्धि हो जाती है। जिससे पेट बढ़ जाता है, क्योंकि मेद धातु की अधिकता वायु को अवरूद्ध कर देती है जिससे वायु कोठो में ही घूमती रहती है और जैसे ही रोगी भोजन ग्रहण करता है, वह उसे जल्दी पचा देती है और रोगी को जल्दी–जल्दी भूख लगने लगती है।

6.4 – वैकल्पिक चिकित्सा –

मोटापे की वैकल्पिक चिकित्सा निम्नलिखित है –

6.4.1 यौगिक चिकित्सा –

मोटापे के रोगियों के लिए यौगिक चिकित्सा रामबाण है। मोटापे के रोगियों को निम्नलिखित अभ्यास क्रम को अपनाना चाहिए ऐसे करने में मोटापा बिना कोई नुकसान किये आसानी से दूर हो जाता है।

षट्कर्म –

- ❖ षट्कर्मो में जल नेति का अभ्यास प्रतिदिन किया जा सकता है। प्रतिदिन जल नेति का अभ्यास करने से मस्तिष्कीय तनाव दूर होता है। जिससे तनाव, अवसाद आदि भावनाएं दूर होती है।
- ❖ कुंजल का अभ्यास भी अति लाभकारी है। यह शरीर की अम्लता और कफ की वृद्धि को दूर करता है।
- ❖ वही शंखप्रक्षालन का अभ्यास भी मोटापे को कम करने में सहायक है। शंखप्रक्षालन के अभ्यास द्वारा कब्ज दूर होती है। कब्ज मोटापे के मुख्य कारणों में से एक है। शंखप्रक्षालन द्वारा कब्ज टूटती है। सम्पूर्ण आँतों से दूषित मल और अपचा भोजन बाहर निकलता है। शंखप्रक्षालन द्वारा आँतों की क्रियाशीलता वापस आती है। 15–15 दिन के अन्तराल में लघु शंखप्रक्षालन कराया जाना चाहिए। चाहे तो रोगी को महीने में 1 बार पूर्ण शंखप्रक्षालन भी कराया जा सकता है।

आसन –

- ❖ सर्वप्रथम सूक्ष्म अभ्याास करने चाहिए।
- ❖ सूर्य नमस्कार का अभ्यास नियमित करना चाहिए।
- ❖ आसनों में योगमुदा, चक्रासन, पश्चिमोतनासन, धनुरासन, अश्वसंचालन हलासन, उत्तान पादासन, सुप्त पवनमुक्तासन, चक्की चालासन, नौकासन, उष्ट्रासन पादहस्तासन आदि आसनों का अभ्यास करना चाहिए।
- ❖ इसके साथ ही साथ रोगी को प्रतिदिन भोजन ग्रहण करने के तुरन्त बाद 10 मिनट तक व्रजासन का अभ्यास करना चाहिए।

प्राणायाम –

- ❖ प्राणायामों में नाड़ीशोधन प्राणायाम अति लाभकारी है। इसके अभ्यास द्वारा बहत्तर हजार नाडियाँ शुद्ध होती है। यह अशुद्ध नाड़ियों को शुद्ध करता है और उनकी जगह शुद्ध प्राण वायु को संचरित करता है। मल से भरी अशुद्ध नाड़ियों का मल दूर होने से सम्पूर्ण शरीर में हल्कापन व्याप्त होता है।
- ❖ नाड़ीशोधन प्राणायाम के साथ– साथ कपालभाति और भस्त्रिका प्राणायाम भी अति लाभकारी है। भस्त्रिका प्राणायाम द्वारा वसाके चयापचय की दर बढ़ती है। भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास भी प्रतिदिन करना चाहिए क्योंकि यह मानसिक शान्ति प्रदान करता है और साथ ही साथ ऊत्तको की क्षतिपूत्ति करता है।

मुद्रा एवं बन्ध –

उड्डियान बंध एवं सूर्य मुद्रा का अभ्यास मोटापे में विशेष लाभ करता है।

ध्यान –

ध्यान का अभ्यास भी करना चाहिए।

शवासन में योगनिद्रा का अभ्यास भी करना चाहिए।

6.4.2 प्राकृतिक चिकित्सा –

मोटापे से ग्रस्त व्यक्ति निम्न प्राकृतिक उपचार क्रम अपनाकर लाभ ले सकता है–

मोटापे से ग्रस्त व्यक्ति को उपवास कराया जा सकता है। यदि आप लम्बे उपवास कराना चाहते है तो उपवास प्रारम्भ कराने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि व्यक्ति अथवा रोगी दृढ़ निश्चयी है कि नहीं, क्योंकि दृढ़ निश्चय ना होने पर व्यक्ति कुछ दिन के उपवास के पश्चात् पहले से और अधिक खाकर स्वयं को हानि पहुँचा सकता हैं। अतः

व्यक्ति अथवा रोगी को सर्वप्रथम साप्ताहिक उपवास करायें और फिर धीरे–धीरे लम्बे उपवास कराये, रोगी के दृढ़ निश्चयी होने पर ही से पूर्ण उपवास कराये, अन्यथा आंशिक उपवास करायें, वे भी लाभकारी है।

- ❖ मोटापे से ग्रस्त व्यक्ति प्रायः कब्ज से पीड़ित रहते है अतः एनिमा देकर आँतों की सफाई करनी चाहिए।
- ❖ एनिमा के बाद गर्म पाद स्नान कराना चाहिए। गर्म पाद स्नान के दौरान सिर पर ठण्डी पट्टी रखनी चाहिए।
- ❖ मिट्टी की पट्टी भी लगानी चाहिए। उसके लिए सर्वप्रथम पेट और पेडू पर हल्के हाथों से मसाज करनी चाहिए।
- ❖ तत्पश्चात् ठण्डा–गर्म सेंक करना चाहिए। सेंक के बाद मिट्टी की ठण्डी पट्टी लगानी चाहिए। ऐसा
  करने से पेट और
- ❖ पेडू में संचित विजातीय द्रव्य अपना स्थान छोड़ने लगते है।
- ❖ तत्पश्चात् रोगी को कटि स्नान देना लाभ करता है। आवश्यकतानुसार प्रत्येक दूसरे दिन गर्म–ठण्डा कटि स्नान दिया जा
  सकता है। ऐसा करने से सभी प्रकार की व्याधियाँ दूर होती है।
- ❖ साथ ही साथ रोगी को मालिश लेनी चाहिए। सम्पूर्ण शरीर में मालिश देनी चाहिए। मालिश में थपकी देना, चिऊटी भरना,
- ❖ आटा गूंथना आदि प्रकिया भी करनी चाहिए, ऐसा करने से वसा का दहन होता है। सर्वांग शरीर मालिश के पश्चात् वाष्प
- ❖ स्नान लेना चाहिए। वाष्प स्नान द्वारा एडिपोज टिष्यू गलती है और मोटापा दूर होता है।
- ❖ वाष्प स्नान के पश्चात् सिर सहित जी भरकर ठण्डे पानी से खूब नहाना चाहिए।
- ❖ लाल रंग के तेल की मालिश भी रोग को ठीक करती है।
- ❖ प्रतिदिन मृदु धूप स्नान करना भी लाभदायक है।
- ❖ रोगी को पीली बोतल से सूर्य तप्त जल को 3 बार 50–50 ग्राम की मात्रा ें पीना चाहिए।
- ❖ एप्सम साल्ट बाथ भी सप्ताह में दो बार लेना चाहिए।
- ❖ हफ्ते में 2 बार सम्पूर्ण शरीर में मिट्टी का लेप कर मृतिका स्नान करना चाहिए।
- ❖ तत्पश्चात् ठण्डे पानी से खूब नहाना चाहिए।

6.4.3 चुम्बक चिकित्सा–मोटापा दूर करने हेतु प्रतिदिन सुबह के समय हथेलियों पर शक्तिशाली चुम्बक का प्रयोग करना चाहिए। नाभि के 10 सेंमी. ऊपर, मध्य रेखा के 5 सेंमी. की दूरी पर षाम के समय चुम्बक का उपयोग करना चाहिए। इस स्थान पर उत्तरी ध्रुव का चुम्बक बांयी ओर तथा दायी ओर दक्षिणी ध्रुव वाले चुम्बक का प्रयोग करना चाहिए।साथ ही साथ चुम्बकीय जल का प्रतिदिन नियमित रूप से सेवन करना चाहिए।

6.4.4 प्राण चिकित्सा –

- ❖ मोटापे से ग्रस्त रोगी के सौर जालिका चक्र, नाभि चक्र तथा पेट प्रभावित होते है। मोटापा रोग में अत्यधिक चर्बी पेट के आस – पास ही होती है। अतः इन चक्रों का विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता होती है।
- ❖ सर्वप्रथम सौर जालिका चक्र व नाभि चक्र की जाँच करनी चाहिए।
- ❖ तत्पश्चात् अग्र सौर जालिका चक्र की स्थानीय झाड़ बुहार करनी चाहिए, व उसे उर्जित करना चाहिए।
- ❖ प्रक्षेपित प्राण उर्जा के स्थिर हाने की कल्पना करें,
- ❖ नाभि चक्र की स्थानीय सफाई करनी चाहिए ताकि जो फालतू चर्बी है, वह हमारे शरीर से हट जाए, क्पेवसअम हो जाए।
- ❖ नाभि चक्र की सफाई के बाद उसे उर्जित करना चाहिए।
- ❖ प्रक्षेपित प्राण ऊर्जा के स्थिर होने की कल्पना करें।
- ❖ मूलाधार चक्र की भी स्थनीय झाड़ – बुहार के बाद इसे ऊर्जित करना चहिए।
- ❖ प्रक्षेपित प्राण ऊर्जा के स्थिर होने की कल्पना करें।

यदि उपरोक्त उपचार के बाद भी रोगी को कोई असर न दिखे तो यह समझना चाहिए कि अधिक झाड़ – बुहार की आवश्यकता है।

6.4.5 जड़ी – बूटी चिकित्सा –माँ का दूध अति लाभकारी होता है। अमेरिका के सेंटर्स फॉर डिजीज कंट्रोल एण्ड प्रिवेंशन की 1900 बच्चों पर की गयी रिपोर्ट के अनुसार माँ का दूध का बचपन में भरपूर सेवन करने वाले बच्चे, बोतल का दूध पीने वाले बच्चों की तुलना में अधिक धरहरे होते है। अतः बचपन से ही उचित आहार– विहार का सेवन करना चाहिए।

- ❖ मूली के बीजों का 6 ग्राम चूर्ण, 20 ग्राम शहद में मिलाकर चाटने से मोटापा दूर होता है।
- ❖ ग्रीन टी का नियमित प्रयोग करने से भी मोटापा दूर होता है।
- ❖ एलोवेरा का प्रतिदिन उपयोग से भी मोटापा दूर होता है। दो ताजी एलोवेरा की पत्तियाँ ले। इसमें से उसके रस

को निकालकर उसे संतरे के रस के साथ मिलाकर पीयें। इस प्रयोग को नियमपूर्वक एक महीने तक करने से

लाभ मिलता है।

- ❖ रात्रि में सोते समय 3 ग्राम त्रिफला चूर्ण का सेवन करना चाहिए।
- ❖ मोटापा कम करने के लिए चावलों के गरम मांड में नमक डालकर पीना चाहिए।
- ❖ प्रतिदिन खाली पेट टमाटर खाने से भी मोटापा दूर होता है।
- ❖ मोटे शरीर में धतूरे का रस मलने से शरीर हल्का हो जाता है।
- ❖ त्रिफला के काढ़े में जौ का सत्तु मिला लें, फिर इसमें शहद मिलाकर पीयें ये मोटापे को दूर करता है।
- ❖ प्रतिदिन पत्तागोभी को कच्चा ही सलाद के रूप में अथवा पत्तागोभी को उबलाकर प्रतिदिन उसका सूप पीने से भी

मोटापा दूर होता है।

- ❖ त्रिफला और गिलोय के 3–3 ग्राम चूर्ण को शहद में मिलाकर चाटने से भी मोटापा कम होता है। त्रिफला और
- ❖ त्रिकुटा का चूर्ण 6 माषे लेकर नित्य सवेरे ही सरसों का तेल एवं सेंधा नमक मिलाकर चाटना चाहिए।
- ❖ गोमूत्र में शहद मिलाकर पीने से भी मोटापा दूर होता है।
- ❖ मोटापे वृद्धि को दूर करने के लिए प्रतिदिन पीपल को पीसकर उसमें शहद मिलाकर खाना चाहिए।
- ❖ बेर के पत्तों को कांजी के पानी में डालकर उसमें अरंडी का रस और शिलाजीत मिलाकर खायें।
- ❖ 3 चम्मच नींबू के रस को 1 चम्मच शहद और आधा चम्मच काली मिर्च का पाउडर को एक गिलास पानी में मिलाकर पीयें। इसे प्रतिदिन सुबह खाली पेट पीये। 3 महीने तक लगातार इसे करने से मोटापा दूर हो जाता है।

मोटापे से ग्रस्त व्यक्तियो हेतु कुछ सुझाव–

- ❖ मोटापे से बचने के लिए सुबह–शाम टहलना चाहिए।
- ❖ मोटापे से बचने के लिए रात्रिर का भोजन जल्दी खा लेना चाहिए।
- ❖ प्रातः काल उठते ही 4–5 गिलास पानी पीना चाहिए। पानी को रात्रि को ही ताँबें के बर्तन पर रख लेना चाहिए
  तथा सुबह उठते ही इसे पी लेना चाहिए।
- ❖ जब भी तनाव या संकट की स्थिति में हो तो तुरन्त भोजन ना करे। ऐसी स्थिति में हम आवश्यकता से अधिक
  भोजन ग्रहण कर लेते है। पहले स्वयं को शान्त कर लें, तत्पश्चात् भोजन ग्रहण करे।
- ❖ 7–8 घण्टे का पूर्ण विश्राम आवश्यक है अतः रात्रि को पर्याप्त नींद ले।
- ❖ मोटापे को दूर करने के लिए वैकल्पिक चिकित्सा विधियों को ही अपनायें। मोटापा कम करने का दावा करने
  वाली एलोपैथिक दवाइयों को ना अपनायें। मोटापा कम करने वाली दवाइयों से हृदय, गुर्दे, फेफड़े क्षतिग्रस्त हो
  जाते है।
- ❖ खिलखिलाहट वाली हंसी अपनाये। दिल खोलकर हंसने से एक वर्ष में लगभग 5 पौंड तक चर्बी खत्म हो सकती
  है। अमेरिका में हुए एक शोध के बाद बांडरबिल्ट यूनिवर्सिटी के डा. बुचोत्सकी ने कहा कि प्रतिदिन 15 मिनट
  हँसकर चर्बी कम की जा सकती है। इसे आधा मील चलने के बराबर कार्य समझना चाहिए।

6.4.6– आहार चिकित्सा–मोटापे से ग्रस्त व्यक्ति को अपने आहार में नियंत्रण करना अति आवश्यक है। यदि आहार पर नियंत्रण ना किया जाए तो कोई भी चिकित्सा विधा क्यों ना अपना ली जाए, सम्पूर्ण लाभ नहीं कर पायेगी। आहार हमारे शरीर को सवंर्द्धित करने वाला महत्वपूर्ण घटक है। मोटापे से ग्रस्त व्यक्ति को अपने आहार में ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। मोटापे से ग्रस्त व्यक्ति को संतुलित शाकाहारी भोजन लेना चाहिए। ऐसा करने पर वह प्रति सप्ताह एक पाउण्ड तक वनज घटा सकता है। वजन कम करने के लिए कम कैलोरी वाले आहार को प्रधानता देनी चाहिए।

यदि रोगी पूर्णोपवास ना कर पाये तो उन्हे सुबह का नाश्ता त्याग देना चाहिए। रोगी चाहे तो फलोपवास भी कर सकता हैं। फलों में खट्टे फलों को लेना उत्तम है। फलों में टमाटर का रस भी ले सकता है। खट्टे फलों मे हाइड्रोक्सी साइट्रिक एसिड़ होता है, जो वजन को कम करने में सहायता करता है।

रोगी चाहे तो एक गिलास पानी में नींबू और शहद मिलाकर भी पी सकता है। शहद मिले नींबू पानी को प्रत्येक 3–3 घण्टे के अन्तराल में पीयें।

दोपहर में–

दोपहर के भोजन में चोकर सहित आटे की रोटी, सलाद, उबली सब्जियाँ और बिना घी तथा मक्खन वाले मट्ठे का सेवन करना चाहिए।

रात्रि में–

रात्रि में केवल सलाद एवं उबली सब्जियाँ खानी चाहिए।

इसके अतिरिक्त निम्न आहार तालिका का नियमपूर्वक पालन करना अत्यन्त लाभकारी होगा।

अभ्यास प्रश्न –

1. **बहुविकल्पीय प्रश्न –**

(क) मोटापे का कारण है –
- (अ) अक्रियाशील जीवनशैली
- (ब) आनुवंशिकी
- (स) मानसिक तनाव
- (द) उपरोक्त सभी

(ख) मोटापे की चुम्बक चिकित्सा है –
- (अ) दिन में 3 – 4 बार चुम्बकीय जल का प्रयोग
- (ब) हथेलियों में प्रतिदिन शक्तिशाली चुम्बकों का प्रयोग
- (स) सूर्य तप्त जल का सेवन करना चाहिए
- (द) अ व ब दोनों

(ग) मोटापे की यौगिक चिकित्सा है –
- (अ) कुँजल
- (ब) लघु शंखप्रक्षालन
- (स) नस्य कर्म
- (द) अ व ब दोनों

(घ) कुँजल का अभ्यास लाभ देता है –
- (अ) मस्तिष्क का तनाव दूर होता है
- (ब) शरीर की अम्लता व कफ वृद्धि को दूर करता है
- (स) कब्ज को दूर करता है
- (द) इनमें से कोई नहीं

(ड़) समृद्ध समाज व श्रम के अभाव की बिमारी है –
- (अ) निम्न रक्तचाप
- (ब) मोटापा
- (स) सिरदर्द
- (द) गठिया

6.5 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों इस इकाई में आपने मोटापा रोग के कारण, लक्षण व उनकी वैकल्पिक चिकित्सा का अध्ययन किया। मोटापा गलत आहार – विहार को दुष्परिणाम है, मनुष्य दिनों – दिन तरक्की करता जा रहा है, और नित नये सुविधाओं के साधन भी एकत्रित करता जा रहा है। इन सभी सुविधाओं के कारण अक्रियाशील जीवनशैली हो रही है। जिस कारण मोटापा बढ़ रहा है, और रोग का रूप ले रहा है। मोटापे के लिए सबसे उपर्युक्त चिकित्सा **वैकल्पिक चिकित्सा** ही है, क्योंकि एलोपैथी चिकित्सा लेने पर इसके दुष्परिणाम देखने को मिलते हैं। अतः **यौगिक चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, चुम्बक चिकित्सा, प्राण चिकित्सा या जड़ी – बूटी चिकित्सा** किसी भी चिकित्सा द्वारा उपचार करने पर उपर्युक्त लाभ मिलता है।

6.6 – शब्दावली –

अक्रियाशील	–	जो क्रियाशील न हो
दृढ़ निश्चय	–	कठिन संकल्प
मेद धातु	–	आयुर्वेद के अनुसार सप्त धातुओं में से एक धातु मेद
संषोधित	–	परिष्कृत
कुरूप	–	बेढंगापना, भद्दा

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2. क) द **(ख)** द **(ग)** द **(घ)** ब **(ड़)** ब

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जिन्दल राकेश, (2005) प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मोदीनगर, उत्तर प्रदेश।
2. कुमार नागेन्द, (2002) असाध्य रोगों की सरल चिकित्सा, पापुलर बुक डिपो, जयपुर।
3. सक्सेना, ओमप्रकाश, (2008) वृहद् आयुर्वेदिक चिकित्सा, हिन्दी सेवा सदन, मथुरा।
4. सरस्वती सत्यानन्द, (2002) रोग और योग, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुंगेर, बिहार।
5. त्रिवेदी पीयूष, (2006) चुम्बकीय चिकित्सा, पापुलर बुक डिपो, जयपुर।
6. अग्रवाल, एस0आर0, (2006) चुम्बक चिकित्सा, मनोज पब्लिकेषन, चाँदनी चौक, दिल्ली।
7. शुक्ल चन्द्र अमोल, –आयुर्वेद चिकित्सा गाइड, डी0पी0बी0 पब्लिकेशन दिल्ली।
8. चौहान गणेश नारायण –क्या खायें और क्यों ?, पापुलर बुक डिपो, जयपुर।

6.9 सहायक पाठ्य सामाग्री –

1. सत्यानन्द स्वामी (2004) समस्या पेट की समाधान योग, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार।
2. गुप्ता राजकुमारी, (2010) आहार चिकित्सा। नारायण प्रकाशन, जयपुर।

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न –

1. मोटापे से आप क्या समझते हैं ? इस रोग के लक्षण व यौगिक चिकित्सा लिखिए ।
2. मोटापा रोग के कारणों पर प्रकाष डालते हुए इसकी प्राकृतिक चिकित्सा लिखिए।
3. मोटापा की चुम्बक व प्राण चिकित्सा पर प्रकाश डालिए।
4. मोटापा की जड़ी – बूटी चिकित्सा का वर्णन कीजिए।

इकाई–7 बवासीर – कारण, लक्षण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 बवासीर
    7.3.1 कारण
    7.3.2 लक्षण
7.4 वैकल्पिक चिकित्सा
    7.4.1 यौगिक चिकित्सा
    7.4.2 प्राकृतिक चिकित्सा
    7.4.3 चुम्बक चिकित्सा
    7.4.4 जड़ी बूटी चिकित्सा
    7.4.5 प्राण चिकित्सा
    7.4.6 आहार चिकित्सा
7.5 सारांश
7.6 शब्दावली
7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.9 सहायक पाठ्य सामग्री
7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियो इससे पूर्व की इकाई में आपने मोटापा की वैकल्पिक चिकित्सा का अध्ययन किया प्रस्तुत इकाई में आप बवासीर (Piles) रोग के कारणो व उनकी वैकल्पिक चिकित्सा का अध्ययन करेगे, बवासीर कोई रोग विशेष नही बल्कि, यह एक सभ्य समाज की अनियमित व असंयमित जीवन शैली से उपजने वाला रोग है। अधिक तले भुने, मैदे से बने पदार्थ डिब्बा बंद वस्तुएं प्रयोग करने पर पेट साफ नही हो पाता है, जिस कारण कब्ज बना रहता है, तथा लगातार कब्ज होने से यह रोग होता है, या मल निष्कासन करना उसके लिए किसी सजा से कम नहीं होता है। बवासीर का रोगी सदैव परेशान एवं चिड़चिड़ा रहता है। जो खूनी बवासीर का रोगी होता है जो बाहर निकलने में भी कतराता है।

7.2– उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप–

- बवासीर रोग को समझ सकेगे,
- बवासीर रोग के लक्षण तथा कारणो का अध्ययन करेगे,
- बवासीर रोग की विभिन्न वैकल्पिक चिकित्सा– यौगिक चिकित्सा प्राकृतिक चिकित्सा, चुम्बक चिकित्सा, प्राण चिकित्सा तथा जड़ी बूटी चिकित्सा का विश्लेषण कर सकेगे,

- अभ्यास प्रश्नों के उत्तर देने में समर्थ हो सकेंगे।

7.3– बवासीर

बवासीर या अर्श जिसे अंग्रेजी मे (Piles) कहा जाता है,

अर्श शब्द संस्कृत का है, इसे आयुर्वेद में अर्श, यूनानी चिकित्सा बवासीर, अंग्रेजी मे होमोरायड्स या पाइल्स, ये सभी एक ही रोग के पर्यायवाची शब्द हैं, अष्टाग हदय में अर्श के बारे में निम्न प्रकार से वर्णन मिलता है, –

अखित प्राणिनो मांसकीलका विशसन्तियत्।
अर्शासि तस्मादुच्यते गुदमार्ग निरोधतः।।

अर्थात जो मांसाकुर गुदा मार्ग का अवरोध कर शत्रु की भाँति पीड़ा पहुॅचाते है, उन्हे अर्श कहते हैं। इस रोग मे शौच जाना

7.3.1 कारण–

बवासीर रोग बहुत से कारणो के कारण होता है। जिनमें से कुछ प्रमुख कारणो का वर्णन निम्न है–

- कब्ज बवासीर रोग का प्रधान कारण है।
- आनुवंशिकी भी इस रोग का एक प्रमुख कारण है। कई व्यक्तियों में ये रोग उन्हे पैतृक रूप में मिलता है।
- पुरःस्थ ग्रन्थि की सूजन भी बवासीर रोग का एक कारण है।
- गरम, गरिष्ठ भोजन के अत्यधिक सेवन से भी यह रोग होता है।
- कार्बोहाइड्रेड युक्त मीठी चीजों का अधिक सेवन करने से भी बवासीर रोग हो जाता है।
- त्रिदोषो को संतुलित करने वाले आहार का लगातार अधिक मात्रा में सेवन करने से भी यह रोग होता है।
- समय पर भोजन ना करना भी इस रोग का एक कारण है।
- कई व्यक्तियों में अत्यधिक उपवास करने से भी यह रोग हो जाता है।
- विकार ग्रस्त यकृत भी बवासीर रोग का एक कारण है।
- बार–बार मल–मूत्र के वेग को रोकने से भी बवासीर रोग हो जाता है।
- सामर्थ्य से अधिक व्यायाम कसरत करने से भी यह रोग हो जाता है।
- कब्ज की स्थिति में मल त्याग के समय अत्यधिक जोर लगाकर मल को बाहर निकालने की कोशिश करने से भी यह रोग हो जाता है।
- स्त्रियों में अधिकतर यह रोग गर्भ के भार से हो जाता है, प्रसव के उपरान्त स्वयं ठीक भी हो जाता है।

7.3.2 – लक्षण–बवासीर की प्रारम्भिक अवस्था में गुदाद्वार की भितरी व बहारी भाग में खुजली व जलन अनुभव होती है। शौच में कठिनाई होती है।

- वहॉ पर छोटी छोटी गाठे सी बन जाती है, जिन्हे मस्से कहते हैं, ये मस्से ही रोग बढ़ने पर बढ़ जाते है।
- रक्तहीन बवासीर जिसे वादी बवासीर कहते हैं, मे मस्सो में दर्द होता है।

- रोगी का प्यास अधिक लगती है।
- रोगी कमजोर हो जाता है, शरीर शिथिल हो जाता है।
- कुछ रोगियों में हाथ, पैर मुँह आदि पर भी सूजन आ जाती है।
- कुछ रोगियों में हृदय तथा पसलियों मे दर्द होता है, मूर्छा तथा कै तक हो जाती है, बुखार रहने लगता है। यह बवासीर की बहुत कष्टकारी स्थिति है।

7.4 वैकल्पिक चिकित्सा

बवासीर रोग हेतु एलौपेथी का प्रयोग ना करके विभिन्न वैकल्पिक चिकित्सा द्वारा उपचार किया जा सकता है, ये वैकल्पिक चिकित्सा निम्न है।

7.4.1 यौगिक चिकित्सा–

बवासीर रोग के उपचार में यौगिक चिकित्सा अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बवासीर रोग में यौगिक चिकित्सा द्वारा उपचार हेतु निम्न क्रियाओ का अभ्यास कराना चाहिए–

यौगिक चिकित्सा में सर्वप्रथम कब्ज के निराकरण के लिए चिकित्सा करनी आवश्यक है, यौगिक चिकित्सा को दो भागो में विभाजित किया जाता है–

1 कब्ज निवृत्ति हेतु चिकित्सा–

कब्ज की चिकित्सा उचित आहार–विहार व योग की क्रियाओं के अभ्यास के द्वारा की जा सकती है। यौगिक क्रियाओं में निम्न अभ्यास कब्ज से मुक्ति दिला सकते है।

- **षट्कर्म–** अग्निसार क्रिया,वस्ति कर्म एवं नौलि का अभ्यास। आवश्यकतानुसार 15 दिन में एक बार लघु शंखप्रक्षालन भी किया जा सकता है। शंखप्रक्षालन उचित मार्गदर्शन में ही करवायें।
- **आसन–** पवनमुक्तासन, कौआचालासन, त्रिकोणासन, ताड़ासन, कटि चक्रासन, उदराकर्षण, तिर्यक भुजंगासन, मत्स्यासन, अर्द्ध मत्स्येन्द्रासन, हलासन आदि आसन कब्ज रोगियो के लिए अति उत्तम है। कब्ज के रोगी को भोजन के तुरन्त बाद 10 मिनट तक वज्रासन में बैठना चाहिए। सूर्यनमस्कार– सूर्यनमस्कार का प्रतिदिन सूर्योदय के समय 12 आवृतियो तक अभ्यास करना चाहिए।
- **प्राणायाम–** प्रतिदिन भ्रस्त्रिका प्राणायाम, सूर्यभेदी प्राणायाम एवं नाड़ीशोधन प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।
- **मुद्रा एवं बध–** कब्ज रोगियो के लिए योगमुद्रा, पााानी मुद्रा, अश्विनी मुद्रा एवं बन्धो में उड्डियान बंध और महाबन्ध का अभ्यास करना चाहिए।
- **ध्यान–** कब्ज के रोगियो को ध्यान के माध्यम से अन्तमौन का अभ्यास करना चाहिए।

2 बवासीर की यौगिक चिकित्सा–

- **षट्कर्म–** षट्कर्मो के अन्तर्गत नौलि व मूलशोधन का अभ्यास करना चाहिए।

- **आसन–** सर्वांग आसन तथा विपरीत करणी मुद्रा का अभ्यास (यह अभ्यास रक्त को मलद्वार से हटाने में सहायता करते हैं)।
- **प्राणायाम–** नाड़ी शोधन अनुलोम विलोम, (भावना के साथ)।
- **मुद्रा व बंध–** अश्विनी मुद्रा एवं मूल बंध का अभ्यास करना चाहिए।
- **ध्यान–** ध्यान के माध्यम से मन को शान्त करने का प्रयास करना चाहिए।
- **प्रार्थना–** प्रार्थना के माध्यम से सकारात्मक भाव उत्पन्न होकर रोग से मुक्ति मिलती है।

7.4.2– प्राकृतिक चिकित्सा–

बवासीर रोग के उपचार हेतु सर्वप्रथम् कब्ज को दूर करना अति आवश्यक है जब तक कब्ज दूर नहीं होगी बवासीर रोग भी दूर नहीं हो सकता, क्योंकि कब्ज बवासीर रोग का प्रधान कारण है।

- कब्ज दूर करने के लिए रोगी को तरल पदार्थो का सेवन करना चाहिए। अपने आहार में प्रतिदिन रेशो युक्त आहार का सेवन करना चाहिए।
- रोगी को प्रतिदिन एनिमा देना चाहिए। रोगी को पहले नींबू मिले गुनगुने पानी का, तत्पश्चात् ठण्डे पानी का एनिमा देना चाहिए।
- रोगी को रात भर के लिए कटि–प्रदेश, जंघा तथा पेडू पर ऊनी कपड़े का पैक देना चाहिए।
- रोगी के पेट की हल्की मसाज करने के बाद पेट पर गर्म–ठण्डा सेंक करना चाहिए, तत्पश्चात् गर्म–ठण्डा कटि स्नान देना चाहिए।
- प्रतिदिन दो बार 15 मिनट के लिए मस्सो पर स्थानीय भाप दी जा सकती है।
- मस्सो पर स्थानीय भाप स्नान के पश्चात 3–5 मिनट तक गर्म कटि स्नान लेना चाहिए।
- गर्म कटि स्नान लेने के तुरन्त बाद 1–2 मिनट ठण्डा कटि स्नान लेना चाहिए।
- रोगी को प्रतिदिन दो बार जुस्ट का प्राकृतिक स्नान भी लेना चाहिए।
- खूनी बवासीर में हरी रंग की बोतल का सूर्य तप्त जल 50 ग्राम और बादी बवासीर में नारंगी रंग की बोतल का सूर्य तप्त जल 50 ग्राम में पीना चाहिए।
- रोगी को नाभि से लेकर मूत्रेन्द्रिय तक मिट्टी की पट्टी लगानी चाहिए। साथ ही साथ गुदा पर भी मिट्टी की पट्टी लगानी चाहिए।

7.4.3 चुम्बक चिकित्सा–

बवासीर के रोगियों को चुम्बक चिकित्सा निम्न प्रकार से दी जा सकती है।

- रोगी को लौह चुम्बक युक्त गद्दी पर भी 20 से 30 मिनट तक बिठाया जा सकता है, अवश्य लाभ होता है।
- प्रभावित भाग पर लौह चुम्बक का प्रयोग करना चाहिए।
- चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव का प्रयोग 30 से 45 मिनट तक दिन में 3 से 4 बार करना चाहिए।

- पैर के टखने से 3–4 इंच ऊपर उत्तरी ध्रुव का प्रयोग करना चाहिए।
- चुम्बकीय जल (दोनो ध्रुवो से प्रभावित जल) का प्रयोग दिन में 4 से 5 बार करना चाहिए।
- एक बार में चुम्बकीय जल 50 मिली तक लिया जा सकता है, कम आयु के व्यक्तियों को कम से कम 25 मिली तक लिया जा सकता है,

सावधानी– चुम्बकीय जल, चुम्बकत्व आ जाने से वह औषधी बन जाता है। इसलिए इस जल का प्रयोग बार बार एंव अधिक मात्रा में नही पीना चाहिए।

7.4.4 जड़ी बूटी चिकित्सा–

बवासीर के रागियों को निम्न उपायो को अपनाना चाहिए। उचित लाभ मिलेगा।

- भोजन के साथ 3 ग्राम इसबगोल की भूसी खाने से भी लाभ मिलता है।
- बवासीर के रोगी के मस्से बाहर दिखते हो तो सेंहुड़ के दूध में हल्दी का चूर्ण मिलाकर उसकी बूँदो को मस्सो पर डालना चाहिए।
- बवासीर के रोगियों को मट्ठे का सेवन करते रहना चाहिए।
- यदि रोगी के मस्से फूले हुए होने के कारण उसे तकलीफ हो रही हो तो उसे प्रतिदिन दो बार अलसी के तेल का सेवन करना चाहिए।
- मस्सों की जलन और पीड़ा को दूर करने के लिए कुचले को घिसकर मस्सों पर लगाना चाहिए।
- खूनी बवासीर के रोगियों को पानी में भिगे हुए 4–5 मुनक्कों का प्रतिदिन 11 दिन तक सुबह– शाम सेवन करना चाहिए।
- बवासीर रोगी उचित लाभ हेतु 6 ग्राम अपामार्ग के पत्ते और 5 कालीमिर्च के दानों को पानी में पीस ले। छानकर इसका सेवन करें।
- बादी और खूनी दोनो प्रकार की बवासीर में 50 ग्राम अमरबेल के स्वरस में 5 कालीमिर्च को पीसकर घोटकर प्रतिदिन पीयें।
- हरड़, मिश्री, कालीदाख और अंजीर को समान मात्रा में लें और कूट पीसकर गोलियाँ बना ले। प्रतिदिन दो बार इस गाली का सेवन करने से बवासीर रोग में लाभ मिलता है।
- प्याज के महीन टुकड़े काटकर उसे धूप में सूखा ले। तत्पश्चात् 10 ग्राम प्याज को घी में तलकर उसमें 20 ग्राम मिश्री और 1 ग्राम तेल मिलाकर सेवन करे।
- लाल फिटकरी पानी में घिसकर मस्सों पर इसका लेप करने से लाभ मिलता है।
- बबूल की बाँदा को काली मिर्च के साथ मिलकर पीने से खूनी बवासीर रोग में लाभ मिलता है।
- बवासीर में 2 तोला तिल को चबा–चबाकर खाये और तुरन्त पानी पी ले।
- गाँजे को पीसकर गाय के घी में मिला लें फिर इस लेप को मस्सों पर लगाये।
- 10 वर्ष पुराना घी पीने से बवासीर के मस्से समाप्त हो जाते हैं।
- स्वमूत्र द्वारा गुदा को धोने से खूनी बवासीर में लाभ मिलता है।

- सूखे धनिये को दूध और मिश्री के साथ औटाकर पीने से खूनी बवासीर में लाभ मिलता है।
- चार प्याले गाय का दूध लें इनमें एक–एक करके आधा–आधा नींबू निचोड़े और तुरन्त पी ले।
- बाहर लटकते हुए मस्सों में कालीजीरा की पुल्टिस बाँधने से लाभ मिलता है।

7.4.5 प्राण चिकित्सा–प्राण चिकित्सा के अनुसार बवासीर रोग में गुह्य प्रदेश के छोटे चक्रों पर प्राण शक्ति का घनापन बढ़ जाता है। यह चक्र मटमैले लाल रंग का होता है। यह चक्र मूलाधार और गुदा के बीच में, हल्का–सा गुदा की ओर स्थित होता है।

प्राण चिकित्सा द्वारा उपचार प्रकिया में बवासीर के रोगी हेतु निम्न उपचार क्रम अपनाना चाहिए–

- गुह्य प्रदेश के घनेपन को दूर करने के लिए गुदा पर स्थानीय झाड़– बुहार करनी चाहिए। इस रोग में झाड़– बुहार की प्रकिया नितान्त आवश्यक है। अतः झाड़– बुहार पर विशेष ध्यान देना चाहिए।
- झाड़– बुहार के पश्चात् गुदा को ऊर्जित करना चाहिए।
- तत्पश्चात् उदर के ऊपर और नीचे स्थानीय झाड़– बुहार करनी चाहिए।
- बवासीर बड़ी आँत की निष्क्रियता से उत्पन्न रोग माना जाता है। सौर जालिका चक्र और नाभि चक्र , बड़ी आँत और गुदा को नियंत्रित और ऊर्जित करते है।
- अतः सौर जालिका चक्र की सफाई अति आवश्यक है। अग्र और पश्च सौर जालिका चक्र की स्थानीय झाड़– बुहार करनी चाहिए।
- स्थानीय झाड़– बुहार करने के पश्चात् सौर जालिका चक्र को ऊर्जित करते है।
- इसी प्रकार नाभि चक्र सफाई भी नितान्त आवश्यक है। नाभि चक्र की स्थानीय झाड़– बुहार करे।
- स्थानीय झाड़– बुहार करने के पश्चात इसे ऊर्जित करते है।

इस उपचार क्रम को सप्ताह में 2–3 बार दोहराए या रोग की तीव्रता के आधार पर प्रतिदिन एक बार रोगी को इस उपचार क्रम द्वारा उपचारित करना चाहिए।

7.4.6– आहार चिकित्सा–

बवासीर के रोगी को निम्न आहार चिकित्सा दी जा सकती है,

- गेहुँ का दलिया, चोकर समेत आटे की रोटी लेनी चाहिए।
- सब्जियों मे पालक, तोरई, बथुआ, परवल, मूली, पत्तागोभी आदि हरी सब्जियॉ लेनी चाहिए।
- फलो मे पका पपीता, पका केला, खरबूज, सेव, नाशपाती, पका बेल, आलू बुखारा, अंजीर लेने चाहिए।
- आहार के साथ, दूध के साथ मुनक्के, का प्रयोग रात्री को सोते समय करना चाहिए,

- दिन के भोजन मे तक्र मटठा का प्रयोग करना चाहिए।
- पुराने बवासीर में कब्ज की निवृत्ति हेतु तीन से पाँच दिन उपवास रखा जा सकता है, उपवास के दिनो मे सिर्फ नांरगी (संतरे) या कागजी नीबू का रस दिन में दो–दो घंटे के अंतराल मे लेना चाहिए।
- उपवास तोडने के बाद कुछ दिन फलाहार रहना चाहिए।
- फिर कुछ दिन एक समय फलाहार तत्पश्चात धीरे धीरे सामान्य भोजन मे आना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न–

(क)– बवासीर का संस्कृत नाम है–

(अ) छर्दि (ब) अर्श

(स) विबन्ध (द) इनमे से कोई नही

(ख)– बवासीर रोग का कारण हैं।

(अ) कब्ज (ब) आनुवंशिकी

(स) पाचन सम्बन्धी गड़बडी (द) अ व ब दोनो

(ग)– बवासीर में कौन सा स्नान देना चाहिए।

(अ) गर्म ठण्ड़ा कटि स्नान (ब) स्थानीय भाप

(स) भाप स्नान (द) उपरोक्त सभी

(घ)– बवासीर रोग में कौन से चक्रो को उर्जित किया जाता है–

(अ) सौर जालिका चक्र (ब) नाभि चक्र

(स) मूलाधार चक्र (द) उपरोक्त सभी

(ड़)– बवासीर रोग कितने प्रकार का होता है।

(अ) दो (ब) तीन

(स) एक (द) चार

7.5 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों प्रस्तुत इकाई में आपने बवासीर रोग का अध्ययन किया, बवासीर रोग प्रायः कब्ज के द्वारा ही होता है, ऐसा माना जाता है, परन्तु अन्य कारणो से भी यह रोग हो जाता है, तथा लीवर के सिरोसिस के कारण भी यह रोग हो जाता है। तथा एक अन्य कारण इसका वंशानुगत भी है, मानसिक तनाव भी बवासीर का कारण माना गया है, कारण जो भी हो सही चिकित्सा पद्धतियॉ अपनाकर इनका उपचार किया जा सकता है, इन चिकित्सा पद्धतियों मे यौगिक चिकित्सा पद्धति, प्राण चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा या जड़ी बूटी चिकित्सा अथवा चुम्बक चिकित्सा पद्धति द्वारा इनका सफलतम उपचार किया जा सकता है, इन चिकित्सा पद्धतियो को अपनाकर कब्ज से बचा जा सकता है, तथा बवासीर को जड़ से ही खत्म किया जा सकता है तथा स्वस्थ रहा जा सकता है।

7.6 शब्दावली

- मंसाकुर – मांस के अंकुर
- त्रिदोष – तीन दोष (वात, पित्त, कफ)
- पैतृक – पितृ सम्बन्धी

- आनुवांशिकी – एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में आने वाले लक्षण

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

(क)– ब, (ख)– द, (ग)– अ, (घ)– द, (ड़)– अ

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- जिन्दल राकेश। (2005). प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मोदीनगर, उत्तर प्रदेश।
- कर्मानन्द स्वामी। (2010). रोग और योग, बिहार योग विद्यालय मुंगेर (बिहार)।
- नीरज, नागेन्द्र कुमार। (2013). असाध्य रोगों की सरल चिकित्सा, शीतल प्रेस, जयपुर।
- नीरज, नागेन्द्र कुमार। (2013). पेट के रोगों की सरल चिकित्सा, शीतल प्रेस, जयपुर।
- डा. सक्सेना, ओ. पी.। (2008). वृहद् आयुर्वेदिक चिक्त्सिा, हिन्दी सेवा सदन, हालनगंज, मथुरा।
- चौहान, डा. जहान सिंह। (2009). क्लीनीकल डायग्नोसिस एण्ड ट्रीटमेंण्ट्स सुमित प्रकाशन, आगरा।
- शुक्ल, डा. अमोल चन्द्र। (2010). धन्वन्तरित कृत आयुर्वेद चिकित्सा गाईड, डी. पी. बी. पब्लिकेशन्स, दिल्ली–6।

7.9 सहायक पाठ्य सामग्री–

- प्रुर्थी राजकुमार (2005) वैकल्पिक चिकित्सा, प्रभात पेपर वैक्स, नई दिल्ली।
- विवके, आर. एस. (2004) वैकल्पिक चिकित्सा, डायमण्ड पाकेट बुक्स नई दिल्ली।

7.10 निबन्धात्मक प्रश्न–

- बवासीर रोग क्या है? समझाइये तथा यह कितने प्रकार का होता है?
- बवासीर के कारण व लक्षण बताते हुए इसकी प्राकृतिक चिकित्सा लिखिए,
- बवासीर की यौगिक व प्राण चिकित्सा लिखिए,
- संक्षिप्त टिप्पणी – बवासीर की चुम्बक चिकित्सा, बवासीर की जड़ी बूटी चिकित्सा

इकाई–8 अतिसार व मुँह के छाले – कारण, लक्षण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 अतिसार
  8.3.1 कारण
  8.3.2 लक्षण
8.4 – वैकल्पिक चिकित्सा
  8.4.1 यौगिक चिकित्सा
  8.4.2 प्राकृतिक चिकित्सा
  8.4.3 चुम्बक चिकित्सा
  8.4.4 जड़ी बूटी चिकित्सा
  8.4.5 प्राण चिकित्सा
  8.4.6 आहार चिकित्सा
8.5 – मुँह के छाले
  8.5.1 कारण
  8.5.2 लक्षण
8.6 – वैकल्पिक चिकित्सा
  8.6.1 यौगिक चिकित्सा
  8.6.2 प्राकृतिक चिकित्सा
  8.6.3 चुम्बक चिकित्सा
  8.6.4 प्राण चिकित्सा
  8.6.5 जड़ी बूटी चिकित्सा
  8.6.6 आहार चिकित्सा

8.7 सारांश
8.8 शब्दावली
8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.11 सहायक पाठ्य सामग्री
8.12 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

अतिसार एक ऐसा रोग है जिससे कई व्यक्ति काल के गाल में समा रहे है। भारत में प्रतिदिन 1000 बच्चे जन्म लेते है जिनमें से 61 बच्चे इस रोग से ग्रस्त हो जाते है। वैसे तो

यह किसी भी आयु वर्ग के व्यक्ति को हो सकता है, परन्तु अधिकतर बच्चे इसी चपेट में आते है। वैसे तो यह रोग सम्यक उपचार द्वारा 6–7 दिन में ही ठीक हो जाता है, परन्तु कई बार उचित उपचार और परहेज के अभाव में यह घातक सिद्ध होता है।

8.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई निम्न उदेश्यों की पूत्ति करती है –

- अतिसार रोग का अध्ययन कर सकेगे।
- अतिसार रोग के कारणों और लक्षण को समझ सकेगे।
- अतिसार रोग की विभिन्न वैकल्पिक चिकित्सा– यौगिक चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, प्राण चिकित्सा तथा जडी बूटी चिकित्सा विधि द्वारा उपचार प्रक्रिया का अध्ययन करेगें।
- मुंह के छाले के कारणो, लक्षणो का अध्ययन कर सकेगे।
- मुंह के छालो का विभिन्न वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों द्वारा उपचार का अध्ययन कर सकेगे।

8.3 अतिसार

अतिसार एक ऐसा रोग है जिसमें व्यक्ति को बार–बार मल निष्कासन हेतु जाना आवश्यक हो जाता है। मल बिल्कुल पतला होकर निकलता है। अतिसार रोग रोगी को असहाय सा बना देता है। रोगी के शरीर में पानी, खनिज लवण और अन्य पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। सामान्य रूप से सभी व्यक्ति इस बीमारी से ग्रस्त हो ही जाते है, चाहे वो बच्चे हो, वयस्क हो या बूढ़ें हो, सभी उम्र या आयु वर्ग के व्यक्तियों को यह रोग हो सकता है, परन्तु अधिकतर बच्चो को यह रोग होता है। अतिसार में ठोस भोजन तुरन्त बन कर देना चाहिए और तरल पेय पदार्थो का सेवन करना चाहिए।

8.3.1 कारण–

अतिसार रोग निम्नलिखित कारणों से होता है–

- मेल–बेमेल आहार करने से अतिसार (दस्त) हो जाते है।
- कन्फेनशरी एवं डिब्बाबंद वस्तुओ का अधिक मात्रा में सेवन करने से यह रोग होता है।
- एक बार खा लेने के पश्चात् फिर से भोजन ग्रहण करने से यह रोग हो जाता है।
- अतिसार (दस्त) होने का एक कारण मल का वेग रोकना भी है।
- आयुर्वेद कहता है कि धातुओं और त्रिदोनो का कुपित हेना अतिसार का कारण हैं।
- यदि कोई व्यक्ति समयाभाव या अन्य किसी कारणवश जल्दी–जल्दी में भोजन करना अतिसार पैदा करता है।
- रूखी, अत्यधिक चिकनी और गर्म खाद्य पदार्थो के सेवन से भी यह रोग हो जाता है।
- कुछ व्यक्तियो में प्रातः काल उठते ही भोजन कर लेने ही आदत के कारण वे अक्सर अतिसार से ग्रसित रहते है।

- बिना भूख के खाते रहना भी एक वजह है, अतिसार रोग की।
- भोजन का समय निश्चित ना होना।
- शरीर में विषाक्त पदार्थो का बढ़ जाना।
- हाई पावर वाले एंटीबॉयोटिक और अन्य दवाइयों से भी अतिसार हो जाता है।
- यदि यकृत अपने कार्यो को सुचारू रूप से ना कर पा रहा हो तो भी यह रोग हो जाता है।
- कुछ व्यक्तियो में एपेंडिसाइटिस के कारण भी यह रोग हो जाता है।
- संक्रमण भी अतिसार का एक प्रमुख कारण है। संक्रमित भोजन करना तथा मुहँ, गले, दाँत में कोई संक्रमण हो जाए तो यह संक्रमण आँतो तक पहुँचकर अतिसार उत्पन्न कर देता है।
- पेट में कीड़े होने से भी कुछ लोगो को अतिसार हो जाता है।
- मांस–मछली और नशीले पदार्थो का अत्यधिक एवं अनियमित सेवन भी अतिसार का एक कारण है।

8.3.2 लक्षण –

- अचानक होने वाला रोग है।
- पेट दर्द, ज्वर और दस्त, उल्टी तथा भूख की कमी हो जाना इसके लक्षण है।
- बार बार मल त्याग की इच्छा होती है।

8.4 वैकल्पिक चिकित्सा–

अतिसार एक ऐसा रोग है जिसके उपचार हेतु कभी भी दवाइयों का उपयोग नहीं करना चाहिए। इस रोग के उपचार हेतु वैकल्पिक चिकित्सा सर्वोतम विधा है।

8.4.1 यौगिक चिकित्सा –

यौगिक अभ्यास में शरीर को विश्रान्ति देने का मनोबल बढ़ाने वाले अभ्यासों को करना चाहिए।

- **षट्कर्म –**
  सामान्य स्थिति में षट्कर्मो के अभ्यास की आवश्यकता नही है. क्योंकि शरीर की दस्त द्वारा हो ही रही होती है। यदि रोग जीर्ण स्थिति में पहुॅच जाये तो नेति, कुंजल और लघु शंखप्रक्षालन कर शरीर शुद्धि की प्रकिया को बढ़ाना चाहिए।
- **आसन –**
  पवनमुक्तासन, व वज्रासन का अभ्यास करना चाहिए श्वास प्रष्वास की सजगता के साथ आसनों में षिथिलीकरण वाले आसन करने चाहिए। जैसे– मत्स्यक्रीडासन, शषांकासन, शवासन (उदर श्वसन के साथ) करना चाहिए,
- **प्राणायाम –**
  प्राणायाम में उदर एवं अनुलोम विलोम का अभ्यास अति उत्तम है। भ्रामरी व नाड़ीषोधन श्वसन का अभ्यास बिना कुम्भक के करना चाहिए, व शीतली प्राणायाम
- **मुद्रा एवं बन्ध–**

अतिसार के रोग में रोगी अत्यधिक कमजोर हो जाता है। अतः रोगी प्राण मुद्रा का कर सकता है।

- **ध्यान–**

रोगी को पूरा ध्यान आती हुई श्वास और जाती हुई श्वास पर केन्द्रित करना चाहिए।

अतिसार के रोगी हेतु योगनिद्रा का अभ्यास विशेष फलदायी है।

रोगी स्वयं को शान्त एंव ऊर्जावान बनाये रखने के लिए जाप और ऊँ का उच्चारण कर सकता है।

- **स्वाध्याय–**

विधेयात्मक चिंतन वाली पुस्तको का अध्ययन

योग निद्रा का अभ्यास कराया जा सकता है।

8.4.2 प्राकृतिक चिकित्सा–

- दस्त को प्राकृतिक चिकित्सा में तीव्र रोग कहा गया है, क्योंकि यह रोग तेजी से आता है और शरीर के विजातीय द्रव्यों को बाहर फेंक देता है। उचित और सम्यक उपचार के पश्चात् उतनी ही तेजी से चला जाता है।
- दस्तो को तुरन्त रोकने की कोशिश कदापि ना करे। प्रकृति को हमारे भीतर विद्यमान जीवनी शक्ति को अपना शोधन कार्य करने दे। उसमें व्यवधान उत्पन्न ना करें।
- निम्न उपचार क्रम अपनाकर प्रकृति का सहयोग करे।
- पेट की गर्मी को दूर करने के लिए मिट्टी की पट्टी या पानी की ठण्डी पट्टी का पेट पर प्रयोग करे।
- यदि रोग अपनी उग्र अवस्था में हो और हाथ पैर ठण्डे हो गये हो तो 2 मिनट तक पेट का गर्म और 1 मिनट तक पेट का ठण्डा सेंक ले। यह क्रिया 5 बार दोहराये। यह अतिसारजन्य पेट दर्द को भी दूर करता है।
- तत्पश्चात् पेट तथा पैर पर सूती ऊनी कपड़े से लपेट दे।
- आँतो के सक्रंमण को दूर करने के लिए और आँतो की सामर्थ्य को बढ़ाने के लिए नीम के ठण्डे पानी का एनिमा देना चाहिए। यदि रोगी को सर्दी लग रही है, तो गुनगुने पानी का एनिमा देना चाहिए।
- उदर रोग नाशक कटि स्नान (ठण्डा) 15 मिनट के लिए दे। ठण्डा कटि स्नान के दौरान यदि रोगी के पैर ठण्डे हो तो गर्म पानी में रोगी के पैरो में रखे।
- वमन हो रहा हो तो नींबू पानी और मट्ठे के सिवाय रोगी को कुछ ना दे। नींबू पानी और मट्ठे में ही उपवास करवाये।
- वमन अधिक हो रहा हो तो पेट पर गीला कपड़ा रखकर उसके ऊपर से बर्फ रख दे।
- पैरो को गरम रखने के लिए पैरो में सूती ऊनी लपेट करे या हल्के हाथों से पैरो के तलवो की मसाज करें।
- बवासीर में रोग की स्थिति के आधार पर आसमानी सूर्य तप्त जल का आवश्यकतानुसार उपयोग करे।

8.4.3 चुम्बक चिकित्सा

- शक्तिषाली चुम्बको का प्रयोग नाभि पर किया जाना चाहिए।
- चुम्बको का प्रयोग प्रातः काल दोनो तलुओ मे करना चाहिए।

- चुम्बको का दक्षिणी ध्रुंव नाभि पर रखना चाहिए।
- चुम्बको का प्रयोग प्रातः साय 15 से 30 मिनट तक करना चाहिए।
- दक्षिणी ध्रुव द्वारा प्रभावित चुम्बकीय जल दिन में तीन बार पीना चाहिए।
- कनपटी के दोनो ओर चुम्बको का प्रयोग करना चाहिए जिससे मानसिक क्षीणता तथा शारिरिक कमजोरी में लाभ मिलेगा
- अच्छी तरह उबालकर ठण्डा किया हुआ जल चाहिए।
- ग्लूकोज, चीनी व नमक का घोल देना चाहिए जो कि निर्जलीकरण के लिए उपयुक्त है।

8.4.4 जड़ी बूटी चिकित्सा–

- 12 ग्राम आक की जड़ की छाल तथा 12 ग्राम कालीमिर्च को बारीक पीस ले। छोटी–छोटी चने के दाने बराबर गोलिया बना ले। दिन में 3 बार इन गोलियों का अर्क सौंफ के साथ सेवन करे।
- समान मात्रा में आम की गुठली की गिरी का चूर्ण, जामुन की गुठली का चूर्ण और भुनी हुई हरड़ को मिलाये। दिन में 2–3 बार 3–5 ग्राम की मात्रा में सेवन करे।
- इमली के बीज भाड़ में भूनकर उसमें गरम पानी डाले कुछ घण्टो के पष्चात् बकला निकाल कर गीला–गीला ही कूटकर छलनी में छानकर सुखा ले। इसमें शक्कर के साथ 6 ग्राम की मात्रा में दिन में 4 बार खाये।
- 4 भाग कुटज छाल और एक भाग छोटी इलायची को पीसकर कूट ले और इसकी 1 ग्राम मात्रा सुबह शाम जल या मट्ठे के साथ ग्रहण करे।
- हल्दी को बारीक पीसकर छान ले और आग पर भून लें और हल्दी के बराबर काला नमक मिलाये। इसके प्रयोग से अतिसार के दस्त रूक जाते है।
- अमरूद की पत्तियों को उबालकर पीना चाहिए।
- 70 ग्राम दही में 4 ग्राम खसखस को पीसकर मिलाकर दिन में 2–3 बार सेवन करे।
- नीम की पत्तियों को पानी में मिलाकर पीयें।
- बेलगिरी, धनिया, मिश्री बराबर मात्रा में पीसकर गोलियाँ बना ले और दिन में 3 बार चूसे।
- बेल का मुरब्बा सुबह, शाम 10 ग्राम की मात्रा में सेवन करना चाहिए।
- प्रातःकाल ईसबगोल 3 ग्राम की मात्रा में सेवन करना चाहिए।

8.4.5 प्राण चिकित्सा–अतिसार से ग्रस्त रोगी के सौर जालिका चक्र, नाभि चक्र, पेट और मूलाधार चक्र प्रभावित होते है। अतः इन चक्रो में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

- सर्वप्रथम् सौर जालिका चक्र, नाभि चक्र, और पेट की जाँच करनी चाहिए।
- तत्पश्चात् अग्र सौर जालिका चक्र की स्थानीय झाड़– बुहार के बाद उसे ऊर्जित करें।
- प्रक्षेपित प्राण ऊर्जा की स्थिर होने की कल्पना करें।

- नाभि चक्र की स्थानीय सफाई करे, पेट के ऊपरी एवं निचले भाग की भी स्थानीय झाड़– बुहार करें। नाभि चक्र की स्थानीय सफाई के बाद उसे ऊर्जित करें।
- प्रक्षेपित प्राण ऊर्जा की स्थिर होने की कल्पना करें।
- यही प्रकिया मूलाधार चक्र के लिए करें। सर्वप्रथम् मूलाधार चक्र की स्थानीय सफाई करे, स्थानीय झाड़– बुहार के बाद उसे ऊर्जित करें।
- प्रक्षेपित प्राण ऊर्जा की स्थिर होने की कल्पना करें।
- यदि उपरोक्त उपचार के पश्चात् भी रोगी दर्द की शिकायत करे और उसे पतले दस्त हो रहे हो तो यह समझना चाहिए कि झाड़– बुहार की अधिक आवश्यकता है या झाड़– बुहार ढ़ग से नहीं किया गया है।
- अतः अग्र सौर जालिका चक्र, नाभि चक्र, पेट और मूलाधार आदि चक्रो में विशेष ध्यान देते हुए पुनः इन चक्रो की स्थानीय झाड़– बुहार ढ़ग से करनी चाहिए। यदि उपरोक्त उपचार के बाद भी रोगी के रोग का प्रकोप कम ना हो, तो रोगी को अधिक उन्नत प्राणशक्ति उपचारक से मिलना चाहिए।
- यदि उपरोक्त उपचार के बाद भी रोगी के रोग का प्रकोप कम ना हो, तो रोगी को अधिक उन्नत प्राणशक्ति उपचारक से मिलना चाहिए।

8.4.6 आहार चिकित्सा–

- अतिसार में जल एवं खनिज लवणों की अत्यधिक कमी हो जाती है। अतः कुछ समयान्तराल में थोड़ी–थोड़ी मात्रा में रोगी को ओ. आर. एस. का घोल बनाकर पिलाना चाहिए।
- अतिसार में सुपाच्य आहार ही लेना चाहिए, पूर्ण आहार ना लें। अतिसार में ऐसे भोज्य पदार्थो का सेवन करना चाहिए, जो शरीर में खनिज लवणों एवं जल का सन्तुलन बनाये रखे।
- पहले कुछ दिनो तक मट्ठा या नींबू पानी+शहद ही लेना चाहिए। नींबू पानी में हल्का–सा नमक भी डाला जा सकता है।
- तत्पश्चात् कुछ दिनो के बाद और रोगी की भूख और इच्छा के अनुसार सब्जियों का रस अथवा फलों का रस दिया जा सकता है।
- सब्जियों में गाजर, तोराई, लौकी, टिण्डा आदि सुपाच्य सब्जियों को मिलाकर बनाया गया सूप लिया जा सकता है। सभी सब्जियाँ उपलब्ध ना होने पर किसी भी एक प्रकार की सब्जी का सूप बनाना चाहिए।
- फलो में केले के सेवन ऊर्जा एवं खनिज लवणों की कमी को दूर करता है। सेब को उबालकर खिलाना भी लाभकारी है। इसके अतिरिक्त अनानास और बेल भी इस रोग के लिए लाभकारी है। फलो में अनार, संतरा और मौसमी का रस भी उत्तम है।
- रोगी को छाछ के साथ किशमिश देना, पीने के लिए नारियल पानी एवं छेने का पानी भी लाभकारी है।
- दालों में मूंग और मसूर का पानी, साबूदाना, दही और दलिया भी उपयोगी है।

नोट– रोग की अवस्था के आधार पर पहले अपक्व आहार फिर उबले आार पर तथा तत्पश्चात् अन्त में हल्के सुपाच्य आहार में आना चाहिए।

8.5 मुँह के छाले

मुँह के छालो को मुखकोथ भी कहा जाता है। मुँह के छालो मुँह की म्यूकस झिल्ली में प्रदाह उत्पन्न हो जाता है और व्रण या छाले उत्पन्न हो जाते है। मुँह के छाले एक सामान्य रोग है,जो किसी ना किसी को कभी ना कभी हो ही जाता है। आँकड़ो के अनुसार हर 5 में से 1 को यह पुनः हो जाते है। सामान्यतः ये छाले कुछ समय तक रहते है और फिर स्वयं ही समाप्त हो जाते है। कईयो में मुँह में 1–2 छालें और कईयों में तो मुँह, जीभ एवं मसूड़े भी छालों से भर जाता है। मुँह के छालों का मुख्य कारण पाचन की गड़बड़ी माना गया है। इसके साथ ही कई अन्य कारण महत्वपूर्ण है। मुँह के छालों के कारण को जानकर यदि उसकी चिकित्सा की जाए तो बार–बार आने वाले मुँह के छालों से निजात पाया जा सकता है।

8.5.1 कारण–

- मुँह के छालों का वास्तविक कारण अज्ञात है। ऊत्तकों की हानि एक प्रमुख कारण है, कई जानकारो के अनुसार मुँह के छालों का एक कारण पाचन सम्बन्धी गड़बड़ी है। मुँह के छालों के होने के कारण निम्नलिखित है–
- उदर की गर्मी के बढ़ने से मुँह में छालों हो जाते है।
- भोजन सम्बन्धी गलत आदतो जैसे– अत्यधिक गर्म भोजन को मुँह में रखकर जल्दी–जल्दी खा लेना, गर्म भोज्य पदार्थो का अधिक सेवन करना और भोजन का कोई निश्चित समय ना होना।
- दाँतो से सम्बन्धित रोग अथवा दाँतो को भली–भाँति साफ ना करने से भी मुँह में छाले हो जाते है।
- तनाव चिंता आदि के कारण भी मुँह में छाले होते है।
- कई व्यक्तियो में मुँह के छालों का कारण हरपीज वायरस है। ऐसे में विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है, अन्यथा संक्रमण बढ़ जाता है।
- विटामिन की कमी जैसे– विटामिन बीकी कमी एक सामान्य कारण है। विटामिन बी9 (फोलिक एसिड़) और विटामिन बी1 (थायमिन) प्रमुख है। विटामिन सी की कमी से भी यह रोग हो जाता है।
- यदि कोई व्यक्ति किसी भी रोग से ग्रस्त हो तो रोग के दौरान रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी के कारण भी मुँह के छाले हो जाते है।
- खनिज लवणों की कमी भी एक कारण है। आयरन और जिंक हमारे शरीर के लिए अवश्यक खनिज लवण है। मुँह के छाले इनकी कमी से भी होते है।
- कुछ दवाइयों के दुष्प्रभाव से भी मुँह के छाले हो जाते है इन दवाइयों जैसे– सामान्य दर्द निवारक गोलियाँ, बीटा बौलकर्स और कुछ सीने के दर्द की दवाइयो से भी यह रोग हो जाता है।
- कब्ज के कारण आँतों में मल पड़े पड़े सड़ता रहता है। जिस कारण गैस और गर्मी उत्पन्न होती है।जो ऊपर की ओर आकर मुँह में छाले बना देता है।

- तम्बाकू और पान को अधिक मात्रा में चूना लगाकर खाने से भी मुँह के छालों की समस्या से जुझना पड़ता है।
- रक्त में विकार होने से भी मुँह के छाले हो जाते है।
- अधिक मिर्च–मसाले युक्त और तले–भुने भोजन का अधिक सेवन करने से भी मुँह के छाले हो जाते है।
- कई व्यक्तियों में भोजन की एलर्जी से यह होता है। सामान्यतः ग्लूटिन (यह गेहूँ, राई, ओट्स, बारली आदि में पाया जाता है।) फ्लोराइड और अन्य तत्वो से एलर्जी के कारण भी मुँह के छाले हो जाते है।
- हार्मोन्स असन्तुलन भी मुँह के छाले के कारण है। विशेषकर कुछ महिलाओं में मुँह के छाले मासिक धर्म के दौरान हो जाते है। शरीर में अम्ल की अधिकता भी रोग का एक प्रमुख कारण है।
- पेट और शरीर के अन्य भागो में जल एकत्रित हो जाना भी इस रोग का एक कारण है।

8.5.2 लक्षण–

- मुँह के छालें मुँह के अन्दर, जीभ में, कोमल तालू में और गालो के अन्दर भी हो सकते है।
- मुँह के छालें सामान्यतयाः लाल, सफेद एवं ग्रे रंग के हाते है, जो चारो ओर से या कोनो से लाल रेग का होता है।
- कई व्यक्तियो में ये छाले अत्यधिक पीड़ादायक होते है, तो कईयों में तो ये कम पीड़ादायी होते है।
- सामान्य रूप से छाले 1 सेंमी. तक तथा पीलापन लिए हुए हो सकते है।
- जब छाले तीव्र अवस्था में कईयो व्यक्तियो में बुखार और शारीरिक थकान भी देखने में मिलती है।
- कई व्यक्तियो के लिम्फ नोड्स में सूजन आ जाती है।

8.6 वैकल्पिक चिकित्सा–

मुँह के छालो के उचित कारण को जानकर उनकी चिकित्सा करनी चाहिए। वैकल्पिक चिकित्सा मुँह के छालो के लिए सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा विधा है।

8.6.1 यौगिक चिकित्सा –मुँह के छाले उदर में विकार होने से ही होता है। यह रोग पेट में कब्ज होने पर उपजता है अतः सर्वप्रथम पेट को साफ रखा जाना आवश्यक है, उसके लिए पहले कब्ज की चिकित्सा की जानी आवश्यक है अतः कब्ज की चिकित्सा निम्न प्रकार से है।

कब्ज की यौगिक चिकित्सा उचित आहार–विहार व योग क्रियाओं के अभ्यास के द्वारा की जा सकती है। यौगिक क्रियाओं में निम्न अभ्यास कब्ज से मुक्ति दिला सकते है।

- **षट्कर्म–** अग्निसार क्रिया, वस्ति कर्म एवं नौलि का अभ्यास। आवश्यकतानुसार 15 दिन में एक बार लघु शंखप्रक्षालन भी किया जा सकता है। शंखप्रक्षालन उचित मार्गदर्शन में ही करवायें।

- **आसन–** पवनमुक्तासन, कौआचालासन, त्रिकोणासन, ताड़ासन, कटि चक्रासन, उदराकर्षण, तिर्यक भुजंगासन, मत्स्यासन, अर्द्ध मत्स्येद्रासन, हलासन आदि आसन कब्ज रोगियो के लिए अति उत्तम है। कब्ज के रोगी को भोजन के तुरन्त बाद 10 मिनट तक वज्रासन में बैठना चाहिए। सूर्यनमस्कार– सूर्यनमस्कार का प्रतिदिन सूर्योदय के समय 12 आवृतियो तक अभ्यास करना चाहिए।
- **प्राणायाम–** प्रतिदिन शीतली, शीतकारी प्राणायाम एंव नाड़ीशोधन प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

8.6.2 प्राकृतिक चिकित्सा–

प्राकृतिक उपचार क्रम में पेट में अम्लता और पित्त की अधिकता को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। ऐसे उपचार क्रम को अपनाना चाहिए, जो पेट की उष्णता को कम कर सके।

- इसके उपचार हेतु सर्वप्रथम उपवास या रसाहार करना चाहिए।
- सिर को ठण्डा रखते हुए मुँह के अन्दर और बाहर दिन में 3 बार भाप देनी चाहिए।
- प्रतिदिन एनिमा द्वारा आँतों की सफाई करनी चाहिए।
- पेट तथा पेडू पर ठण्डी मिट्टी की पट्टी देनी चाहिए।
- आसमानी, हरी बोतल एवं गहरी नीली पीली सूर्य तप्त जल को समान मात्रा में लेकर मिला ले। दिन में 3–4 बार इसे पीये।
- हरी एवं गहरी नीले सूर्य तप्त जल को लेकर कुल्ला करने से भी छालों में राहत मिलती है।

8.6.3 चुम्बक चिकित्सा

- मुँह के छालो को पाचन की गड़बड़ी का परिणाम माना जाता है अतः हथेलियो पर शक्तिशाली चुम्बक का प्रयोग कर पाचन क्रिया को सुचारू किया जाता है।
- छालो से उत्पन्न प्रदाह और पीड़ा को दूर करने के लिए उत्तरी ध्रुव से तैयार जल से गरारा या कुल्ला करना चाहिए।
- दिन में 4–5 बार चुम्बकीय जल का सेवन करना चाहिए।

8.6.4 प्राण चिकित्सा

मुँह के छाले से ग्रस्त रोगी के सौर जालिका चक्र, नाभि चक्र, पेट और मूलाधार चक्र प्रभावित होते है, क्योकि इन छालों की उत्पत्ति होती है। अतः इन चक्रो पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है,

- सर्वप्रथम सौर जालिका चक्र, नाभि चक्र और पेट की जाच करनी चाहिए,
- उसके बाद अग्र सौर जालिका चक्र की स्थानीय झाड़–बुहार कर उन चक्रो को उर्जित करना चाहिए,
- प्रक्षेपित प्राण ऊर्जा स्थिर होने की कल्पना करे,

- नाभी चक्र की स्थानीय सफाई करे, पेट के ऊपरी व निचले भाग की भी स्थानीय झाड़–बुहार करें, प्रभावित भाग की झाड़–बुहार करें,
- नाभि चक्र की स्थानीय सफाई के बाद उसे उर्जित करें,
- यही प्रक्रिया मूलाधार चक्र के लिए करनी चाहिए, सर्वप्रथम मूलाधार चक्र की स्थानीय सफाई करनी चाहिए,
- स्थानीय झाड़–बुहार के बाद उस चक्र को उर्जित करना चाहिए,
- प्रक्षेपित प्राण ऊर्जा के स्थिर होने की कल्पना करनी चाहिए,
- यदि उपरोक्त उपचार के पश्चात भी रोगी को लाभ नही मिल रहा हो तो यह समझना चाहिए कि रोगी का झाड़–बुहार की और अधिक आवश्यकता है,
- अतः रोगी को नाभि चक्र पेट और मूलाधार चक्रो में विशेष ध्यान देते हुए पुनः इन चक्रो की स्थानीय झाड़–बुहार करनी चाहिए,
- यदि उपरोक्त उपचार के बाद भी रोगी को आराम न मिल रहा हो, तो रोगी को और अधिक उन्नत प्राणषक्ति उपचार से मिलना चाहिए,

8.6.5 जड़ी बूटी चिकित्सा

- मुँह के छालो में जायफल के टुकड़े पानी में उबालकर ठण्डा कर तथा इस पानी से कुल्ला करना चाहिए,
- जायफल घिसकर आधा चम्मच लेप एक गिलास पानी में घोल बना ले, इससे गरारे व कुल्ला करने से छाले ठीक हो जायेंगें,
- रात को सोने से पहले एक गिलास मीठे दूध में आधा चम्मच पिसी हल्दी व एक चम्मच देशी घी डाल लें, इसे 8–10 दिन तक प्रयोग करे अवश्य लाभ होगा,
- कच्चे नारियल का टुकड़ा व चिरौंजी मुँह में डाल कर धीरे धीरे चबाने से छाले ठीक हो जाते है, ऐसा दिन मे 2–3 बार करे,
- हरे धनियाँ की पत्तियो को अच्छी तरह धो ले, इन्हे चबाएँ अवश्य ही लाभ होगा,
- टमाटर के रस मे पानी मिलाकर इससे कुल्ला करने से मुँह के छाले ठीक हो जाते है,
- चमेली के पत्ते, गिलोय, दारू हल्दी, और त्रिफला इनके काढ़े में शहद मिला ले, इस काढ़े से कुल्ला करने से मुँह के छाले व घाव ठीक हो जाते है,
- चमेली के पत्ते चबाने से भी छाले ठीक हो जाते है,

8.6.6– आहार चिकित्सा

मुँह के छाले के रोगी को निम्न आहार चिकित्सा दी जा सकती है,

- मुँह के छाले के रोगी को विभिन्न प्रकार के फलो का सेवन करना चाहिए जैसे– सेब, शरीफा, खरबूजा, तरबूजा, जामुन मौसम्मी तथा संतरा फांके

निकालकर रेशे सहित आदि मौसमानुसार मिलने वाले फल खाने से मुँह के छालो मे अत्यन्त लाभ मिलता है।

- मुँह के छालो में विभिन्न प्रकार की सब्जियों का सेवन करना चाहिए , पालक, चौलाई बथुआ आदि पत्ते वाली सब्जी, लौकी, टिण्डा, चुकन्दर, तोराई गाजर, खीरा आदि,
- पपीते का सेवन विशेष रूप से लाभकारी सिद्ध होता है।

विशेष–

- मुँह के छालो में बासी भोजन का सेवन नही करना चाहिए।
- तले भुने, चटपटे, नमकीन, मिर्च–मसाले, फास्ट फूड, जंक फूड़, कृत्रिम पेय, चाय, कॉफी, बिस्किट, ब्रेड नही खाना चाहिए।
- दर्द कम करने के लिए जामुन का फल का सेवन भी विशेष लाभकारी होता है।

अभ्यास प्रश्न

(क) अतिसार के रोगी के शरीर मे निम्न तत्वो की कमी हो जाती है,

(अ) पानी (ब) खनिज लवण
(स) अ व ब दोनो (द) रक्त

(ख) अतिसार के लक्षण है।

(अ) पेट दर्द (ब) दस्त, उल्टी
(स) भूख की कमी (द) उपरोक्त सभी

(ग) प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार अतिसार रोग है।

(अ) तीव्र रोग (ब) जीर्ण रोग
(स) साधारण रोग (द) इनमे से कोई नही

(घ) मुख के छालों का मुख्य कारण है।

(अ) पाचन संस्थान की गड़बड़ी
(ब) उदर की कमी के कारण
(स) एलर्जी के कारण
(द) उपरोक्त सभी

(ड़) मुख के छालो की प्राकृतिक चिकित्सा है।

(अ) एनिमा
(ब) पेट तथा पेडू पर ठण्डी पट्टी
(स) आसमानी, हरी, नीली, पीली, सूर्य तप्त जल का सेवन
(द) उपरोक्त सभी

8.7 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों आपने इस इकाई में अतिसार रोग व मुँह के छाले रोग का अध्ययन किया, इन दोनो रोगो के कारण, लक्षण, व वैकल्पिक चिकित्सा पद्वतियो से आप पूर्णतः परिचित हो चुके होगे, अतिसार रोग एक ऐसा रोग है जो गलत आहार के कारण होने वाला रोग है। आर्युवेद त्रिदोष के कुपित होना इसका कारण मानता है, विषाक्त पदार्थो के एकत्र होने के कारण भी यह रोग हो सकता है अतिसार का उपचार सभी चिकित्सा पद्वतियों द्वारा किया जा सकता है, इसी प्रकार मुह के छाले भी पाचन सम्बन्धी गड़बडी या तनाव या वायरस भी इसका कारण होता है, परन्तु वैकल्पिक चिक्तिसा पद्वति में कोई भी एक चिकित्सा व्यक्ति अपनाए तो इन रोगो से मुक्त हुआ जा सकता है। व स्वस्थ जीवन बनाया जा सकता है।

8.8 शब्दावली–

विषाक्त – विष युक्त
संक्रमण – एक से दूसरे मे रोग का फैलना

8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1 (क) – स, (ख) – द, (ग) – अ, (घ) – द, (ड़) – द,

8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- जिन्दल राकेश। (2005). प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मोदीनगर, उत्तर प्रदेश।
- कर्मानन्द स्वामी। (2010). रोग और योग, बिहार योग विद्यालय मुंगेर (बिहार)।
- नीरज, नागेन्द्र कुमार। (2013). असाध्य रोगों की सरल चिकित्सा, शीतल प्रेस, जयपुर।
- नीरज, नागेन्द्र कुमार। (2013). पेट के रोगों की सरल चिकित्सा, शीतल प्रेस, जयपुर।
- डा. सक्सेना, ओ. पी.। (2008). वृहद् आयुर्वेदिक चिक्त्सिा, हिन्दी सेवा सदन, हालनगंज, मथुरा।
- चौहान, डा. जहान सिंह। (2009). क्लीनीकल डायग्नोसिस एण्ड ट्रीटमेंण्ट्स सुमित प्रकाशन, आगरा।
- शुक्ल, डा. अमोल चन्द्र। (2010). धन्वन्तरित कृत आयुर्वेद चिकित्सा गाईड, डी. पी. बी. पब्लिकेशन्स, दिल्ली–6।

8.11 सहायक पाठ्य सामग्री

- प्रुर्थी राजकुमार (2005) वैकल्पिक चिकित्सा, प्रभात पेपर वैक्स, नई दिल्ली।
- विवके, आर. एस. (2004) वैकल्पिक चिकित्सा, डायमण्ड पाकेट बुक्स नई दिल्ली।

8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

- अतिसार के कारण लक्षण एव यौगिक चिकित्सा लिखिए।
- अतिसार की प्राकृतिक व चुम्बक चिकित्सा का वर्णन कीजिए।
- मुँह के छालो का कारण क्या है, स्पष्ट कीजिए तथा इनकी जड़ी बूटी चिकित्सा का वर्णन कीजिए।
- मुँह के छालो की प्राकृतिक, चुम्बक, चिकित्सा का वर्णन कीजिए।

इकाई 9 ओस्टियोपोरोसिस कारण, लक्षण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 ओस्टियोपोरोसिस के कारण
9.4 ओस्टियोपोरोसिस के लक्षण
9.5 ओस्टियोपोरोसिस की वैकल्पिक चिकित्सा
9.5.1 ओस्टियोपोरोसिस की योग चिकित्सा
9.5.2 ओस्टियोपोरोसिस की प्राकृतिक चिकित्सा
9.5.3 ओस्टियोपोरोसिस की आयुर्वेद चिकित्सा
9.5.4 ओस्टियोपोरोसिस की एक्यूप्रेशर चिकित्सा
9.5.5 ओस्टियोपोरोसिस की योग चिकित्सा
9.5.6 ओस्टियोपोरोसिस की योग चिकित्सा
9.6 सारांश
9.7 पारिभाषिक शब्दावली
9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
9.10 सहायक पाठ्य सामग्री
9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, जैसा कि आपको पूर्व ज्ञान है कि वर्तमान समय विज्ञान का एक ऐसा युग है जिसमें विज्ञान ने आधुनिक मानव के जीवन को भौतिक सुख सुविधाओं से परिपूर्ण किया है। आज के मशीनरी युग में मानव का शारीरिक श्रम इतना कम कर दिया कि शरीर की अस्थियों एवं जोडों की क्रियाशीलता अच्छी प्रकार नही हो पाती है। यही एक प्रमुख कारण है कि आज के विकसित एवं सभ्य समाज में अनेक प्रकार के नये नये अस्थियों एवं जोडों से सम्बन्धित रोगों की एक बाढ सी आ गयी है। इसके साथ साथ विकृत आहार विहार, खान पान, दवाईयों का अधिक सेवन एवं तनाव व भागदौड भरी स्पर्धायुक्त जीवन शैली ने भी रोगों के बढाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन सभी कारकों के कारण आज के अधिकांश स्त्री एवं पुरुषों का जीवन विभिन्न प्रकार के रोगों से जुड गया है।

उपरोक्त कारकों के कारण ही ओस्टियोपोरोसिस नामक रोग आज के सभ्य एवं विकसित समाज में गहरी जडें जमा चुका है तथा आज समाज में 50 से 60 वर्ष की आयु के अधिकांश स्त्री पुरुष इस रोग की चपेट में आ रहें हैं। इस रोग से ग्रस्त होने पर रोग को दूर करने हेतु एवं दर्द से छुटकाराने पाने के लिए अनेंक प्रकार की अग्रेंजी एलोपैथिक एनलजेसिक तथा स्टीरॉइड दवाईयों का सेवन किया जाता है किन्तु इस रोग से ग्रस्त होने पर खतरनाक स्टीरॉइड एवं पेनकीलर का प्रयोग भी निष्प्रभावी सिद्ध होता है तथा रोगी को रोग में स्थाई लाभ प्राप्त नही हो पाता है इसके विपरित यह रोग धीरे धीरे गंभीर रुप धारण करता जाता है। भारत देश में पिछले दस वर्षों में इस रोग से ग्रस्त रोगियों की

संख्या में बहुत तेजी से वृद्धि हुई है। भारत के साथ साथ यह विश्व के अधिकांश देशों विशेष रुप से ठण्डे देशों में तेजी से फैल रहा एक ऐसा रोग है जिससे रोगी और चिकित्सक दोनों ही परेशान है। अब इन तथ्यों को जानने के बाद आपके मन में यह प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक ही है कि इस रोग की उत्पत्ति के क्या कारण हैं ? रोग के क्या लक्षण है अर्थात किस प्रकार हम रोग को पहचान (Diagnose) सकते हैं ? और इस रोग की क्या उत्तम चिकित्सा हो सकती है ? प्रस्तुत इकाई में इन्ही प्रश्नों के उत्तर पर सविस्तार विचार किया गया है।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ओस्टियोपोरोसिस रोग को समझाने में सक्षम हो सकेगें।
- ओस्टियोपोरोसिस रोग के सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- ओस्टियोपोरोसिस रोग के कारणों को जान सकेगें।
- ओस्टियोपोरोसिस रोग के लक्षणों को वर्णित करने में सक्षम हो सकेंगे।
- ओस्टियोपोरोसिस रोग की वैकल्पिक चिकित्सा को जान सकेगें।
- ओस्टियोपोरोसिस रोग के विषय में महत्वपूर्ण तथ्यों का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गये प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

9.3 ओस्टियोपोरोसिस रोग के कारण

प्रिय विधार्थियों, आधुनिक समय के विकृत आहार विहार एवं अनियमित दिनचर्या के परिणाम स्वरुप जैसे ही आयु पचास वर्ष से ऊपर पहुचती है प्रायः वैसे ही शरीर की अस्थियो मे विकार उत्पन्न होने प्रारम्भ हो जाते हैं। इन विकारों में अस्थियों के अन्दर के द्रव्यों का घनत्व कम होने लगता है। शरीर की अस्थियों की इस अवस्था को '**आस्टियोपोरोसिस**' के नाम से जाना जाता है अर्थात A loss of bone mass or bone density is known as **Oesteoporosis**.

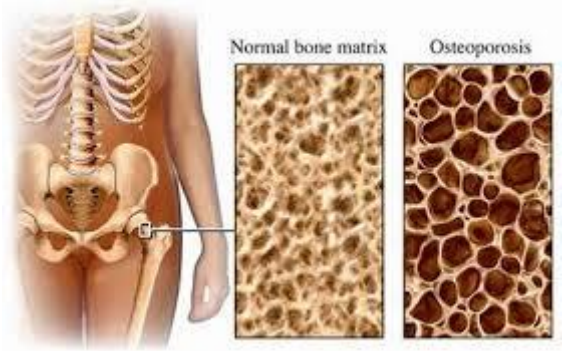

शरीर में अस्थियों की इस अवस्था अर्थात ओस्टियोपोरोसिस रोग का कोई एक निश्चित कारण विशेष नही होता है अपितु कुछ जैविक एवं कुछ प्रर्यावरणीय कारक (Genetic and Environmental Factors) मिलकर इस रोग को उत्पन्न करते है। इन कारकों के कारण शरीर की अस्थियों में द्रव्यों का घनत्व कम होने लगता है जिससे

अस्थियों की मजबूती एवं लचीलापन कम होता एवं इसके स्थान पर अस्थियों मे भंगुरता उत्पन्न हो जाती है। अस्थियों के भंगुर होने की अवस्था में चोट लगने पर अथवा गिरने व फिसलने पर हड्डियों मे फ्रैक्चर हो जाता है। इस रोग से ग्रस्त होने पर शरीर की बडी अस्थियों में जल्दी जल्दी एवं बार बार फैक्चर होने लगता है।

यद्यपि जैसा कि इकाई के प्रारम्भ में ही स्पष्ट किया जा चुका है कि इस रोग का कोई एक निश्चित कारण निर्धारित नही किया जा सकता है अपितु निम्न लिखित दो अथवा अधिक कारण साथ मिलकर ओस्टियोपोरोसिस रोग को उत्पन्न करते हैं –

(1) बढती आयु अथवा वृद्धावस्था (Older Age) : मानव शरीर में निर्माण एवं विनाश सम्बन्धी दो क्रियाएं प्रतिक्षण चलती रहती हैं। यद्यपि बाल्यावस्था एवं युवावस्था में ये दोनों क्रियाएं सम अनुपात में चलती रहती हैं किन्तु जैसे जैसे शरीर वृद्धावस्था की ओर बढता है वैसे वैसे ही निर्माणकारी क्रिया धीमी एवं विनाशकारी प्रक्रिया त्रीव हो जाती है। इसी के परिणामस्वरुप अस्थियों में द्रव्यों का घनत्व धीरे धीरे कम होने लगता है जिसके कारण ओस्टियोपोरोसिस रोग उत्पन्न होता है। वर्तमान समय अप्राकृतिक रासायनिक पदार्थों से युक्त आहार एवं अव्यवस्थित दिनचर्या के कारण शरीर में विनाशकारी प्रक्रिया ओर अधिक त्रीव हो जाती है जिसके परिणाम स्वरुप वर्तमान समय में 50 से 60 वर्ष की आयु के अधिकांश वृद्ध प्रायः इस रोग की चपेट में आ रहे हैं।

(2) असन्तुलित आहार (Imbalance Diet) : आहार में पोषक तत्वों की कमी इस रोग की उत्पत्ति का प्रमुख कारण है। प्रमुख रुप से आहार में कैल्शियम एवं विटामिन डी की कमी होने पर ओस्टियोपोरोसिस रोग की संभावना बढ जाती है। भोजन में समुद्री नमक की अधिक मात्रा का सेवन करने के कारण भी यह रोग तेजी से बढता है। चाय एवं कॉफी के रुप में अधिक कैफीन का सेवन भी अस्थियों पर नकारात्मक प्रभाव रखता है जिसके कारण ओस्टियोपोरोसिस रोग की संम्भावना बढ जाती है। भोजन में मिर्च मसाले के अधिक प्रयोग एवं मांसाहारी भोजन का सेवन भी इस रोग के कारण है।

(3) श्रमहीन जीवनशैली (Inactive or Sedentory life style) : जीवन में श्रम का अभाव अथवा एक स्थान पर बैठकर कार्य करना अथवा शारीरिक श्रम का अभाव होने के कारण भी इस रोग की संम्भावना बढ जाती है। चूंकि शारीरिक श्रम करने से अस्थियां मजबूत एवं जोडों की गतिशीलता बनी रहती है किन्तु इसके विपरित शारीरिक श्रम का पूर्ण अभाव होने पर अस्थियां एवं जोड कमजोर बनते हैं एवं ओस्टियोपोरोसिस रोग की संम्भावना बढ जाती है। श्रमहीन जीवन शैली होने के साथ साथ यौगिक आसनों,

क्रियाओं एवं सूर्यनमस्कार आदि अभ्यासों के नही करने पर ओस्टियोपोरोसिस रोग की संम्भावना और अधिक बढ जाती है।

(4) हार्मोन्स का असन्तुलन (Imbalance of Hormones) : शरीर में हार्मोन्स का असन्तुलन होना इस रोग का प्रमुख कारण है। महिलाओं में रजोनिवृति (Menopose) के उपरान्त एस्ट्रोजन हार्मोन का अल्पस्रावण इस रोग की उत्पत्ति का एक प्रमुख कारण है। इसी प्रकार पुरुषों में टेस्टोस्टीरॉन हार्मोन का अल्पस्रावण इस रोग की उत्पत्ति का एक प्रमुख कारण है। इन्सुलिन हार्मोन के अल्प स्रावण भी इस रोग का कारण है। हायपर थायरडिज्म एवं हायपर पैराथायरडिज्म भी इस रोग की उत्पत्ति के कारण हैं। इस प्रकार शरीर में हार्मोन का असन्तुलन ओस्टियोपोरोसिस रोग का प्रमुख कारण है।

(5) दुर्व्यसन (bad habbits) : धूम्रपान करने की आदत अथवा एल्कोहल सेवन करने से अस्थियों पर नकारात्मक प्रभाव पडता है। इससे इस रोग की संम्भावना बढ जाती है। इसी प्रकार तम्बाकू, गुटका, पान मसाले आदि र्दुव्यसनों से शरीर की अस्थियों में विकृति उत्पन्न होती है जिसके कारण भी यह रोग उत्पन्न होता है। कुछ चिकित्सक धूम्रपान को ओस्टियोपोरोसिस रोग का प्रमुख कारण मानते हैं।

(6) दवाईयों का अधिक सेवन (more intake of medicines) : अधिक दवाईयों का सेवन करने के कारण अस्थियों में द्रव्यों का घनत्व कम होने लगता है और रोग की संम्भावना बढ जाती है। दवाईयों में विशेष रुप से स्टीरॉइड, एंटीकॉएगुलेंट एवं कीमोथैरेपेटिक ड्रग्स (Steroids, Anticoagulents & Chemotherapetic drugs) का सेवन इस रोग की उत्पत्ति का प्रमुख कारण हैं। इन दवाईयों का सेवन करने से इस रोग की संम्भावना अधिक बढ जाती है।

(7) बार बार चोट लगना (Regular injury or more accidents) : बार बार चोट लगने के कारण भी अस्थियों में द्रव्यों का घनत्व कम होता है जिसके कारण ओस्टियोपोरोसिस रोग की संम्भावना बढ जाती है। बढी उम्र में घुटने अथवा अन्य स्थान पर बार बार चोट लगने से शरीर ओस्टियोपोरोसिस रोग की चपेट में आ जाता है।

(8) अस्थियों से सम्बन्धित रोग (Orthopedic diseases) : अस्थियों एवं जोडों से सम्बन्धित रोगों जैसे जोडों में दर्द व सूजन, गठिया , आथराइटिस तथा स्पोण्डोलाइटिस आदि से ग्रस्त होने का प्रभाव अस्थियों पर पडता है इन रोगों के कारण अथियां धीरे धीरे कमजोर पडने लगती हैं तथा भविष्य में चलकर यही विकृतियां ओस्टियोपोरोसिस रोग उत्पन्न कर देती हैं।

(9) मानसिक तनाव एवं अनिन्द्रा (Mental Tension and Insomia) : मानसिक तनाव, अवसाद एवं अनिन्द्रा ओस्टियोपोरोसिस रोग की उत्पत्ति के प्रमुख कारण हैं। मानसिक तनाव एवं अनिन्द्रा के कारण जहां शरीर की चयापचय दर असन्तुलित हो जाती है तो वहीं अनिन्द्रा की अवस्था में शरीर को भलि भांति विश्राम प्राप्त नही हो पाता है जिसके कारण आगे चलकर ओस्टियोपोरोसिस रोग उत्पन्न होता है।

(10) अनुवांशिकता (Genetic Factor) : पारिवारिक पृष्टभूमि अर्थात अनुवांशिकता इस रोग का एक प्रमुख कारण हो सकता है। परिवार के बडे सदस्यों (पूर्वजों) को यदि पूर्व में यह रोग है तब अगली पीढी में इस रोग के पहुँचने की सम्भावना बढ जाती है। इस रोग का दोष पीढी दर पीढी अनुवांशिक रुप में चलता रहता है।

इस प्रकार उपरोक्त कारणों के प्रभाव से शरीर ओस्टियोपोरोसिस रोग ग्रस्त हो जाता है किन्तु अब यह प्रश्न भी आपके मन में उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है कि हम इस रोग की पहचान कैसे करें ? अथवा इस रोग से ग्रस्त होने पर शरीर में क्या क्या लक्षण प्रकट होते हैं अतः अब हम ओस्टियोपोरोसिस रोग के लक्षणों पर विचार करते हैं –

9.4 ओस्टियोपोरोसिस के लक्षण

जिज्ञासु पाठकों , ओस्टियोपोरोसिस रोग के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि यह रोग अचानक से उत्पन्न नही होता है अपितु यह धीरे धीरे अथवा चुपके चुपके रोगी को अपनी चपेट में इस प्रकार ले लेता है। अर्थ यह है कि इस रोग का कोई बाह्य अथवा प्रारम्भिक लक्षण प्रकट नही होता है। इसी कारण जब रोगी को रोग का ज्ञान होता है तब तक रोग शरीर की अस्थियों में गंभीरतापूर्वक फैल चुका होता है। इसी कारण आधुनिक चिकित्सक कहते हैं कि "Oesteoporosis is a silent Disease" अर्थात ओस्टियोपोरोसिस एक शान्त किन्तु गंभीर रोग है।

ओस्टियोपोरोसिस रोग का एक मात्र एवं महत्वपूर्ण लक्षण चोट लगने पर अस्थियों का चटक जाना है। इस रोग से ग्रस्त रोगी की अस्थियां भंगुर एवं कमजोर हो जाती हैं जिसके कारण उनका लचीलापन एवं मजबूती कम हो जाती है और गिरने, फिसलने अथवा अन्य किसी प्रकार की चोट लगने पर अस्थियों में फ्रैक्चर हो जाता है।

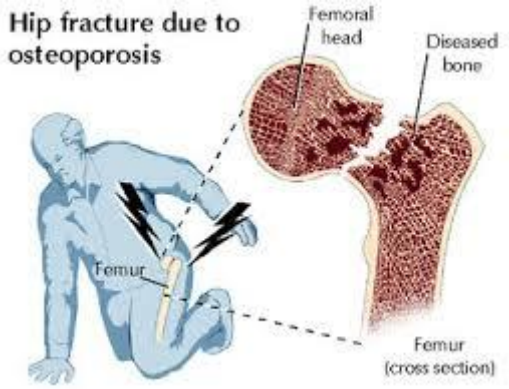

यद्यपि इस रोग का कोई प्रारम्भिक अथवा बाह्य लक्षण प्रकट नही होता है किन्तु रोग का पता करने के लिए आधुनिक चिकित्सा विज्ञान द्वारा बी0 एम0 डी0 (Bone Mineral Density) टेस्ट विकसित किया है जिसके द्वारा अस्थियों के अन्दर उपस्थित द्रव्यों के घनत्व का ज्ञान किया जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने शरीर की अस्थियों में अस्थिद्रव्यों के घनत्व का मानक (Standard Deviation) 2.5 निर्धारित किया है। इस टेस्ट में अस्थिद्रव्यों का घनत्व इस मानक से कम पाया जाना **ओस्टियोपोरोसिस** (Osteoporosis) रोग को प्रर्दशित करता है। इस रोग का अधिक प्रभाव कूल्हे एवं रीढ की अस्थियों (Hip Bone and Spine) पर पडता है, जिससे चोट लगने अथवा गिरने पर इन स्थानों पर अस्थि भंग की संभावना बढ जाती है।

इसके साथ साथ ओस्टियोपोरोसिस रोग से ग्रस्त होने पर शरीर के जोडों में दर्द एवं सूजन उत्पन्न होती है तथा यह दर्द एवं सूजन लम्बे समय तक बनी रहती है। दर्द निवारक दवाईयों का सेवन करने के बाद भी ओस्टियोपोरोसिस रोग से ग्रस्त रोगी को आराम नही मिलता है अपितु शरीर की अस्थियों एवं जोडों में दर्द, सूजन के साथ जकडन

उत्पन्न हो जाती है इनके परिणाम स्वरुप ग्रस्त रोगी के शरीर की आकृति बदलने लगती है।

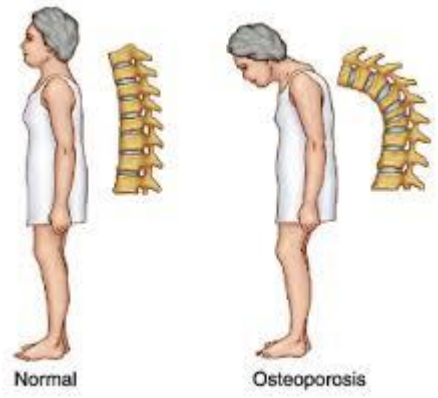

प्रिय पाठकों, उपरोक्त तथ्यों को जानने एवं समझाने के बाद अब आपके मन में निश्चित ही ओस्टियोपोरोसिस रोग की चिकित्सा को जानने की जिज्ञासा अवश्य ही बढ गयी होगी। चूंकि इस रोग में ऐलोपैथिक दवाईयों का सेवन रोगी का स्थाई लाभ प्रदान नही करता है अतः अब ओस्टियोपोरोसिस रोग की वैकल्पिक चिकित्सा पर विचार करते हैं –

9.5 ओस्टियोपोरोसिस की वैकल्पिक चिकित्सा

ओस्टियोपोरोसिस रोग की वैकल्पिक चिकित्सा में योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेद चिकित्सा, एक्यूप्रेशर चिकित्सा एवं आहार चिकित्सा द्वारा रोग के उपचार का वर्णन आता है। इस रोग की वैकल्पिक चिकित्सा इस प्रकार है –

9.5.1 ओस्टियोपोरोसिस रोग की योग चिकित्सा –योग चिकित्सा में यौगिक क्रियाओं के द्वारा रोग का उपचार किया जाता है। यौगिक क्रियाओं में क्रमशः षट्कर्म, आसन, मुद्रा बन्ध, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान एवं समाधि नामक योगांगों के अभ्यास द्वारा रोगी की चिकित्सा की जाती है। ओस्टियोपोरोसिस रोग की योग चिकित्सा इस प्रकार है –

(क) षट्कर्म का प्रभाव : धौति, बस्ति, नेति, नौली, त्राटक एवं कपालभाति नामक षट्कर्मों का अभ्यास कराने से रोगी के शरीर का शोधन होता है। इन शोधन क्रियाओं का अभ्यास कराने से रोगी के शरीर से विषाक्त विजातीय द्रव्यों का निष्कासन होता है, परिणाम स्वरुप रोग की व्रीवता कम होती है अतः रोगी को उसके शरीर की स्थिति एवं क्षमतानुसार षट्कर्मों का अभ्यास कराना चाहिए।

(ख) आसन का प्रभाव : ओस्टियोपोरोसिस रोग के उपचार में आसनों का विशेष महत्व है किन्तु रोग से ग्रस्त रोगी को आसनों का अभ्यास बहुत धीरे धीरे एवं अत्यन्त सावधानीपूर्वक कराना चाहिए। रोग की व्रीव अवस्था में रोगी को कठिन एवं भारी आसनों का अभ्यास नही कराना चाहिए अपितु रोगी को सुक्ष्म अभ्यासों एवं सन्धि संचालन के अभ्यासों से प्रारम्भ कराते हुए धीरे धीरे आसनों का अभ्यास कराना चाहिए।

इस रोग से ग्रस्त हाने पर रोगी को लम्बे समय तक एवं नियमित रुप से प्रातः काल सुक्ष्म अभ्यासों को करना चाहिए। पर्याप्त समय तक सुक्ष्म अभ्यासों एवं सन्धि संचालन के अभ्यासों को करने के उपरान्त रोगी को जोडों को बल प्रदान करने वाले एवं अस्थियों को

मजबूत बनाने वाले आसनों का अभ्यास (Weight bearing endurance excercises) करना चाहिए। इस रोग में आसनों का नियमित अभ्यास कराने से रोग दूर करने में विशेष लाभ मिलता है। आसनों के क्रम में रोगी को नियमित सूर्य नमस्कार का अभ्यास भी कराया जा सकता है किन्तु रोगी को आसनों का प्रारम्भ हल्के सुक्ष्म अभ्यासों से ही करना चाहिए। इस रोग से ग्रस्त रोगी को शरीर संर्वधनात्मक अथवा व्यायामात्मक आसनों का अभ्यास कराना चाहिए। रोगी को ताडासन, तिर्यक ताडसान, त्रिकोणासन, गरुडासन, पदमासन, योगमुद्रासन, वक्रासन, पश्चिमोत्तानासन, उष्ट्रासन, सर्वागासन, मत्स्यासन एवं मरकटासन के अलग अलग प्रकारों का अभ्यास रोगी को नियमित रुप से कराने से रोग में लाभ मिलता है। इन आसनों के साथ साथ प्रत्येक आसन में शवासन एवं योग निन्द्रा का अभ्यास कराने से भी रोग में लाभ प्राप्त होता है।

(ग) मुद्रा एवं बन्ध का प्रभाव : ओस्टियोपोरोसिस रोगी के शरीर को स्थिर एवं ऊर्जावान बनाने हेतु मुद्राओं का अभ्यास कराना चाहिए। मुद्राओं के साथ साथ बन्धों का अभ्यास कराने से रोगी के शरीर की मांसपेशियां मजबूत बनती हैं। जिससे रोग दूर होता है। इसके साथ साथ मुद्रा और बन्ध का अभ्यास शरीर की कोशिकाओं में प्राण तत्व का विस्तार करता है जिससे शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता का विस्तार होता है तथा रोग दूर करने में सहायता मिलती है।

(घ) प्रत्याहार का प्रभाव : प्रत्याहार का अर्थ इन्द्रियों पर संयम से होता है। ओस्टियोपोरोसिस रोगी को स्वस्थ बनानें में प्रत्याहार पालन अर्थात इन्द्रिय संयम का विशेष महत्व है। प्रत्याहार के द्वारा रोगी के आहार पर नियंत्रण एवं रोगी को निश्चित दिनचर्या के साथ जोडने से यह रोग दूर होता है। प्रत्याहार पालन के अर्न्तगत रोगी अपनी इन्द्रियों पर संयम करते हुए रोग के मूल कारणों जैसे चाय, कॉफी, नमक, तम्बाकू एवं गुटका सेवन आदि बुरी आदतों पर नियंत्रण करता है जिससे रोग समूल नष्ट होता है।

(ड) प्राणायाम का प्रभाव : इस रोग को दूर करने में प्राण ऊर्जा का विशेष महत्व है जिसे प्राणायाम के अभ्यास से प्राप्त किया जा सकता है। रोगी को नाडी शोधन, अनुलोम विलोम, कपालभाति एवं भ्रामरी प्राणायामों का अभ्यास कराने से रोगी की अस्थियों में शुद्ध प्राणवायु का विस्तार होता है जिससे अस्थियां मजबूत होती हैं एवं रोग दूर होता है।

(च) ध्यान एवं समाधि का प्रभाव : जैसा कि रोग के कारणों में स्पष्ट किया गया है कि ओस्टियोपोरोसिस रोग की उत्पत्ति में हार्मोन्स के असन्तुलन एक प्रमुख कारण है। ध्यान एवं समाधि का अभ्यास हार्मोन्स के असन्तुलन को दूर करता है जिससे रोग ठीक होता है। समाधि के रुप में रोगी सकारात्मक भावों का चिन्तन करता हुआ दृढ इच्छाशक्ति एवं शुभ संकल्पों को धारण करता है जिससे यह रोग समूल नष्ट होता है।

प्रिय पाठकों, इस प्रकार योग चिकित्सा के अर्न्तगत रोगी की स्थिति, अवस्था एवं क्षमतानुसार यौगिक क्रियाओं के अभ्यास द्वारा रोग को दूर करते हैं। इसके साथ साथ ओस्टियोपोरोसिस रोगी को वैकल्पिक चिकित्सा के अर्न्तगत प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा उपचार देकर भी ठीक किया जा सकता है। ओस्टियोपोरोसिस रोग को निम्न प्राकृतिक चिकित्सा देने से लाभ मिलता है –

9.5.2 ओस्टियोपोरोसिस रोग की प्राकृतिक चिकित्सा –प्राकृतिक चिकित्सा में पंचमहाभूतों अर्थात मिट्टी, जल, अग्नि, वायु और आकाश द्वारा रोग का उपचार किया जाता है। इन महाभूतों का प्रयोग करते हुए शरीर में पंच तत्वों का समयोग बनाने से यह रोग दूर होता है। ओस्टियोपोरोसिस रोग की प्राकृतिक चिकित्सा इस प्रकार है –

(क) मिट्टी तत्व चिकित्सा : रोगी को पेट के साथ साथ रीढ, कमर, पैर एवं घुटनों पर मिट्टी की पट्टी देते हैं। इस रोग में गर्म मिट्टी की पट्टी का प्रयोग अधिक लाभकारी एवं प्रभावी सिद्ध होता है। विधिपूर्वक गीली मिट्टी को गर्म करते हुए पट्टी बनाकर प्रभावित अंग अथवा जोड पर देने से रोगी को दर्द, सूजन एवं जकडन में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

(ख) जल तत्व चिकित्सा : ओस्टियोपोरोसिस रोग की प्राकृतिक चिकित्सा में जल तत्व चिकित्सा का प्रयोग बहुत प्रभावकारी सिद्ध होता है। जल तत्व चिकित्सा में एनीमा क्रिया तथा विभिन्न प्रकार के स्नानों से रोग में लाभ मिलता है। रोगी की शरीर शुद्धि एवं वात दोष को सम बनाने हेतु एक निश्चित अवधि तक अथवा जब तक आवश्यक्ता अनुभव हो, तब तक लगातार एनीमा क्रिया करानी चाहिए।

इस रोग में गर्म–ठण्डा पैर स्नान (Hot and Cold Foot Bath) देने से रोग में शीघ्र एवं स्थाई लाभ प्राप्त होता है। रोगी को समय समय पर गर्म–ठण्डा रीढ स्नान एवं कटि स्नान भी देना चाहिए। इसके साथ साथ भाप स्नान भी इस रोग में लाभकारी है। रोगी को रीढ एवं पैर अथवा प्रभावित जोडों पर नियमित रुप से स्थानीय भाप देने से भी रोग में लाभ प्राप्त होता है।

(ग) अग्नि तत्व चिकित्सा : ओस्टियोपोरोसिस रोग का मूल कारण शरीर में विटामिन डी की कमी होती है अतः रोगी को सूर्य स्नान देने से रोग में लाभ मिलता है। इसके साथ साथ नारंगी रंग की बोतल में आवेशित जल का सेवन रोगी को कराने एवं लाल अथवा नारंगी रंग के प्रकाश अस्थियों पर डालने से रोग ठीक होता है।

(घ) वायु तत्व चिकित्सा : ओस्टियोपोरोसिस रोग को दूर करने में वायु तत्व चिकित्सा अर्थात मालिश से विशेष लाभ मिलता है। विभिन्न औषधीय गुणों से युक्त तेलों के द्वारा विधिपूर्वक वैज्ञानिक ढंग से मालिश करने से अस्थियों में रक्त संचार व्रीव होता है, अस्थियां मजबूत एवं लचीली बनती हैं एवं जोड स्वस्थ बनते हैं, इसके परिणाम स्वरुप अस्थियों में फैक्चर की संभावना कम होती है।

(ड) आकाश तत्व चिकित्सा : ओस्टियोपोरोसिस रोगी को दीर्घ उपवास नही कराने चाहिए किन्तु रोगी को छोटे उपवास अथवा कल्प कराने से लाभ मिलता है। इसके साथ साथ आकाश तत्व के दूसरे अंग प्रार्थना से रोगी को लाभ मिलता है।

इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा ओस्टियोपोरोसिस रोगी को स्थाई एवं दुष्प्रभाव रहित लाभ प्राप्त होता है। अब वैकल्पिक चिकित्सा के अगले अंग अर्थात आयुर्वेद चिकित्सा पर विचार करते हैं।

9.5.3 ओस्टियोपोरोसिस रोग की आयुर्वेद चिकित्सा – आयुर्वेद शास्त्र में ओस्टियोपोरोसिस रोग के समान संधिवात नामक रोग के उपचार हेतु निम्न औषध सेवन का वर्णन किया गया है –

व्याधिहरण 1 रत्ती, अश्वगन्धा नागोरी 1.5 ग्राम, चोप चिन्यादि चूर्ण 1.5 ग्राम एवं शुद्ध कुचला 0.5 रत्ती। ऐसी एक मात्रा प्रातः और सांय दो समय शहद के याथ रोगी को चटाए एवं ऊपर से 250 ग्राम गर्म दूध में 15 ग्राम ब्राह्मी–घृत मिलाकर रोगी को पीलाये।

भोजन करने के उपरान्त दोनों समय महारास्नादि काढ़ा–15 मि0ली0, दशमूल–15 मिली0, बलारिष्ट–15 मि0ली0 और कटेली पंचाग –15 मि0ली0 60 मि0ली0 पानी के साथ और 01 ग्राम त्रियोदशांश गुग्गुल मिलाकर रोगी को पीलाने से रोग ठीक होता है।

इसके साथ साथ अस्थि भंग (Bone Fracture) होने पर निम्न घरेलू प्रयोगों से भी लाभ मिलता है –

- इमली के फलों में नमक पीसकर भग्न स्थान पर लेप करने से चोट से उत्पन्न पीडा, लाली और सूजन तत्काल दूर हो जाती है और हड्डी जुड जाती है।
- चावलों के आटे में नमक मिलाकर लेप करने से टूटी हुई हड्डी जुड जाती है।
- चमेली की जड़ पीसकर उसमे शहद मिलाकर चोट की जगह लेप करने से टूटी हुई हड्डी जुड जाती है।
- भुना हुआ सुहागा पीसकर लगाने से टूटी हड्डी में लाभ होता है।
- लहसुन, शहद, पीपर की लाख, घी और मिश्री डेढ डेढ माशे सम मात्रा में लेकर पीस लें, इसको छह या आठ माशे की मात्रा में लेने से टूटी हुई हड्डी जुड जाती है।

जिज्ञासु पाठकों, यहां पर ओस्टियोपोरोसिस रोग की वैकल्पिक चिकित्सा को समझाया जा रहा है। वैकल्पिक चिकित्सा में एक्यूप्रेशर चिकित्सा का अपना विशिष्ट स्थान है और इस रोग के उपचार में एक्यूप्रेशर चिकित्सा एक लाभकारी प्रभाव रखती है अतः अब ओस्टियोपोरोसिस रोगी की एक्यूप्रेशर चिकित्सा पर विचार करते हैं –

9.5.4 ओस्टियोपोरोसिस रोग की एक्यूप्रेशर चिकित्सा

ओस्टियोपोरोसिस रोगी के घुटनों, रीढ एवं हाथों व पैरों में स्थित दाब बिदुओं पर विधिपूर्वक दबाव डालते हैं। –

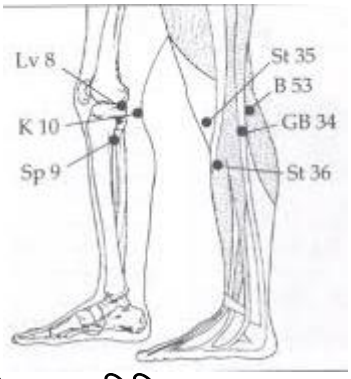

9.5.5 ओस्टियोपोरोसिस रोग की आहार चिकित्सा

ओस्टियोपोरोसिस रोग में आहार चिकित्सा का अपना विशेष महत्व है। रोगी पुरुष के आहार पर नियंत्रण करने से रोग अत्यन्त आसानी से ठीक हो जाता है। आहार चिकित्सा के अर्न्तगत सर्वप्रथम ओस्टियोपोरोसिस रोगी को प्रतिदिन एक ग्राम कैल्शियम तथा 400 IU विटामिन डी का सेवन प्रतिदिन अनिवार्य रुप से कराना चाहिए। इसके साथ साथ रोगी को विटामिन के का सेवन भी कराना चाहिए। रोगी के लिए पथ्य और अपथ्य आहार इस प्रकार है–

(क) पथ्य आहार – दूध, दही, मठ्ठा, मख्खन, पनीर, अखरोट, बादाम, चना, चौकरयुक्त आटा, सन्तरा, मौसमी, हरी पत्तेदार सब्जियां एवं मौसमी फल एवं पोषक तत्वों से युक्त पौष्टिक आहार।

(ख) अपथ्य आहार – नमक, चीनी, चाय, कॉफी, सोफ्ट कोल्ड डिंक्स जैसे पैप्सी व कोक, एल्कोहल, फास्ट फूड, चायनीज फूड, जंक फूड, बासी, रुखा एवं पोषक तत्व विहीन भोजन।

इस प्रकार उपरोक्त पथ्य एवं अपथ्य आहार के अनुसार रोगी को आहार कराने से रोग में अत्यन्त सरलता, सहजता एवं शीघ्रतापूर्वक लाभ प्राप्त होता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

1– **सत्य /असत्य**

(क) अस्थियों के अन्दर के द्रव्यों का घनत्व बढ जाना ओस्टियोपोरोसिस रोग का लक्षण है।

(ख) ओस्टियोपोरोसिस रोग की उत्पत्ति में हार्मोन्स का असन्तुलन एक प्रमुख कारण है। ।

(ग) ओस्टियोपोरोसिस रोगी को गर्म–ठण्डा पैर स्नान नही देना चाहिए।

(घ) ओस्टियोपोरोसिस रोगी को प्रतिदिन एक ग्राम कैल्शियम तथा 400 IU विटामिन डी का सेवन प्रतिदिन अनिवार्य रुप से कराना चाहिए।

(ड) ओस्टियोपोरोसिस रोगी को शरीर मजबूत बनाने वाले आसनों जैसे सूर्य नमस्कार का अभ्यास कराना चाहिए।

2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) विश्व स्वास्थ्य संगठन ने शरीर की अस्थियों में अस्थिद्रव्यों के घनत्व का मानक ——— निर्धारित किया है।

(ख) ओस्टियोपोरोसिस रोगी को ——— तथा ———विटामिन डी युक्त आहार का सेवन अनिवार्य रुप से कराना चाहिए।

(ग) आधुनिक चिकित्सकों के अनुसार ओस्टियोपोरोसिस एक ——— किन्तु ——— रोग है।

(घ) ओस्टियोपोरोसिस रोगी को ——— रंग की बोतल में आवेशित जल का सेवन कराना चाहिए।

(ड) ध्यान एवं समाधि का अभ्यास शरीर में ——— असन्तुलन को दूर करता है।

3–बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) ओस्टियोपोरोसिस रोग के लिए जिम्मेदार होते हैं –

(a) जैविक कारक (b) प्रर्यावरणीय कारक

(c) दोनों (d) इनमें से कोई नही।

(ख) ओस्टियोपोरोसिस रोग का प्रमुख लक्षण है –

(a) चोट लगने पर अस्थियों का चटक जाना।

(b) कमर दर्द।

(c) सिर दर्द।

(d) सभी।

(ग) ओस्टियोपोरोसिस रोग का कारण है –

(a) बढती आयु अथवा वृद्धावस्था (b) बार बार चोट लगना।

(c) अनुवांशिकता (d) सभी।

(घ) ओस्टियोपोरोसिस रोगी के लिए पथ्य आहार नही है –

(a) दूध (b) अखरोट

(c) नमक (d) सन्तरा ।

(ड) ओस्टियोपोरोसिस रोग की जांच हेतु आधुनिक चिकित्सा विज्ञान द्वारा कौन सा टेस्ट विकसित किया गया है –

(a) बी0 एम0 डी0 (Bone Mineral Density) टेस्ट

(b) बी0 एम0 पी0 (Bone Mineral Potency) टेस्ट

(c) बी0 एम0 आर0 (Basal Metabolic Rate) टेस्ट

(d) बायोप्सी (Biopsy) टेस्ट।

9.6 सारांश–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई में ओस्टियोपोरोसिस रोग के कारण, लक्षण एवं वैकल्पिक चिकित्सा को समझाया गया है। इकाई में पहले रोग के प्रमुख कारणों को पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट किया गया है कि कुछ जैविक एवं कुछ प्रर्यावरणीय कारक (Biological or Genetic and Environmental Factors) मिलकर इस रोग को उत्पन्न करते है। इन कारकों के कारण शरीर की अस्थियों में द्रव्यों का घनत्व कम होने लगता है और अस्थियों मे भंगुरता उत्पन्न हो जाती है। जिसके कारण चोट लगने अथवा गिरने–फिसलने पर अस्थि भंग (Bone fracture) हो जाता है। इस रोग का कोई बाहरी लक्षण प्रकट नही होता है अपितु किसी सामान्य सी चोट लगने अथवा गिरने–फिसलने पर अस्थि भंग होना ही इस रोग का एक मात्र एवं प्रमुख लक्षण है। बाहरी लक्षण प्रकट नही करने के कारण चिकित्सक इस रोग को शान्त किन्तु गंभीर रोग का विशेषण प्रदान हैं।

इकाई में आगे रोग की वैकल्पिक चिकित्सा को समझाया गया है। चूंकि दवाईयों के सेवन से रोग में कोई विशेष लाभ प्राप्त नही होता है अपितु रोग और बढता जाता है अतः रोग की वैकल्पिक चिकित्सा पर विशेष बल दिया जाता है। ओस्टियोपोरोसिस रोग की वैकल्पिक चिकित्सा के अर्न्तगत योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेद चिकित्सा, एक्यूप्रेशर चिकित्सा एवं आहार चिकित्सा अर्थात पथ्य और अपथ्य का वर्णन किया गया है।

9.7 पारिभाषिक शब्दावली–

जैविक कारक	पीढी दर पीढी अनुवांशिक रुप में चलने वाले कारक
प्रर्यावरणीय कारक	आस पास के वातावरण के प्रभाव से उत्पन्न कारक
भग्न	हड्डी बीच से टूट जाना अथवा चटक जाना
संधिवात	जोड़ों के बीच में सूजन, दर्द एवं वात कुपित होना
मानक	एक आर्दश स्थिति
विजातीय द्रव्य	शरीर में स्थित हानिकारक पदार्थ

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.	असत्य	क. 2.5	क. c
ख.	सत्य	ख. कैल्शियम, विडामिन डी	ख. a
ग.	असत्य	ग. शान्त, गंभीर	ग. d
घ.	सत्य	घ. नारंगी	घ. c
ड.	सत्य	ड. हार्मोन्स	ड. a

9.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कल्याण आरोग्य अंक – गीता प्रेस गोरखपुर।
2. असाध्य रोगों की सरल चिकित्सा – डॉ0 नागेन्द्र कुमार नीरज, पापुलर बुक डिपो, जयपुर।
3. योग चिकित्सा विज्ञान – श्री आदित्य योगी, योग जीवन धाम ट्रस्ट, हरिद्वार।
4. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डॉ0 राकेश जिन्दल, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मोदी नगर (उ0प्र0)।
5. प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ0 टी0 एन0 श्रीवास्तव, मैत्रेयी प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. वृहद आयुर्वेदिक चिकित्सा – डॉ0 ओम प्रकाश सक्सेना, हिन्दी सेवा सदन, मथुरा।
7. एक्यूप्रेशर – डा0 अतर सिंह, एक्यूप्रेशर हैल्थ सेटंर, चण्डीगढ।

9.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1 मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान– प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता, सुमित प्रकाशन, आगरा।

2 स्वस्थ वृत्त विज्ञान – डॉ0 रामहर्ष सिंह, चौखम्बा प्रकाशन बनारस।

3. वैकल्पिक चिकित्सा – डा0 राजकुमार प्रुथी, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली।

4. वैकल्पिक चिकित्सा – डा0 आर0 एस0 विवेक , डायमण्ड पाकेट बुक्स, नई दिल्ली।

9.11 निबन्धात्मक प्रश्न–

1. ओस्टियोपोरोसिस रोग के कारणों एवं लक्षणों पर प्रकाश डालिए।
2. ओस्टियोपोरोसिस रोग की वैकल्पिक चिकित्सा को सविस्तार लिखिए।

इकाई 10 सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस कारण, लक्षण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस के कारण
10.4 सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस के लक्षण
10.5 सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस की वैकल्पिक चिकित्सा
10.5.1 सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस की योग चिकित्सा
10.5.2 सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस की प्राकृतिक चिकित्सा
10.5.3 सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस की आयुर्वेद चिकित्सा
10.5.4 सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस की एक्यूप्रेशर चिकित्सा
10.5.5 सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस की आहार चिकित्सा
10.6 सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी के लिए सावधानियां एवं सुझाव
10.7 सारांश
10.8 पारिभाषिक शब्दावली
10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
10.11 सहायक पाठ्य सामग्री
10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, आपने पूर्व की इकाई में आपने ओस्टियोपोरोसिस रोग के विषय में ज्ञान प्राप्त किया । जिस प्रकार ओस्टियोपोरोसिस अस्थि संस्थान से जुडी व्याधि है उसी प्रकार सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस भी अस्थि संस्थान से जुडा रोग है। सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रीढ की अपकर्षक (Degenerative) बिमारी है जिसमें रोगी को गर्दन में ग्रीव अथवा असहनीय दर्द होता है। सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस और ओस्टियोपोरोसिस रोग ने आधुनिक विकसित समाज में बहुत तेजी और गहराई से अपनी जडें जमाई हैं। वर्तमान समय में अनियमित दिनचर्या, भोग विलासितापूर्ण जीवनशैली, गलत शारीरिक मुद्राओं में कार्य करना, टी0 वी0, कम्पयूटर व मोबाईल फोन आदि का अधिक समय तक प्रयोग करने एवं यौगिक क्रियाओं को नही करने के कारण ही इस प्रकार के रोगों में तेजी से वृद्धि हुई है।

वर्तमान समय में गर्दन का दर्द एक आम रोग बनता जा रहा है। आज 15 वर्ष की आयु के बच्चों से लेकर व्यस्क एवं वृद्ध तक हर उम्र के स्त्री एवं पुरुषों में यह रोग दिखलाई पड रहा है। इस रोग से ग्रस्त अनेक रोगी दिन प्रतिदिन हमें गले पर कॉलर अथवा पट्टा बांधे दिखलाई पडते हैं। प्रारम्भ में सामान्य सा प्रतीक होने वाला गर्दन दर्द आगे चलकर कन्धों से हाथों तक में फैलकर हाथों एवं अंगुलियों तक में सुन्नपन पैदा कर देता है। यहीं से ही सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस और स्लिप डिस्क जैसे रोग उत्पन्न होते हैं। सर्वाइकल स्पोण्डोलाइटिस रोग से ग्रस्त रोगी की गर्दन में बहुत तेज दर्द होता है जिससे

छुटकारा प्राप्त करने के लिए विभिन्न दर्द निवारक दवाईयों (पैनकीलर) का सेवन अवश्य करता है किन्तु इस रोग में दर्द निवारक दवाईयों का प्रयोग प्रभावहीन सिद्ध होता है तथा रोग और अधिक गंभीर हो जाता है। इस रोग में रोगी को विभिन्न वैकल्पिक चिकित्सा जैसे योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेद चिकित्सा, एक्यूप्रेशर चिकित्सा एवं आहार चिकित्सा ही दुष्प्रभावरहित एवं स्थाई लाभ प्रदान करती है।

इस प्रकार इन तथ्यों को जानने के बाद एवं वर्तमान समय में सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगियों की बढती संख्या को देखते हुए आपके मन में यह प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक ही है कि यह रोग क्यों उत्पन्न होता है अर्थात इस रोग की उत्पत्ति के क्या कारण हैं ? इस रोग के शरीर में क्या क्या लक्षण है ? और इस सबसे महत्वपूर्ण तथ्य कि इस रोग की चिकित्सा क्या क्या हो सकती है ? साथ ही साथ रोग से बचने की सावधानियां भी विचारणीय प्रश्न हैं। प्रस्तुत इकाई में इन्ही प्रश्नों पर सविस्तार विचार किया गया है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग का सामान्य परिचय प्राप्त करोगें।
- सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग के कारणों को जान सकेगें।
- सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग के लक्षणों को वर्णित करने में सक्षम हो सकेंगे।
- सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग की वैकल्पिक चिकित्सा को जान सकेगें।
- सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग से बचने की सावधानियों का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

10.3 सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस के कारण

प्रिय विधार्थियों, हमारी रीढ का निर्माण छोटी छोटी विशेष आकार एवं संरचना की अस्थियों जिन्हे कशेरुका (Vertebra) कहा जाता है, के मिलने से होता है। इन कशेरुकाओं की कुल संख्या 26 होती है। इनमें से ऊपर की (सिर की और की) प्रथम सात कशेरुकाओं को सर्वाइकल की संज्ञा दी जाती हैं। जिन्हे अग्रेंजी भाषा के अक्षर सी–1 से लेकर सी–7 तक से प्रर्दशित किया जाता है। रीढ की इन सी–1 से लेकर सी–7 तक की कशेरुकाओं के मूल स्थान, आकृति अथवा संरचना में विकृति ही **सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस (Cervical)** नामक रोग के नाम से जाना जाता हैं।

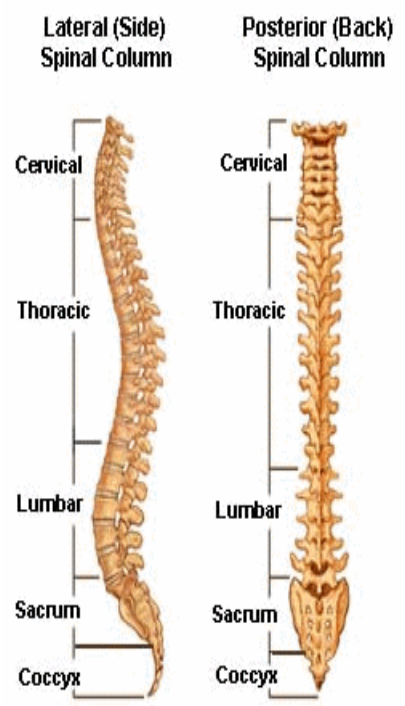

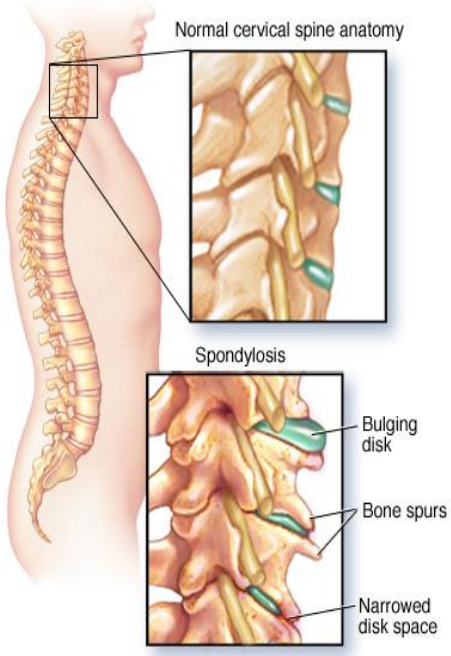

मानव रीढ की संरचना एवं सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग

शरीर की गलत मुद्रा अपनाकर कार्य करने से रीढ की उपरोक्त कशेरुकाओं पर नकारात्मक प्रभाव पडता है तथा यह रोग उत्पन्न होता है। इसी प्रकार लम्बे समय तक झुककर बैठने से भी यह रोग उत्प्पन्न होता है। टेढे–मेढे होकर सोने, अधिक गहरे व लचीले गद्दों पर सोने एवं सोते समय मोटे तकिये को सिराहने के रुप में प्रयोग करने की आदत भी इस रोग को जन्म देती है। सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग के कुछ प्रमुख एवं महत्वपूर्ण कारण इस प्रकार है–

(1) सोने में मोटा तकिया अथवा अधिक मोटे फोम के गद्दों का प्रयोग करना (Older Age) : बिना तकिया के प्रयोग किए हुए सीधे तक्त पर सोने से रीढ एवं मस्तिष्क से निकलने वाली तंत्रिकाएं अपनी सही स्थिति में रहती हैं किन्तु इसके विपरित सोने में अधिक मोटे तकिया का प्रयोग करने तथा मोटे, गहरे फोम अथवा डनलफ के गद्दों का प्रयोग करने से रीढ की कशेरुकाओं की स्थिति पर नकारात्मक प्रभाव पडता है, इसके साथ साथ मस्तिष्क से निकलने वाली तंत्रिकाएं पर भी कशेरुकाओं का अतिरिक्त दबाव पडने लगता है। इससे प्रारम्भ में गर्दन दर्द एवं सिर दर्द प्रारम्भ होता है जो आगे चलकर रोग का रुप ग्रहण कर लेता है।

(2) गलत शारीरिक मुद्राएं (Wrong body Postuer) : प्रिय पाठकों, मानव शरीर ईश्वर की एक ऐसी अद्भुत कृति है जो आज भी वैज्ञानिकों की समझ से परे है। इसके अतिरिक्त संसार के अन्य प्राणियों से भिन्न दो पैरों पर खडे होकर चलने एवं कार्य करने की विलक्षण प्रतिभा भी परमात्मा ने मनुष्य को ही प्रदान की है। वैज्ञानिक अथक प्रयासों के बाद भी आज तक मानव शरीर के जैसा नमूना नही बना पाएं हैं। इस शरीर को सही प्रकार प्रयोग करने अर्थात इसके द्वारा कार्य करने से यह लम्बे समय तक कार्य करने

में सक्ष्म बना रहता है किन्तु इस शरीर को गलत मुद्रा में रखकर कार्य करने से इसमें विकार अर्थात रोग उत्पन्न होने लगते है। सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग की उत्पत्ति में भी शरीर की गलत मुद्राएं एक महत्वपूर्ण कारण हैं।

झुककर बैठने, झुककर खडा रहने, कमर झुकाकर पढने, टी0वी0 देखने अथवा कम्पयूटर आदि पर कार्य करने से एवं कन्धें के सहारे मोबाईल फोन रखकर लम्बे समय तक बात करने के कारण सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग रोग उत्पन्न होता है। गलत मुद्रा में सिर पर अधिक वजन उठाकर चलने अथवा एक हाथ से अधिक वजन उठाने का रीढ की कशेरुकाओं पर दुष्प्रभाव पडता है और इस रोग की संभावना बढ जाती है। प्रतिदिन काफी अधिक समय तक लेटकर टी0बी0 देखने अथवा पत्र–पत्रिकाओं को पढने से भी जन्म लेता है। इस प्रकार शरीर की गलत मुद्राएं इस रोग की उत्पत्ति के महत्वपूर्ण कारण हैं।

(3) अनियमित दिनचर्या (Inactive or Sedentory life style) : रात्रि में देर तक जागना, सुबह देरी तक सोने की अनियमित दिनचर्या से शरीर की अस्थियों (रीढ की कशेरुकाओं) में कडापन आता है। इसके अतिरिक्त असमय पर पोषक तत्वों से विहीन आहार करने से भी रीढ एवं शरीर की तंत्रिकाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है जिससे इस रोग के उत्पन्न होने की संभावना बढती है। दिनचर्या में श्रम का पूर्ण अभाव अथवा एक स्थान पर अधिक समय तक एक मुद्रा में बैठकर कार्य करने से भी इस रोग की संम्भावना बढ जाती है।

(4) अत्यधिक श्रम एवं विश्राम का अभाव (More hard work without taking rest) : अत्यधिक शारीरिक श्रम करने से रीढ की कशेरुकाओं में कडापन बढता है तथा बीच में विश्राम नही करने के कारण रीढ के आकार में विकृति उत्पन्न होने लगती है जो आगे चलकर सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग को जन्म देता है।

(5) रीढ में झटका अथवा चोट लगना (Jerk or injury of spine) : चलते समय ठोकर लगने के कारण अथवा गाडी में सफर करते समय रीढ में अचानक झटका लगने के कारण भी यह रोग उत्पन्न होता है। किसी कार्य करते समय बार बार रीढ में चोट लगने के कारण भी सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग पैदा होता है।

(6) काम का अधिक बोझ एवं तनाव (Work load and Stress) : काम का अधिक बोझ एवं तनाव इस रोग की उत्पत्ति के महत्वपूर्ण कारण हैं। अधिक काम का बोझ, अधिक समय तक की लम्बी ड्राईविंग से यह रोग जन्म लेता है। इसके अतिक्ति मानसिक तनाव से भी यह रोग बढता है।

(7) दुर्व्यसन (bad habbits) : धूम्रपान करने की आदत अथवा एल्कोहल सेवन करने से अस्थियों पर नकारात्मक प्रभाव पडता है, जिसके कारण इस रोग की संम्भावना बढ जाती है। अधिक समय तक धूम्रपान हड्डियों को कमजोर बनाता है जिसके कारण कमर दर्द एवं सर्वाइकल दर्द की संभावना बढ जाती है। इसी प्रकार तम्बाकू, गुटका, पान मसाले के सेवन से भी यह रोग उत्पन्न होता है।

(8) बढती उम्र (Age Factor) : प्रिय पाठकों, मानव शरीर एक प्रकार का उपकरण ही है जिस पर समय का प्रभाव पडना स्वाभाविक ही है। जिस प्रकार लगातार कार्य करते रहने से पुराना होकर उपकरण कमजोर हो जाता है, ठीक उसी प्रकार लगातार कार्य करते रहने के कारण इस शरीर रुपी उपकरण में भी विकृतियां उत्पन्न होती हैं। इन विकृतियों में ही एक विकृति सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग है जिसमें रीढ की अस्थियों के

जोडों के मध्य उपस्थित गद्दियां घिस जाती हैं और गर्दन में ऐठन व दर्द उत्पन्न होने लगता है इसीलिए 40 वर्ष की आयु के उपरान्त इस रोग की संभावना बढ जाती है।

(9) यौगिक क्रिया नही करने के कारण (No Practice of Yoga) : यौगिक क्रियाएं जैसे षट्कर्म, आसन, मुद्रा–बंध, प्राणायाम एवं ध्यान आदि नही करने के कारण शरीर में एक और जहां वात, पित्त एवं कफ दोंषों की विषमता बढती है वहीं दूसरी और शरीर की अस्थियों अर्थात रीढ की कशेरुकाओं में भी कडापन आता है। इसके साथ साथ रीढ की कशेरुकाओं की चाल (Movement) कम होता है। रीढ की इन कशेरुकाओं में लचीलापन के स्थान पर कडापन होने एवं चाल कम के कारण सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग उत्पन्न होता है।

(10) अनुवांशिक एवं जन्मजात कारण (Genetic or Heritable Factor) : परिवार के अन्य सदस्यों के सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग से ग्रस्त होने पर आगे की पीढी में भी रोग की संभावना अधिक हो जाती है। इसके साथ साथ जन्मजात कारक अथवा सिण्ड्रोम (Down Syndrome, Cerebral palsy, Congenital fused spine) भी सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग को उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इस प्रकार उपरोक्त दस महत्वपूर्ण कारणों में से किसी एक अथवा अधिक के कारण शरीर सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग से ग्रस्त हो जाता है किन्तु अब यह प्रश्न आता है कि यह कैसे पहचाना जाए कि यह व्यक्ति सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग से ग्रस्त है ? अथवा दूसरे शब्दों में इस रोग से ग्रस्त होने पर शरीर में क्या क्या लक्षण प्रकट होते हैं ? अतः अब हम सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग के लक्षणों एवं आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में होने वाली जाँचों (Diagnosis) पर विचार करते हैं –

10.4 सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग के लक्षण

जिज्ञासु पाठकों, शोध अनुसन्धान में यह तथ्य स्पष्ट होता है कि सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग से ग्रस्त रोगियों की संख्या महिलाओं की तुलना में पुरुषों में अधिक होती है अर्थात यह रोग महिलाओं की तुलना में पुरुषों में अधिक पाया जाता है जिसके शरीर में निम्न लिखित लक्षण प्रकट होते हैं –

(1) गर्दन में ग्रीव वेदना एवं जकडन के साथ गर्दन का जाम हो जाना : गर्दन में ग्रीव वेदना एवं जकडन के साथ गर्दन का जाम होना इस रोग का वह मूल लक्षण है जिसके आधार पर इस रोग जाना एवं पहचाना जाता है। रोग से ग्रस्त रोगी की गर्दन में ऐसी ग्रीव वेदना होती है जिस पर दर्दनिवारक दवाईयों का प्रयोग प्रभावहीन सिद्ध होता है। इसके साथ साथ गर्दन में जकडन गंभीर रुप धारण करने लगती है जिस कारण गर्दन का दायें और बांए घूमना बंद सा हो जाता है। रोगी व्यक्ति गर्दन को पूर्ण रुप से सीधी रखने पर ही कुछ आराम की अनुभूति करता है और इसीलिए वह अपनी गर्दन को असामान्य रुप से सीधी अवस्था में रखने का प्रयास करता है। सोने के उपरान्त रोगी के गर्दन में जकडन और अधिक बढ जाती है।

(2) इन्द्रिय बोध कम होना : सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग मस्तिष्क से आने वाली तन्त्रिकाओं पर दबाव आ जाता है जिसके कारण रोगी को इन्द्रिय ज्ञान अथवा इन्द्रिय ज्ञान कम हो जाता है। इसके साथ साथ तंत्रिकाओं में कमजोरी तथा सनसनी होना भी इस रोग के लक्षण हैं। इस रोग से ग्रस्त रोगी को हाथ से लिखनें में भी कठिनाई का अनुभव होने लगता है।

(3) कन्धों में दर्द और जकडन के साथ हाथों व अंगुलियों में सुन्नपन होना : बिना कोई चोट लगे कन्धों एवं हाथों में दर्द एवं भारीपन होना सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग के लक्षण हैं। इस रोग में कन्धों में दर्द एवं जकडन हाथों की और बढने लगती है। यदि रोगावस्था लम्बे समय तक बनी रहें तो हाथों में जकडन बढती हुई की अंगुलियों में सुन्नपन आने लगता है।

(4) कमर दर्द के साथ आगे को झुकने में ग्रीव दर्द होना : सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को कमर में दर्द रहता है और आगे की और झुकने में यह दर्द बढने लगता है। आगे की और झुककर कार्य करने अथवा गलत मुद्रा में कार्य करने यह दर्द और अधिक ग्रीव और असहनीय हो जाता है।

(5) आंखों के सामने अंधेरा छाते हुए चक्कर आना एवं सिर दर्द रहना : चूंकि इस रोग में मस्तिष्क से आने वाली नाडी पर दबाव आ जाता है जिसके कारण रोगी की आंखों के सामने अंधेरा छाने लगता है और रोगी को चक्कर आने लगते हैं। इस रोग में रोगी के सिर में दर्द रहना प्रारम्भ हो जाता है

(6) गर्दन दर्द के कारण अनिन्द्रा उत्पन्न होना : सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को प्रतिक्षण गर्दन में ग्रीव वेदना रहती है जिसके कारण अनिन्द्रा रोग उत्पन्न हो जाता है। गर्दन दर्द के कारण रोग से पिडित व्यक्ति शारीरिक श्रम करने में असमर्थ हो जाता है तथा अधिक समय तक बिस्तर में लेटे रहने से उसे बैचेनी और अनिन्द्रा दोनों ही मानसिक व्याधियां घेर लेती हैं।

प्रिय पाठकों, यद्यपि उपरोक्त लक्षणों के आधार पर भी सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग की पहचान की जा सकती है किन्तु आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इस रोग की जॉच निम्न परीक्षणों के आधार पर की जाती है–

(1) गर्दन का X- ray : इसमें गर्दन पर X- ray डाली जाती है जिसके द्वारा गर्दन की

कशेरुकाओं की स्थिति स्पष्ट की जाती है। कशेरुकाओं में उभरे हुए उकसान

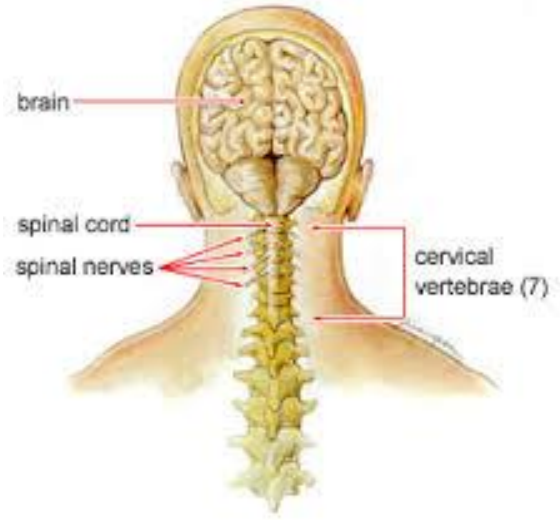

स्पोन्डिलाइटिस रोग को प्रर्दशित करतें हैं।

⑵ **M.R.I. (Magnetic Resonance Imaging):** X- ray की तुलना में M.R.I. के द्वारा रोग की स्थिति अधिक स्पष्ट हो जाती है। इस प्रविधि में कशेरुकाओं की स्थिति एवं तंत्रिकाओं की स्थिति और अधिक स्पष्ट हो जाती है तथा यह भी पता चल जाता है कि नाडियों पर दबाव पड रहा है अथवा नही।

⑶ **E.M.G. (Electromyelography):** E.M.G. के द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है कि तंत्रिकाओं अथवा नाडियों को कितनी हानि पहुॅची है।

⑷ **C.T. Scan:** कम्प्यूटराइज टोमोग्राफी स्केन द्वारा गर्दन की छवि लेकर रोग को स्पष्ट किया जाता है।

प्रिय पाठकों, सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग सें सम्बन्धित उपरोक्त तथ्यों को जानने एवं समझाने के बाद अब आपके मन में निश्चित ही इस रोग की चिकित्सा को जानने की जिज्ञासा अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी। इस रोग में प्रायः रोगी दर्दनिवारक दवाईयों का सेवन करता है किन्तु रोगी के दर्द में इन दवाईयों से कोई प्रभाव नही पडता है अपितु इस रोग में वैकल्पिक चिकित्सा द्वारा रोगी का चिरकालिक अथवा स्थाई लाभ प्राप्त होता है अतः अब सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग की वैकल्पिक चिकित्सा पर विचार करते हैं –

10.5 सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस की वैकल्पिक चिकित्सा

सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग की वैकल्पिक चिकित्सा में योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेद चिकित्सा, एक्यूप्रेशर चिकित्सा एवं आहार चिकित्सा द्वारा रोग के उपचार का वर्णन आता है। इस रोग की वैकल्पिक चिकित्सा इस प्रकार है –

10.5.1 सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग की योग चिकित्सा

सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग में योग चिकित्सा अत्यन्त प्रभावी सिद्ध होती है। इसमें यौगिक क्रियाओं जैसे षट्कर्म, आसन, मुद्रा बन्ध, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान एवं समाधि के द्वारा रोग का उपचार किया जाता है। सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग की योग चिकित्सा इस प्रकार है –

(क) षट्कर्म का प्रभाव : यद्यपि षट्कर्मों की छह क्रियाओं का इस रोग पर प्रत्यक्ष प्रभाव नही पडता है किन्तु धौति, बस्ति, नेति, नौली, त्राटक एवं कपालभाति नामक षट्कर्मों का रोग की स्थिति एवं रोगी की क्षमतानुसार अभ्यास कराने से रोगी के शरीर का शोधन अवश्य होता है। जिसके परिणाम स्वरुप शरीर में हल्कापन आता है और रोग की व्रीवता कम होती है।

(ख) आसन का प्रभाव : सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग अस्थि संस्थान से जुडा रोग है जिसे दूर करने में आसनों का अभ्यास एक महत्वपूर्ण भूमिका का वहन करता है। इस रोग से ग्रस्त रोगी को आसनों का अभ्यास बहुत धीरे धीरे एवं अत्यन्त सावधानीपूर्वक कराना चाहिए। विशेष रुप से रोगावस्था मे गर्दन को आगे की और झुकाने वाले अभ्यासों (Foreward bending) को पूर्णतया निषेध रखना चाहिए इसके अतिरिक्त रोग की व्रीव अवस्था में रोगी को कठिन आसनों के स्थान पर हल्के सुक्ष्म अभ्यास ही कराने चाहिए।

सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को सन्धि संचालन के सुक्ष्म अभ्यासों से प्रारम्भ कराते हुए धीरे धीरे आसनों का अभ्यास कराना चाहिए। रोगी को प्रमुख रुप से गर्दन एवं कन्धों व हाथों को गतिशील बनाने वाले सन्धि संचालन के सुक्ष्म अभ्यासों पर विशेष ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। रोगी को यह अभ्यास नियमित रुप से प्रातः और सांयकाल दोनों समय कराने से रोग में लाभ प्राप्त होता है। रोग की व्रीवता कम होने पर रोगी को आसनों के क्रम पर लाते हुए अभ्यासों से ही करना चाहिए।

रोगी को सर्पासन, भुजँगासन, मकारासन, मरकटासन, शलभासन, धनुरासन, मत्स्यासन, उष्ट्रासन, अर्द्धचन्द्रासन एवं शवासन आदि इस प्रकार के आसनों का अभ्यास कराना चाहिए जिनसे मेरुदण्ड में लचीलापन उत्पन्न हो। रोगी को नियमित रुप से मरकटासन के अलग अलग प्रकारों का अभ्यास रोगी को नियमित रुप से कराने से रोग में लाभ मिलता है। इन आसनों के साथ साथ प्रत्येक आसन में शवासन एवं योग निन्द्रा का अभ्यास कराने से भी रोग में लाभ प्राप्त होता है।

(ग) मुद्रा एवं बन्ध का प्रभाव : मुद्राओं एवं बन्धों का अभ्यास कराने से रोगी के शरीर में प्राण तत्व का विस्तार होता है एवं अस्थियां व माँसपेशियां मजबूत बनती हैं। अतः रोगी को उसकी स्थितिनुसार बन्धों एवं काकी, शाम्भवी व महामुद्राओं आदि मुद्राओं का अभ्यास कराना चाहिए।

(घ) प्रत्याहार का प्रभाव : इन्द्रिय संयम के साथ साथ अनुशासन पालन करने से रोग समूल नष्ट होता है। प्रत्याहार पालन के अर्न्तगत रोगी अपनी इन्द्रियों पर संयम करते हुए खानपान एवं बुरी आदतों पर नियंत्रण करता है जिससे रोग स्वतः ही ठीक होने लगता है।

(ड) प्राणायाम का प्रभाव : रोगी को नाडी शोधन, अनुलोम विलोम, उज्जायी एवं भ्रामरी आदि प्राणायामों का नियमित अभ्यास कराने से लाभ मिलता है। प्राणायाम का अभ्यास कराने से मेरुदण्ड एवं अन्य सम्बन्धित नाडियों में प्राण तत्व का विस्तार होता है जिससे रोग दूर होता है।

(च) ध्यान एवं समाधि का प्रभाव : ध्यान एवं समाधि के अर्न्तगत रोगी अपने मन से नकारात्मक विचारों एवं भावों को दूर करता हुआ सकारात्मक विचारों एवं भावों का चिन्तन करता है जिसका रोग पर सीधा प्रभाव पडता है। सर्मपण भाव, दृढ इच्छाशक्ति एवं शुभ संकल्पों को धारण से रोगी की आन्तरिक प्रतिरोधक क्षमता एवं जीवनी शक्ति तेजी से विकसित होती है जिससे यह रोग समूल नष्ट होता है।

प्रिय पाठकों, इस प्रकार योग चिकित्सा के द्वारा सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग का दुष्प्रभावरहित उपचार किया जाता है। इसके साथ साथ प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा भी इस रोग भी इस रोग में प्रभावी रुप से कार्य करती है। सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग की प्राकृतिक चिकित्सा इस प्रकार है –

10.5.2 सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग की प्राकृतिक चिकित्सा

प्राकृतिक चिकित्सा में मिट्टी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तत्व का प्रयोग निम्न लिखित रुप से करने से रोगी को लाभ प्राप्त होता है–

(क) मिट्टी तत्व चिकित्सा : रोगी को पेट के साथ साथ गीली मिट्टी की पट्टी देने से पेट का शोधन होता हैं। जिससे शरीर में वात दोष शान्त होता है एवं वात व्याधियां दूर होती हैं। इस रोग में रीढ पर गर्म मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करने से दर्द में आराम मिलता है।

(ख) जल तत्व चिकित्सा : सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग में जल तत्व का प्रयोग विशेष लाभ प्रदान करता है। रोग की व्रीवावस्था में गर्म जल से सिकाई (रबर की बोतल में गर्म जल भरकर) करने से रोगी को दर्द में शीघ्र लाभ मिलता है। रोगी को सम्पूर्ण शरीर का भाप स्नान देने के अतिरिक्त नियमित रुप से स्थानीय भाप (कमर एवं कन्धों पर) रोग में स्थाई लाभ प्राप्त होता है। इस रोग में गर्म बाह स्नान (Hot Arm Bath) भी लाभकारी प्रभाव रखता है। रोगी को वात दोष का शमन करने वाले औषध गुणों से युक्त द्रव्यों से एनीमा देने से भी रोग में लाभ मिलता है।

(ग) अग्नि तत्व चिकित्सा : सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को सूर्य स्नान देने से रोग में लाभ मिलता है। इसके साथ साथ नारंगी रंग की बोतल में आवेशित जल का सेवन रोगी को कराने एवं लाल अथवा नारंगी रंग के प्रकाश अस्थियों पर डालने से रोग ठीक होता है।

(घ) वायु तत्व चिकित्सा : सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग अत्यन्त सावधानीपूर्वक हल्के हाथों से मालिश करने से तुरन्त आराम मिलता है किन्तु यहाँ पर अत्यन्त महत्वपूर्ण ध्यान देने का तथ्य यह है कि रोगी को गहरी अथवा अवैज्ञानिक रुप से मालिश करने से रोगी के दर्द तुरन्त बहुत अधिक बढ जाता है।

(ड) आकाश तत्व चिकित्सा : सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को छोटे उपवास अथवा कल्प कराने से रोग में लाभ मिलता है। इसके साथ साथ प्रार्थना एवं सकारात्मक भावों से रोग समूल दूर होता है।

इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा से सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को लाभ प्राप्त होता है। अब वैकल्पिक चिकित्सा के अर्न्तगत आयुर्वेद चिकित्सा पर विचार करते हैं –

10.5.3 सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग की आयुर्वेद चिकित्सा

आयुर्वेद शास्त्र में सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को शिलाजीत, चन्द्रप्रभावटी एवं त्रियोदषाम गुग्गुल नामक औषधियों के सेवन का निर्देश दिया जाता है।

सामान्य रुप से सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को 1 से 3 ग्राम की मात्रा में पीसी हल्दी का चूर्ण एवं सौंठ समान मात्रा में मिलाकर सुबह–शाम नियमित सेवन कराने से दर्द एवं रोग में लाभ प्राप्त होता है।

रोगी को अत्यन्त सावधानीपूर्वक बहुत हल्के हाथों से एवं वैज्ञानिक ढंग से महानारायण तेल से मालिश करने से दर्द में आराम मिलता है। किन्तु रोगी को गहरी अथवा अवैज्ञानिक ढंग से मालिश करने से दर्द तुरन्त एवं तेजी से बढ जाता है।

त्रिफला चूर्ण का सेवन कराने से भी सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को लाभ प्राप्त होता है। रोगी को रात्रिकाल में एक चम्मच चूर्ण गुनगुने दूध के साथ अथवा प्रातःकाल खाली पेट एक चम्मच चूर्ण गर्म पानी के साथ सेवन कराना चाहिए।

रोगी को एलोविरा के जूस का सेवन भी लाभकारी होता है। रोगी को चार चार चम्मच जूस प्रातः–सांय दोनों समय पिलाने से रोग में आराम मिलता है।

10.5.4 सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग की एक्यूप्रेशर चिकित्सा

सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी के रीढ एवं हाथों व पैरों से सम्बन्धित दाब बिदुओं पर विधिपूर्वक दबाव डालते हैं –

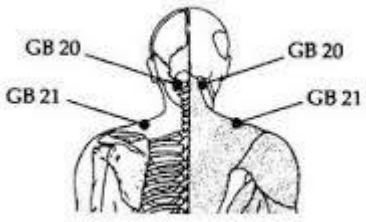

10.5.5 सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग की आहार चिकित्सा

सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को आहार पर विशेष नियंत्रण रखने की आवश्यक्ता होती है। रोगी को शुद्ध सात्विक हल्का एवं सुपाच्य आहार देने से शरीर की पूरी जीवनी शक्ति रोग को दूर करने में लग जाती है जिससे रोग शीघ्रता से दूर होता है। कैल्शियम की कमी भी अस्थि तंत्र के रोगों का मूल कारण होता है अतः रोगी को कैल्शियम युक्त पदार्थो का अधिक से अधिक सेवन कराना चाहिए। रोगी को निम्न लिखित पथ्य और अपथ्य आहार पर ध्यान देना चाहिए –

(क) पथ्य आहार – दूध, दही, मठ्ठा, मख्खन, पनीर, अखरोट, बादाम, चना, चौकरयुक्त आटा, सन्तरा, मौसमी, हरी पत्तेदार सब्जियां विशेष रुप से करेला, मौसमी फल सलाद एवं पोषक तत्वों से युक्त पौष्टिक आहार रोगी के लिए पथ्य है। इसके साथ साथ रोगी के लिए बिना फ्राई किया हुआ उबला आहार पथ्य है।

(ख) अपथ्य आहार – नमक, चीनी, चाय, कॉफी, सोफ्ट व कोल्ड डिंक्स जैसे पैप्सी व कोक, एल्कोहल, तला भुना चायनीज फूड, फास्ट फूड, जंक फूड, खट्टी दही, बासी, रुखा एवं पोषक तत्व विहीन भोजन रोगी के लिए अपथ्य है।

विशेष रुप से रोगी को खट्टे एवं अम्लीय पदार्थों का सेवन पूर्ण रुप से त्याग देना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त पथ्य एवं अपथ्य आहार के अनुसार रोगी को आहार कराने से रोग में अत्यन्त सरलता, सहजता एवं शीघ्रतापूर्वक लाभ प्राप्त होता है।

10.6 सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी के लिए सावधानियां एवं सुझाव

(1) सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को गर्दन में अधिक दर्द अथवा रोग की गंभीर अवस्था में गर्दन को अधिक से अधिक सीधा एवं स्थिर रखने हेतु गर्दन में बैल्ट का प्रयोग करना चाहिए।

(2) रोग की ग्रीव अवस्था में गर्दन को कम से कम गतिमान करते हुए अधिकतम समय तक गर्दन को सीधा रखकर आराम देना चाहिए।

(3) सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को कभी भी गर्दन अथवा कमर झुकाकर अधिक देर तक कार्य नही करना चाहिए।

(4) सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को सोते समय तकिया का प्रयोग पूर्ण रुप से छोड देना चाहिए।

(5) सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को अपने सभी कार्य सही मुद्रा में करने चाहिए तथा आगे की ओर झुककर करने वाले कार्यों को अधिक समय तक नही करने चाहिए।

(6) सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को टी0 वी0 अथवा कम्पयूटर का स्थान ऊँचाई पर रखना चाहिए।

(7) सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को नियमित रुप से प्रातःकाल गर्दन के सुक्ष्म अभ्यास अवश्य करने चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त सावधानियों को ध्यान में रखने से रोग जल्दी ठीक होता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

1– **सत्य / असत्य**

(क) सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग का सम्बन्ध रीढ की प्रथम सात कशेरुकाओं से है।

(ख) सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग महिलाओं की तुलना में पुरुषों में अधिक पाया जाता है।

(ग) सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को टी0 वी0 अथवा कम्पयूटर का स्थान नीचे रखना चाहिए। ।

(घ) सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को सदैव गर्दन अथवा कमर झुकाकर कार्य करना चाहिए।

(ड) सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को गर्दन में अधिक दर्द अथवा रोग की गंभीर अवस्था में गर्दन में बैल्ट का प्रयोग करना चाहिए।

2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रीढ की ———————— बिमारी है

(ख) सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग की उत्पत्ति में भी शरीर की ————————महत्वपूर्ण कारण हैं।

(ग) सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को सावधानीपूर्वक हल्के हाथों से ————————तेल से मालिश करने से दर्द में आराम मिलता है।

(घ) सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को ————————दोष का शमन करने वाले औषध गुणों से युक्त द्रव्यों से एनीमा देना चाहिए।

(ड) सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को नियमित रुप से प्रातःकाल ———— अवश्य करने चाहिए।

3–बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) मानव रीढ में सर्वाइकल कशेरुकाओं की संख्या कितनी होती है –

(a) सात (b) पांच

(c) बारह (d) तैतीस।

(ख) सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग का प्रमुख कारण हैं –

(a) झुककर पढना (b) मोटे तकिया का प्रयोग

(c) झुककर बैठने की आदत (d) सभी।

(ग) सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोगी को किस आसन का अभ्यास नही कराना चाहिए

(a) मरकटासन (b) मकारासन

(c) पश्चिमोत्तानासन (d) भुजंगासन।

(घ) किस तत्व की कमी अस्थि तंत्र के रोगों का मूल कारण है –

(a) कैल्शियम (b) आयरन

(c) सोडियम (d) जिंक ।

(ड) सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग का लक्षण नही है –

(a) गर्दन दर्द (b) कम इन्द्रिय बोध

(c) चक्कर आना (d) रक्त शर्करा बढना।

10.7 सारांश–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई में सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग के कारण, लक्षण एवं वैकल्पिक चिकित्सा को समझाया गया है। इकाई का प्रारम्भ मानव रीढ की संरचना को समझाने से किया गया है। इसके उपरान्त रीढ की प्रथम सात कशेरुकाओं में उत्पन्न विकृतियों के परिणामस्वरुप होने वाले सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस रोग के प्रमुख कारणों पर प्रकाश डाला गया है।

इकाई में आगे रोग की वैकल्पिक चिकित्सा को समझाया गया है। चूंकि दवाईयों के सेवन से रोग में कोई विशेष लाभ प्राप्त नही होता है अपितु रोग और बढता जाता है अतः रोग की वैकल्पिक चिकित्सा पर विशेष बल दिया जाता है। ओस्टियोपोरोसिस रोग की वैकल्पिक चिकित्सा के अर्न्तगत योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेद चिकित्सा, एक्यूप्रेशर चिकित्सा एवं आहार चिकित्सा अर्थात पथ्य और अपथ्य का वर्णन किया गया है।

10.8 पारिभाषिक शब्दावली–

अपकषक धीरे धीरे झर कर अथवा टूट कर कमजोर हो जाना

विलक्षण	दूसरों से भिन्न करने वाला विशेष गुण अथवा विशेषता
सिण्ड्रोम	अनुवांशिक गुणसूत्र
चिरकालिक	लम्बे समय के लिए
उकसान	उभार

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.	असत्य	क अपकर्षक	क. c
ख.	सत्य	ख. महानारायण	ख. a
ग.	असत्य	ग. शान्त, गंभीर	ग. d
घ.	सत्य	घ. वात	घ. c
ड.	सत्य	ड. गर्दन के सुक्ष्म अभ्यास	ड. a

10.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कल्याण आरोग्य अंक – गीता प्रेस गोरखपुर।
2. असाध्य रोगों की सरल चिकित्सा – डॉ0 नागेन्द्र कुमार नीरज, पापुलर बुक डिपो, जयपुर।
3. योग चिकित्सा विज्ञान – श्री आदित्य योगी, योग जीवन धाम ट्रस्ट, हरिद्वार।
4. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डॉ0 राकेश जिन्दल, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मोदी नगर (उ0प्र0)।
5. प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ0 टी0 एन0 श्रीवास्तव, मैत्रेयी प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. वृहद आयुर्वेदिक चिकित्सा – डॉ0 ओम प्रकाश सक्सेना, हिन्दी सेवा सदन, मथुरा।
7. एक्यूप्रेशर – डा0 अतर सिंह, एक्यूप्रेशर हैल्थ सेटंर, चण्डीगढ।

10.11 सहायक पाठ्य सामग्री

1 मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान– प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता, सुमित प्रकाशन, आगरा।

2 स्वस्थ वृत्त विज्ञान – डॉ0 रामहर्ष सिंह, चौखम्बा प्रकाशन बनारस।

3. वैकल्पिक चिकित्सा – डा0 राजकुमार प्रुथी, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली।

4. वैकल्पिक चिकित्सा – डा0 आर0 एस0 विवेक , डायमण्ड पाकेट बुक्स, नई दिल्ली।

10.12 निबन्धात्मक प्रश्न–

1. सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस के कारणों एवं लक्षणों पर प्रकाश डालिए।
2. सर्वाइकल स्पोन्डिलाइटिस की वैकल्पिक चिकित्सा को सविस्तार लिखिए।

इकाई 11 आर्थराइटिस कारण, लक्षण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 आर्थराइटिस रोग का सामान्य परिचय
11.4 आर्थराइटिस के कारण
11.5 आर्थराइटिस के लक्षण
11.6 आर्थराइटिस की वैकल्पिक चिकित्सा
11.6.1 आर्थराइटिस की योग चिकित्सा
11.6.2 आर्थराइटिस की प्राकृतिक चिकित्सा
11.6.3 आर्थराइटिस की आयुर्वेद चिकित्सा
11.6.4 आर्थराइटिस की एक्यूप्रेशर चिकित्सा
11.6.5 आर्थराइटिस रोग की प्राण चिकित्सा
11.6.6 आर्थराइटिस की आहार चिकित्सा
11.7 सारांश
11.8 पारिभाषिक शब्दावली
11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
11.11 सहायक पाठ्य सामग्री
11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, आपने पूर्व की इकाई में आपने ओस्टियोपोरोसिस एवं सर्वाइकल स्पोण्डोलाइटिस रोगों के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। ओस्टियोपोरोसिस एवं सर्वाइकल स्पोण्डोलाइटिस के समान आर्थराइटिस भी अस्थि संस्थान से जुडी व्याधि है जिसके विषय में प्रस्तुत इकाई में समझाया गया है। आधुनिक विकसित समाज में शारीरिक श्रम कम होने के कारण इन रोगों से ग्रस्त रोगियों की संख्या बहुत तेजी से बढती जा रही है।

भारतवर्ष में जब तक व्यक्तियों का आहार–विहार शुद्ध सात्विक एवं दिनचर्या सुव्यवस्थित थी, एवं इसके साथ साथ वह नियमित यौगिक क्रियाओं के अभ्यास के अलावा अच्छी प्रकार से शारीरिक श्रम करता था तब तक भारतीय समाज में आर्थराइटिस रोगियों की संख्या बहुत कम अथवा नगण्य थी किन्तु जैसे जैसे भारतीय समाज के खान–पान एवं रहन सहन में आधुनिक का प्रवेश हुआ तभी से आर्थराइटिस रोग नें भी समाज में अपना स्थान बनाया। खान पान में फास्ट फूड, चाइनीज फूड व जंक फूड के प्रचलन ने आर्थराइटिस रोगियों की सँख्या तेजी से बढाई है। इसके साथ साथ विलासितापूर्ण श्रमहीन जीवन शैली एवं दिनचर्या में यौगिक आसन–प्राणायाम के अभाव ने भी आर्थराइटिस रोग के फैलाने में प्रमुख भूमिका निभाई है। वर्तमान समय में भारतीय समाज में आर्थराइटिस रोगियों की संख्या दिन प्रतिदिन बढती जा रही है।

भारत के अतिरिक्त पश्चिमी विकसित देशों में जहां अधिकाशं कार्य मशीनों से होता है एवं शारीरिक श्रम का अभाव है, इन देशों में जोडों के दर्द से ग्रस्त रोगियों की संख्या और भी अधिक है। भारत की तुलना में इन देशों में आर्थराइटिस रोगियों की संख्या और भी अधिक है। एक गणना के अनुसार अमेरिका देश में आर्थराइटिस रोग से ग्रस्त रोगियों की संख्या 20 लाख से भी अधिक है। इसी प्रकार कनाडा, इग्लैंण्ड एवं आस्ट्रेलिया आदि विकसित देशों में भी आर्थराइटिस रोगियों की संख्या तेजी से बढती जा रही है। दुनिया भर में आर्थराइटिस रोग के बढने प्रभाव को दूर करने के उद्देश्य से एवं आर्थराइटिस रोग के प्रति जागरुकता फैलाने के उद्देश्य से प्रतिवर्ष 12 अक्टूबर को **"विश्व आर्थराइटिस दिवस"** घोषित किया गया है।

इस प्रकार इन तथ्यों को जानने के उपरान्त आपके मन में आर्थराइटिस रोग के कारणों, लक्षणों एवं वैकल्पिक चिकित्सा को जानने की जिज्ञासा अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी, अतः अब हम आर्थराइटिस रोग पर सविस्तार विचार करते हैं।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- आर्थराइटिस रोग का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- आर्थराइटिस रोग की उत्पत्ति के कारणों को जान सकेगें।
- आर्थराइटिस रोग के लक्षणों को समझाने में सक्षम हो सकेगें।
- आर्थराइटिस रोग की वैकल्पिक चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त करेगें।
- आर्थराइटिस रोग के सम्बन्ध में विशेष सावधानियों एवं अन्य महत्वपूर्ण बिन्दुओं को जान सकेगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गये प्रश्नों के उत्तर दे सकेगें।

11.3 आर्थराइटिस रोग का सामान्य परिचय

प्रिय विधार्थियों, आर्थराइटिस अग्रेंजी भाषा का शब्द है इस शब्द की ममूल उत्पत्ति ग्रीक भाषा से हुई है। आर्थराइटिस ग्रीक भाषा के दो शब्दों आथ्रो (Arthro) और आइटिस (Itis) से मिलकर बना है। ग्रीक भाषा में आथ्रो (Arthro) का अर्थ जोड अर्थात सन्धियां तथा आइटिस (Itis) का अर्थ सूजन होता है अर्थात शाब्दिक अर्थ में वह रोग जिसमें जोडों अथवा सन्धियों में सूजन उत्पन्न होती है, आर्थराइटिस (Arthroitis) कहलाता है। आर्थराइटिस आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में प्रयुक्त होने वाला शब्द है जबकि प्राचीन काल से हिन्दी भाषा में **सन्धि शोथ** के नाम इस रोग को वर्णित किया गया है। आयुर्वेद शास्त्र में आर्थराइटिस रोग के लिए **आमवात** शब्द का वर्णन प्राप्त होता है। आयुर्वेद शास्त्र के विभिन्न ग्रन्थों में आमवात रोग का सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है जो लक्षणों एवं कारणों के स्तर पर आर्थराइटिस रोग से मूल समानता रखता है।

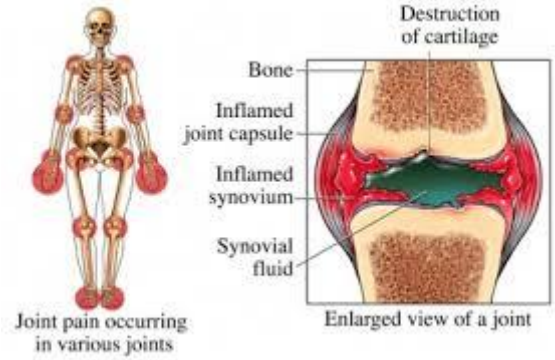

जिज्ञासु पाठकों, इस रोग का प्रारम्भ जोडों में सूजन के साथ होता है, जोडों में सूजन के साथ जोड लाल होने लगते हैं एवं इन जोडों में सुई सी चुभन उत्पन्न होने लगती है। यही आगे चलकर गठिया में एवं गठिया आगे चलकर आर्थराइटिस रोग में परिवर्तित हो जाता है। आर्थराइटिस रोग के अलग अलग लक्षण प्रकट होते हैं। इन लक्षणों के आधार पर आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में आर्थराइटिस रोग के सौ से भी अधिक प्रकारों को वर्णित किया गया है। आर्थराइटिस रोग के इन प्रकारों में सबसे अधिक व्यापक **रुमेटोयड आर्थराइटिस (आमवातिक संधिशोथ)** है। इसके अतिरिक्त ऑस्टियो आर्थराइटिस, सेप्टिक आर्थराइटिस, सोरियाटिक आर्थराइटिस तथा रिएक्टिव आर्थराइटिस भी आर्थराइटिस रोग के अन्य प्रकार या वर्ग हैं।

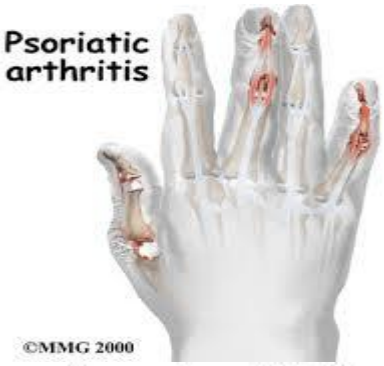

Common types of Arthritis

प्रिय पाठकों, अब आपके मन में यह प्रश्न उत्पन्न होना भी स्वाभिक ही है कि आर्थराइटिस रोग की उत्पत्ति कैसे होती है अर्थात इस रोग की उत्पत्ति के क्या क्या कारण होते हैं अतः अब आर्थराइटिस रोग की उत्पत्ति के कारणों पर विचार करते हैं –

11.4 आर्थराइटिस के कारण

प्रिय विधार्थियों, आर्थराइटिस जोडों से सम्बन्धित रोग है जिसे सामान्य भाषा में गठिया के नाम से जाना जाता है। वर्तमान समय में यह रोग बहुत तेजी से समाज में बढ रहा है। दिल्ली में एम्स के एक अनुमान के अनुसार भारत वर्ष में हर छह में से एक व्यक्ति आर्थराइटिस रोग से ग्रस्त है। आर्थराइटिस रोग की व्यापकता को जानने के उपरान्त अब आपके मन में यह प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक ही है कि किन कारणों से यह रोग उत्पन्न होता है एवं कौन कौन से कारक इस रोग को बढाते हैं, अतः अब हम आर्थराइटिस रोग के कारणों पर विचार करते हैं –

(1) ज्यादा देर तक बैठ कर काम करना : ज्यादा देर तक एक स्थान पर एक स्थिति अथवा एक मुद्रा में बैठ कर काम करना आर्थराइटिस रोग का सबसे प्रमुख कारण है। अधिक समय तक शरीर के जोडों में गतिहीनता बने रहने से रक्त संचार बाधित होने लगता है। यह रक्त संचार में बाधा ही आर्थराइटिस रोग का मूल कारण है।

अधिक देर तक एक स्थिति में बैठकर कार्य करने से जब जोडों में रक्त संचार रुकने लगता है तब जोडों में सूजन के साथ वेदना उत्पन्न होने लगती है जो आगे चलकर आर्थराइटिस रोग का रुप ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार अधिक समय तक एक स्थिति में बैठकर ऑफिस में कार्य करना, कम्प्यूटर ऑपरेट करना, टी0 वी0 देखना अथवा अन्य कार्य करने से यह रोग जन्म लेता है।

(2) कम चलना अथवा कम घूमना : प्रिय पाठकों, प्रतिदिन पैदल चलना जोडों की गतिशीलता के लिए अथवा शरीर को स्वस्थ बनाए रखने के लिए एक महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य व्यायाम है। आधुनिक समय में जब मनुष्य ने समय बचाने के लिए पैदल चलने के स्थान पर मोटर बाईक अथवा मोटर कारों का अधिकाधिक प्रयोग करना प्रारम्भ किया वैसे वैसे ही जोडों में शिथिलता एवं जकडन रहनी प्रारम्भ हो गयी। इसके साथ साथ प्रातःकालीन भ्रमण के अभाव ने भी जोडों में शिथिलता उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जोडों की यह शिथिलता एवं जकडन आगे चलकर आर्थराइटिस रोग को जन्म देती है।

(3) विकृत आहार का सेवन : आहार का हमारे शरीर एवं स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव पडता है। शुद्ध सात्विक पौषक तत्वों से परिपूर्ण आहार करने से जहां व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक रुप से स्वस्थ रहता है तो वही इसके विपरित पौषक तत्वों से विहीन तामसिक आहार करने से शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। विशेष रुप से जंक फूड जैसे पैप्सी एवं कोक आदि कोल्ड डिक्स का अधिक सेवन करने से अस्थियों एवं जोडों पर नकारात्मक प्रभाव पडता है एवं यही से आर्थराइटिस रोग का प्रारम्भ होने लगता है।

वातवर्धक आहार जैसे चावल, उदड की दाल, फूलगोभी, पत्तागोभी, पालक, चीनी, खट्टी दही एवं बासी आहार के अधिक सेवन से यह रोग तेजी से शरीर को जकड लेता है। मांसाहारी आहार का सेवन भी

रोगोत्पत्ति का प्रमुख कारण है। मांस–मछली में प्यूरिन नामक तत्व पाया जाता है जो शरीर में जाकर यूरिक एसिड को उत्पन्न करता है। यूरिक एसिड की मात्रा बढने पर जोडों में दर्द एवं सूजन उत्पन्न होती है जो आर्थराइटिस रोग की उत्पत्ति का प्रमुख कारण है।

(4) मोटापा : मोटापा आर्थराइटिस रोग का एक प्रमुख कारण है। शरीर में मोटापा बढने से अस्थियों तथा जोडों पर दबाव बढता है जिस कारण अस्थियों एवं जोडों में विकृतियां उत्पन्न होती है और इन्ही विकृतियों के कारण जोडों में दर्द एवं सूजन प्रारम्भ हो जाती है, यह जोडों में दर्द एवं सूजन आगे चलकर आर्थराइटिस रोग का रुप ग्रहण कर लेती है।

(5) चोट एवं ठण्डा मौसन : चोट आदि के कारण जोडों में उपस्थित काटिलेज के घिसने अथवा टूटने के कारण जोडों में दर्द एवं सूजन उत्पन्न होती है। ठण्ड के मौसम में रक्तवाहिनीयों में सिकुडन उत्पन्न हो जाती है, रक्त वाहिनीयों में सिकुडन होने से रक्त संचार कम अथवा बाधित हो जाता है। इसके परिणाम स्वरुप ठण्ड के मौसम में जोडों में दर्द एवं सूजन और अधिक बढ जाती है। जोडों पर ठण्डी हवा लगने से भी इस रोग का प्रकोप और अधिक बढ जाता है।

(6) शरीर प्रतिरक्षा तंत्र (Immunity System) **की विकृति :** हमारे शरीर का प्रतिरक्षा तंत्र प्रोटीन, बायोकेमिकल्स एवं अन्य कोशिकाओं से मिलकर बना होता है जो शरीर को बहारी चोटों, बैक्टीरिया, बायरस एवं अन्य रोगाणुओं से सुरक्षा प्रदान करने का कार्य करता है लेकिन कभी–कभी यह प्रतिरक्षा तंत्र गलती से शरीर में उपस्थित आवश्यक एवं लाभकारी प्रोटीन्स को ही नष्ट करना प्रारम्भ कर देता है, शरीर की इन अनोखी बिमारी को चिकित्सक **ऑटो–इम्यून डिजीज** का नाम देते है। रुमेटॉयड आर्थराइटिस एक इसी प्रकार की ऑटो–इम्यून डिजीज है जिसमें जोडों में विकृतियां उत्पन्न हो जाती हैं एवं जोडों में दर्द एवं सूजन उत्पन्न हो जाती है।

(7) जीवन शैली (bad habbits) : अनुशासनात्मक सुव्यवस्थित जीवन शैली का पालन करने से जहां शरीर पूर्ण रुप से स्वस्थ बना रहता है तो वहीं इसके विपरित अनुशासनहीन जीवनशैली का शरीर एवं मन पर नकारात्मक प्रभाव पडता है। आर्थराइटिस रोग का सम्बन्ध विकृत जीवनशैली के साथ है। रात्रिकाल में देर से सोने एवं प्रातःकाल देर से उठना आर्थराइटिस रोग का एक प्रमुख कारण है। आधुनिक समय के भागदौड भरे जीवन से उत्पन्न मानसिक तनाव इस रोग की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके अतिरिक्त दुर्व्यसनों के कारण शरीर आर्थराइटिस रोग से ग्रस्त हो जाता है।

(8) बढती उम्र (Age Factor) : आर्थराइटिस रोग की उत्पत्ति में उम्र भी एक महत्वपूर्ण कारक है। प्रायः यह रोग मझौली उम्र (Middle Age) में ही शरीर को जकड लेता है और 30 से 45 वर्ष की अवस्था में ही व्यक्ति इसका शिकार हो जाता है। आर्थराइटिस रोग के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि पुरुषों की तुलना में महिलाओं में यह रोग कई गुणा अधिक पाया जाता है। इसका कारण शरीर के अलग अलग हार्मोन्स एवं कार्यशैली की भिन्नता होती है।

(9) यौगिक आसन–प्राणायाम का अभाव : यौगिक आसन एवं प्राणायाम का अभ्यास जोडों को स्वस्थ बनाए रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। नियमित रुप से प्रतिदिन आसन, प्राणायाम एवं ध्यान आदि यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करने से सम्पूर्ण

शरीर स्वस्थ एवं जोड लचीले बनते हैं किन्तु इसके विपरित यौगिक क्रियाओं का अभ्यास नही करने से जोडों में कठोरता उत्पन्न होती है जो आगे चलकर धीरे धीरे आर्थराइटिस रोग का रुप ग्रहण कर लेती है।

(10) अनुवांशिकता (Genetic Factor) : पारिवारिक पृष्टभूमि अर्थात अनुवांशिकता इस रोग का एक प्रमुख कारण होता है। परिार के बडे सदस्यों (पूर्वजों) से यह रोग है अगली पीढी में पहुँचता है।

इस प्रकार उपरोक्त कारणों के कारण शरीर आर्थराइटिस रोग से ग्रस्त हो जाता है। अब दस यह कैसे पहचाना जाए कि यह रोग आर्थराइटिस ही है अथवा कोई दूसरा रोग है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए हमें आर्थराइटिस रोग के लक्षणों को जानना आवश्यक हो जाता है। यद्यपि जैसा कि आपने पूर्व में ही जान लिया है कि आर्थराइटिस रोग के बहुत सारे प्रकार होते हैं जिनके शरीर में अलग अलग लक्षण प्रकट होते हैं किन्तु आर्थराइटिस रोग के कुछ सामान्य लक्षण इस प्रकार हैं –

11.5 आर्थराइटिस रोग के लक्षण

आर्थराइटिस रोग से ग्रस्त होने पर शरीर में निम्न लिखित लक्षण प्रकट होते हैं –

(1) जोडों में सूजन के साथ त्रीव वेदना होना : जोडों में सूजन के साथ सुई की चुभन के समान त्रीव वेदना आर्थराइटिस रोग का सबसे प्रधान एवं मूल लक्षण है। इस रोग में रोगी को उगुलियों, कलाई, बाजुओं, टागों, घुटनों एवं कुल्हों में असहनीय वेदना होती है। रोगी को प्रातःकाल नींद से जागते समय दर्द एवं जकडन और अधिक बढ जाता है।

इस रोग में रोगी को बिना चोट लगे जोडों में दर्द होने लगता है और दर्द धीरे धीरे बढता ही जाता है। रोगी को चलते समय एवं उठते व बैठते समय जोडों में दर्द एवं भारीपन होता है।

(2) जोडों में कठोरता के साथ अस्थियों का टेडा होना : आर्थराइटिस रोगी के जोडों में लचीलेपन के स्थान पर कठोरता उत्पन्न होने लगती है। रोगी के जोड कडे होकर जाम होने लगते हैं। रोग के त्रीव अवस्था में अस्थियों में टेढापन आने लगता है। विशेष रुप से हाथों एवं पैरों की उगुलियों में टेढापन आ जाता है। रोगी के जोडों में गतिशीलता का अभाव होने लगता है और शरीर अकडने लगता है।

(3) शरीर का वजन घटना : आर्थराइटिस रोग में रोगी को हर समय जोडों में दर्द रहता है तथा उसकी भूख कम हो जाती है। रोगी की तबीयत खराब रहने लगती है तथा उसका किसी कार्य में मन नही लगता है जिससे उसके शरीर का वजन तेजी से घटने लगता है।

(4) शरीर का तापक्रम बढना एवं हल्का बुखार रहना : प्रिय पाठकों, मानव शरीर का सामान्य तापक्रम 98.4 डिग्री फेरेहनाइट होता है किन्तु आर्थराइटिस रोग से ग्रस्त होने पर शरीर का तापक्रम बढा हुआ (100 डिग्री फेरेहनाइट) रहता है। इस रोग में रोगी को ठण्ड अधिक लगती है।

(5) त्वचा पर रेशेज पडना : आर्थराइटिस रोग में रोगी की त्वचा पर रेशेज पड जाते हैं। रोगी की त्वचा अधिक लाल हो जाती है और उस पर लाल लाल चकते पड जाते हैं। रोगी के जोडों में गांठे पड जाती है। जोडों को दबाने पर जोडों में दर्द एवं भयंकर चुभन पैदा होती हैं। हाथ और पैर हिलाने पर चटकने लगते हैं।

(6) अनिन्द्रा : आर्थराइटिस रोग में रोगी अनिन्द्रा से ग्रस्त होने लगता है। रोगी के जोडों में हर समय दर्द की स्थिति बनी रहती है जिसके कारण उसे भलि भांति नींद नही आती है और वह अनिन्द्रा से ग्रस्त हो जाता है। आर्थराइटिस रोगी के शरीर की चयापचय दर भी बढी रहती है जिससे उसे बैचेनी का अनुभव होता रहता है।

चिकित्सक आर्थराइटिस रोग को लक्षणों के आधार पर तीन चरणों में विभाजित करते हैं–

प्रथम चरण अथवा प्रारम्भिक अवस्था (First or Primary Stage) : रोगी को बुखार आता है तथा शरीर में दर्द एवं थकान बढने लगती है।

द्वितीय चरण (Middle Stage): रोगी के हाथों एवं पैरों में अकडन प्रारम्भ हो जाती है। प्रातःकाल रोगी का पूरा शरीर अकडा हुआ रहता है जिसे सामान्य होने में 15 से 20 मिनट अथवा अधिक समय लग जाता है।

तृतीय चरण (Final or Last Stage): रोगी के जोडों में भयंकर दर्द रहता है। जोडों में गाठें पड जाती है। जोडों को दबाने पर ग्रीव वेदना होती है तथा हाथों व पैरों की उंगलियां टेढी होने लगती है।

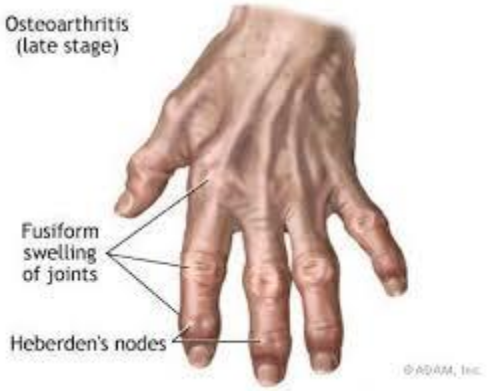

प्रिय पाठकों, यद्यपि उपरोक्त लक्षणों के आधार पर शरीर में आर्थराइटिस रोग की उपस्थिति का ज्ञान होता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में आर्थराइटिस रोग की जॉच निम्न परीक्षणों के आधार पर की जाती है–

(1) दर्द एवं सूजन से ग्रस्त जोड का X- ray : शरीर के जिस जोड पर दर्द के साथ सूजन है, उस जोड पर X- ray डाल कर आर्थराइटिस रोग की जॉच की जाती है।

(2) साइनोवियल फ्लूड की जॉच : प्रिय पाठकों, दो अस्थियों के जुडनें के स्थान पर साइनोवियल फ्लूड (श्लेष द्रव) उपस्थित होता है जो गति के समय अस्थियों के सिरों को आपस में टकराकर घिसने से बचाने का कार्य करता है। शरीर के जोडों में साइनोवियल फ्लूड (श्लेष द्रव) की कम मात्रा आर्थराइटिस रोग की और संकेत करती है।

(3) मूत्र में यूरिक एसिड की जॉच: शरीर में यूरिक एसिड की मात्रा बढ का जोडों में एकत्र हो जाती है। जोडों में ये यूरिक एसिड के क्रिस्टल जमा होकर दर्द एवं सूजन उत्पन्न करते हैं अतः मूत्र में यूरिक एसिड की बढी मात्रा आर्थराइटिस रोग की और संकेत करती है।

प्रिय पाठकों, इस प्रकार आर्थराइटिस रोग से ग्रस्त होने पर रोगी के शरीर में अकडन और जकडन बढती चली जाती है। रोगी के जोडों में दर्द बढता जाता है और हाथों व पैरों की अस्थियों में टेडापन आने लगता है। रोग से पिडित व्यक्ति को पैदल चलने एवं उठने बैठने में कठिनाई होने लगती है। रोगी को एलोपैथी चिकित्सक दर्द निवारक दवाईयां जैसे ब्रूफेन, पेरासिटामोल, डिक्लोफेन आदि तथा सूजन दूर करने के लिए कोरटिकोस्टिरॉइड जैसे बेटनासॉल आदि का सेवन करने की सलाह देता है। इन दवाईयों का रोगी को लाभ कम हानि अधिक होती है। इनका लम्बे समय तक तथा अधिक मात्रा में सेवन करने से रोगी के लीवर एवं वृक्कों पर बहुत नकारात्मक प्रभाव पडता है। इसके अतिरिक्त अग्रेंजी दवाईयों के अधिक सेवन से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बहुत निम्न होने लगती है जबकि इसके विपरित आर्थराइटिस रोग में वैकल्पिक चिकित्सा काफी प्रभावी एवं लाभकारी सिद्ध होती है। आधुनिक चिकित्सक भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि आर्थराइटिस रोगी का वैकल्पिक चिकित्सा द्वारा उपचार करने से उसे रोग में स्थाई लाभ प्राप्त होता है अतः अब आर्थराइटिस रोग की वैकल्पिक चिकित्सा पर विचार करते हैं –

11.6 आर्थराइटिस रोग की वैकल्पिक चिकित्सा

आर्थराइटिस रोग की वैकल्पिक चिकित्सा में योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेद चिकित्सा, एक्यूप्रेशर चिकित्सा, प्राण चिकित्सा एवं आहार चिकित्सा द्वारा रोग के उपचार का वर्णन आता है। इस रोग की वैकल्पिक चिकित्सा इस प्रकार है –

11.6.1 आर्थराइटिस रोग की योग चिकित्सा

आर्थराइटिस रोग में यौगिक क्रियाओं जैसे आसन, मुद्रा–बंध एवं प्राणायाम का अभ्यास रोग दूर करने में अत्यन्त प्रभावी सिद्ध होती है। इन क्रियाओं का अभ्यास कराने से रोगी को तुरन्त लाभ मिलने लगता है तथा लम्बे समय तक इन क्रियाओं का नियमित अभ्यास कराने से रोग के रोग पर नियंत्रण प्राप्त होने लगता है। आर्थराइटिस रोग की योग चिकित्सा इस प्रकार है –

(क) षट्कर्म का प्रभाव : प्रिय पाठकों, षट्कर्मों की छह क्रियाओं धौति, बस्ति, नेति, नौली, त्राटक एवं कपालभाति का रोग की स्थिति एवं रोगी की क्षमतानुसार अभ्यास कराने से रोगी के शरीर का शोधन होता है। जिसके परिणाम स्वरुप शरीर में यूरिक एसिड की मात्रा कम होती है और दर्द में आराम मिलता है। इसके अतिरिक्त शरीर शोधन के परिणाम स्वरुप शरीर के अन्य तंत्र जैसे पेशीय तंत्र एवं अस्थि तंत्र भी स्वस्थ बनते है। जिससे रोग ठीक होता है एवं रोगी को आराम मिलता है।

(ख) आसन का प्रभाव : आर्थराइटिस रोग के उपचार में आसनों का अभ्यास अत्यन्त लाभकारी होता है। यद्यपि रोगी रोग की ग्रीव अवस्था में आसनों का अभ्यास करने में

असक्ष्म होता है तथा रोगी को बलपूर्वक आसन कराने से रोगी का दर्द तेजी से बढ जाता है अतः रोगी को अत्यन्त सावधानीपूर्वक हल्के हल्के आसनों और विशेष रुप से संधि संचालन के सुक्ष्म अभ्यासों को कराना चाहिए। रोगी को पैर की उगुलियों, पजों, घुटनों, कुल्हे, हाथ की उगुलियों, कलाई, कोहनी, कन्धों एवं गर्दन को गतिशील बनाने वाले अभ्यासों को बार बार सुबह और शाम दोनों समय अभ्यास कराना से रोग में लाभ मिलता है।

उपरोक्त सुक्ष्म अभ्यासों के रोग की व्रीवता कम होने पर रोगी को आसनों के क्रम पर लाते हुए धीरे धीरे एवं सावधानीपूर्वक आसनों का अभ्यास कराना चाहिए। आर्थराइटिस रोगी को सर्पासन, भुजँगासन, मकारासन, पवनमुक्तासन, उत्तानपादासन, मत्स्यासन, नौकासन, मरकटासन, गोमुखासन, उष्ट्रासन, वक्रासन, अर्द्धचन्द्रासन, गरुडासन, वातायन आसन एवं शवासन आदि आसनों का अभ्यास कराना चाहिए। इस रोग में आसनों के महत्व को देखते हुए वर्तमान समय में आर्थराइटिस रोगी की फिजियोथैरेपी का प्रचलन भी बढता जा रहा है जिसमें चिकित्सक सहायता देकर रोगी के जोडों को गतिशीलता प्रदान करता है।

(ग) मुद्रा एवं बन्ध का प्रभाव : आर्थराइटिस रोग का सम्बन्ध वात दोष की विकृति से भी है। शरीर में वात दोष को सम बनाने के लिए मुद्राओं एवं बन्धों का अभ्यास लाभकारी प्रभाव रखता है। रोगी को उसकी क्षमतानुसार काकी, शाम्भवी व महामुद्राओं आदि मुद्राओं का अभ्यास कराना चाहिए। इसके साथ साथ मूल, उड्डियान एवं जालंधर बन्धों का अभ्यास भी रोगी को कराना चाहिए।

(घ) प्रत्याहार का प्रभाव : आर्थराइटिस रोग को दूर करने में प्रत्याहार अर्थात इन्द्रिय संयम अपनी एक विशेष भूमिका का वहन करता है। प्रत्याहार के अर्न्तगत रोगी द्वारा दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या का अनुशासन से पालन करने से रोग समूल नष्ट होता है। इसके साथ खानपान सम्बधीं बुरी आदतों पर नियंत्रण करने से रोग की व्रीवता पर सीधा प्रभाव पडता है एवं रोग स्वतः ही ठीक होने लगता है।

(ड) प्राणायाम का प्रभाव : आर्थराइटिस रोगी को नाडी शोधन, अनुलोम विलोम, सूर्यभेदी, उज्जायी एवं भ्रामरी आदि प्राणायामों का नियमित अभ्यास कराने से लाभ मिलता है। रोगी को साफ स्वच्छ वातावरण में स्थिर मन के साथ प्राणायामों का अभ्यास करना चाहिए। रोगी को प्राणायामों का अभ्यास नियमित रुप से एवं लम्बी अवधि तक करना चाहिए। प्राणायाम का अभ्यास रोग पर प्रत्यक्ष प्रभाव रखता हुआ रोग को शीघ्र ठीक करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(च) ध्यान एवं समाधि का प्रभाव : ध्यान एवं समाधि के अर्न्तगत रोगी नकारात्मक भावों एवं रोग की नकारात्मकता से हटकर सकारात्मक विचारों एवं भावों का चिन्तन करता है। वह अपने मन एवं मस्तिष्क में सकारात्मक चिन्तन को स्थान देता है जिससे उसके शरीर में हार्मोन्स सन्तुलित होते हैं। ध्यान एवं समाधि में स्थित होने से आन्तरिक रोग प्रतिरोधक क्षमता एवं जीवनी शक्ति तेजी से विकसित होती है जिससे रोग समूल नष्ट होता है।

प्रिय पाठकों, इस प्रकार योग चिकित्सा के द्वारा आर्थराइटिस रोगी के रोग पर नियंत्रण प्राप्त होता है। रोगी को दर्द एवं सूजन में आराम मिलता है। योग चिकित्सा के साथ साथ प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा भी आर्थराइटिस रोग में शीघ्र एवं स्थाई लाभ प्राप्त होता है। आर्थराइटिस रोग की प्राकृतिक चिकित्सा इस प्रकार है –

11.6.2 आर्थराइटिस रोग की प्राकृतिक चिकित्सा

आर्थराइटिस रोगी को मिट्टी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तत्वों द्वारा इस प्रकार चिकित्सा देने से लाभ प्राप्त होता है –

(क) मिट्टी तत्व चिकित्सा : आर्थराइटिस रोगी को जोडों पर गर्म मिट्टी की पट्टी देने शीघ्र अतिशीघ्र लाभ प्राप्त होता है। गीली मिट्टी को ऑच पर गर्म करने के उपरान्त सहनीय तापक्रम पर रोगी के प्रभावित जोडों पर देने से दर्द एवं सूजन में लाभ मिलता है।

(ख) जल तत्व चिकित्सा : आर्थराइटिस रोगी की जल चिकित्सा में यह सावधानी विशेष रुप से रखनी चाहिए कि रोगी पर ठण्डे जल का प्रयोग कदापि नही करना चाहिए। आर्थराइटिस रोगी को सम्पूर्ण शरीर का भाप स्नान देने से लाभ रोग में विशेष लाभ प्राप्त होता है। सम्पूर्ण शरीर पर भाप के अतिरिक्त नियमित रुप से जोडों पर स्थानीय भाप देने से भी लाभ प्राप्त होता है। इस रोग में गर्म कटि स्नान, गर्म रीढ स्नान, गर्म पैर स्नान, गर्म बॉह स्नान एवं सम्पूर्ण शरीर का गर्म स्नान भी लाभकारी प्रभाव रखता है। रोगी को वात दोष का शमन करने वाले औषध गुणों से युक्त द्रव्यों से एनीमा देने से भी रोग में लाभ मिलता है।

(ग) अग्नि तत्व चिकित्सा : आर्थराइटिस रोगी को सूर्य स्नान देने से रोग में विशेष लाभ मिलता है। इसके साथ साथ नारंगी रंग की बोतल में आवेशित जल का सेवन रोगी को कराने एवं लाल अथवा नारंगी रंग का प्रकाश जोडों पर डालने से रोग ठीक होता है।

(घ) वायु तत्व चिकित्सा : आर्थराइटिस रोगी की जोडों पर अत्यन्त सावधानीपूर्वक हल्के हाथों से धूप में मालिश करने से आराम मिलता है। सरसों के तेल में लहसुन की चार से छह कलिया पकाकर गुनगुने तेल से हल्के हल्के हाथों से जोडों पर मालिश करने से रोगी को अत्यन्त लाभ मिलता है। रोगी को हल्के हाथों से एवं वैज्ञानिक ढंग से मालिश करने से रक्त संचार व्रीव होता है एवं दर्द व सूजन में आराम मिलता है।

(ड) आकाश तत्व चिकित्सा : आर्थराइटिस रोगी की छोटे उपवास अथवा कल्प कराने से रोग में लाभ मिलता है। रोगी को उपवास काल में पर्याप्त मात्रा में जल का सेवन करना चाहिए, उपवास काल में गुनगुने जल में नींबू का रस एवं शहद मिलाकर भी सेवन किया जा सकता है।

प्रिय पाठकों, योग चिकित्सा एवं प्राकृतिक चिकित्सा के अध्ययन के उपरान्त अब आर्थराइटिस रोगी की आयुर्वेद चिकित्सा पर विचार करते हैं –

11.6.3 आर्थराइटिस रोग की आयुर्वेद चिकित्सा

आयुर्वेद शास्त्र में आर्थराइटिस रोग को **आमवात** के नाम से जाना जाता है। वहां पर आम शब्द को विषाक्त तत्व के संदर्भ में एवं वात को वायु के अर्थ में लिया गया है अर्थात जब विषाक्त अथवा दूषित वायु जोडों में एकत्र होकर दर्द एवं सूजन उत्पन्न करती है, तब वह रोगावस्था **"आमवात"** कहलाती है। आमवात को ही आधुनिक चिकित्सा विज्ञान आर्थराइटिस रोग कहता है।

आयुर्वेद शास्त्र में विषाक्त दूषित वायु को शरीर से निष्कासन ही इस रोग की मूल चिकित्सा के रुप में वर्णित किया गया है। इसके लिए रोगी की पंचकर्म चिकित्सा अत्यन्त प्रभावी चिकित्सा है। पंचकर्म के साथ साथ रोगी को निम्न औषध द्रव्यों का सेवन कराने से रोग में आराम मिलता है –

एक से तीन ग्राम गुग्मुल गर्म पानी के साथ रोगी को सेवन कराने से रोग में लाभ मिलता है।

रोगी को 1 से 3 ग्राम की मात्रा में पीसी हल्दी का चूर्ण एवं सौंठ समान मात्रा में मिलाकर सुबह–शाम नियमित सेवन कराने से दर्द एवं सूजन में लाभ प्राप्त होता है।

5 से 10 ग्राम मैथी दाने का चूर्ण सुबह गर्म जल के साथ सेवन कराने से रोगी को रोग में लाभ प्राप्त होता है।

चार से पांच लहसुन की कलियों को दूध में उबालकर रोगी को पिलाने से रोग में लाभ प्राप्त होता है।

लहसुन का रस कपूर में मिलाकर प्रभावित जोडों की मालिश करने से रोगी को आराम मिलता है।

रात्रिकाल में सोने से पूर्व प्रभावित जोडों पर गर्म सिरके से मालिश करने से दर्द एवं जकडन में आराम मिलता है।

रोगी को गर्म जल अथवा गुनगुने दूध के साथ त्रिफला चूर्ण का सेवन कराने से भी रोग में लाभ मिलता है।

प्रिय पाठकों, आर्थराइटिस रोग में एक्यूप्रेशर चिकित्सा का प्रयोग भी लाभकारी प्रीााव रखता है अतः अब आर्थराइटिस रोग की एक्यूप्रेशर चिकित्सा पर विचार करते हैं –

11.6.4 आर्थराइटिस रोग की एक्यूप्रेशर चिकित्सा

आर्थराइटिस रोग से सम्बन्धित निम्न लिखित दाब बिदुओं पर विधिपूर्वक दबाव डालते हैं –

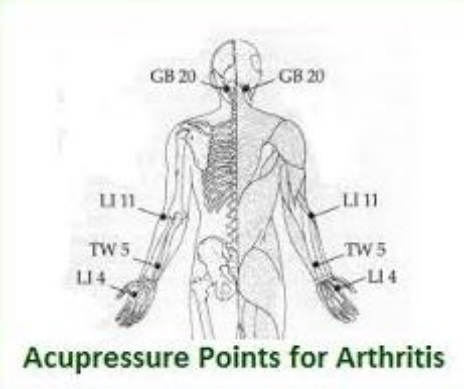

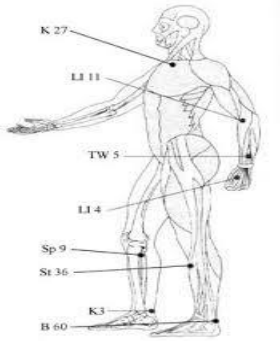

11.6.6 आर्थराइटिस रोग की प्राण चिकित्सा

आर्थराइटिस रोग से ग्रस्त होन पर रोगी के शरीर की कोशिकाओं में प्राण तत्व क्षीण पड जाता है एवं पंच प्राण अव्यवस्थित हो जाते है। प्राण चिकित्सा द्वारा उपचार कराने से रोगी के शरीर में प्राण ऊर्जा की वृद्धि होती है एवं पंच प्राण सुव्यवस्थित होते हैं।

परिणाम स्वरुप रोगी की रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित होती है तथा रोगी रोग पर विजय प्राप्त करता है।

11.6.7 आर्थराइटिस रोग की आहार चिकित्सा

आर्थराइटिस रोगी को निम्न लिखित पथ्य और अपथ्य आहार पर ध्यान देना चाहिए –

(क) पथ्य आहार – सेब, सन्तरा, अंगूर, पपीता, नारियल, तरबूज, खरबूजा, लौकी, कद्दू, गाजर, ककडी, खीरा, चना, मैथी आदि हरी पत्तेदार सब्जियां, अदरक, लहसुन, हरी धनिया, चौकरयुक्त आटा, मौसमी फल, सलाद एवं पोषक तत्वों से युक्त पौष्टिक आहार रोगी के लिए पथ्य है। इसके साथ साथ रोगी के लिए सब्जियों का सूप एवं फलों के जूस भी पथ्य है।

(ख) अपथ्य आहार – नमक, चीनी, चाय, कॉफी, सोफ्ट व कोल्ड डिंक्स जैसे पैप्सी व कोक, एल्कोहल, बाजार की मिठाईयां, चाकलेट, तला भुना चायनीज फूड, फास्ट फूड, जंक फूड, चावल, फूलगोभी, पत्तागोभी, पालक, खट्टी दही, वातवर्धक बासी, रुखा एवं पोषक तत्व विहीन भोजन रोगी के लिए अपथ्य है। धूम्रपान एवं एल्कोहल के सेवन से रोगी को पूर्णतया बचाना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त पथ्य एवं अपथ्य आहार के अनुसार रोगी को आहार कराने से रोग में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

11.7 आर्थराइटिस रोगी के लिए सावधानियां एवं सुझाव

(1) आर्थराइटिस रोग को बढने नही देना चाहिए अपितु रोग की प्रारम्भिक अवस्था में लक्षण प्रकट होते ही रोग पर ध्यान देते हुए आहार विहार संयम एवं वैकल्पिक चिकित्सा द्वारा तुरन्त रोग का प्रबन्धन कराना चाहिए।

(2) रोगी को एक स्थान पर एवं एक स्थिति में लम्बे समय तक बैठकर कार्य नही करना चाहिए।

(3) रोगी को अपने कार्य सही मुद्रा में ही करने चाहिए।

(4) रोगी को प्रातःकालीन भ्रमण करना चाहिए एवं पैदल चलने की आदत बनानी चाहिए।

(5) रोगी को नियमित रुप से प्रातःकाल धूप स्नान लेना चाहिए।

(6) रोगी को दर्द निवारक दवाईयों का लम्बे समय तक सेवन नही करना चाहिए।

(7) रोगी को आहार में फलों एवं सब्जियों का अधिक सेवन करना चाहिए तथा वातवर्धक खाद्य पदार्थो के सेवन से बचना चाहिए।

(8) रोगी को फ्रीज के ठंडे पानी का सेवन पूर्ण रुप से बंद कर देना चाहिए एवं उबले हुए गुनगुने पानी का ही सेवन करना चाहिए।

(9) रोगी को नियमित आसन प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करना चाहिए।

(10) सभी प्रकार के दुर्व्यसनों को पूर्ण रुप से छोड देना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त सावधानियों को ध्यान में रखने से रोग जल्दी ठीक होता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

1– **सत्य/ असत्य**

(क) रुमेटॉयड आर्थराइटिस एक प्रकार की ऑटो–इम्यून डिजीज है।

(ख) मूत्र में यूरिक एसिड की बढी मात्रा आर्थराइटिस रोग की और संकेत करती है।

(ग) आर्थराइटिस रोगी पर सदैव ठण्डे जल का प्रयोग ही करना चाहिए।

(घ) आर्थराइटिस रोगी को बलपूर्वक आसन कराने से रोगी को दर्द में आराम मिलता है।

(ङ) चावल, फूलगोभी, पत्तागोभी, पालक एवं दही आर्थराइटिस रोगी के लिए पथ्य आहार है।

2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) ग्रीक भाषा में आथ्रो (Arthro) का अर्थ ––––––– तथा आइटिस (Itis) का अर्थ ––––– होता है।

(ख) आयुर्वेद शास्त्र में आर्थराइटिस रोग को –––––––– के नाम से जाना जाता है।

(ग) दो अस्थियों के जुडनें के स्थान पर ———————— उपस्थित होता है

(घ) ———— आर्थराइटिस रोग का एक प्रमुख कारण है।

(ड) आर्थराइटिस रोग को लक्षणों के आधार पर ———————— चरणों में विभाजित किया जाता है।

3–बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) विश्व आर्थराइटिस दिवस कब मनाया जाता है। –

(a) 2 अक्टूबर (b) 5 जून

(c)12 अक्टूबर (d) 21 जून।

(ख) आर्थराइटिस रोग का लक्षण नही है –

(a) बुखार आना (b) पेट में दर्द व सूजन

(c) जोडों में दर्द व सूजन (d) त्वचा पर लाल चकते ।

(ग) आर्थराइटिस रोगी को क्या नही करना चाहिए –

(a) गर्म जल का सेवन (b) प्रतिदिन योगाभ्यास

(c) दर्द निवारक दवाईयों का सेवन (d) धूप सेवन।

(घ) ओस्टियोपोरोसिस रोगी के लिए अपथ्य आहार है –

(a) पालक (b) मैथी

(c) गाजर (d) सन्तरा ।

(ड) आर्थराइटिस रोग से ग्रस्त होने पर शरीर का तापक्रम कितना हो जाता है –

(a) 98.4 डिग्री फेरेहनाइट (b) 100 डिग्री फेरेहनाइट

(c) 98.4 डिग्री सेन्टीग्रेट (d) 100 डिग्री सेन्टीग्रेट।

11.7 सारांश–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई में आर्थराइटिस रोग के कारण, लक्षण एवं वैकल्पिक चिकित्सा पर प्रकाश डाला गया है। इकाई के प्रारम्भ में रोग के शाब्दिक अर्थ को समझाते हुए रोग के स्वरुप एवं प्रकारों को समझाया गया है। तत्पश्चात रोग के प्रमुख कारणों पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट किया गया है कि अधिक देर तक एक स्थिति में बैठकर कार्य करने, कम पैदल चलने, मोटापे, विकृत आहार एवं दोषपूर्ण जीवन शैली के कारण आर्थराइटिस रोग शरीर को जकड लेता है। इस रोग के कारण शरीर के जोडों में दर्द एवं सूजन उत्पन्न होती है। जोडों में यूरिक एसिड के किस्टल जमा होने लगते हैं जिनके कारण जोडों में गाठें पड जाती है। शरीर में जकडन, अकडन एवं थकान बहुत अधिक बढ जाती है। पिडित व्यक्ति के शरीर का तापक्रम बढा हुआ रहने लगता है। उसकी भूख कम हो जाती है तथा उसके शरीर का वजन तेजी से घटने लगता है। रोगी दर्द से छुटकारा पाने के लिए दर्द निवारक दवाईयों का सेवन करता है किन्तु इन दवाईयों से रोगी को स्थाई लाभ प्राप्त नही हो पाता है और रोग की गंभीरता और अधिक बढती जाती है। ऐसी अवस्था में आर्थराइटिस रोगी की वैकल्पिक चिकित्सा को इकाई में समझाया गया है।

इकाई में आगे रोग की वैकल्पिक चिकित्सा को समझाते हुए सर्वप्रथम योग चिकित्सा पर प्रकाश डाला गया है। नियमित रुप से षट्कर्मों, आसन, प्राणायाम एवं ध्यान आदि योगांगों का अभ्यास करने से रोगी के रोग पर नियंत्रण प्राप्त होता है। इसके उपरान्त प्राकृतिक चिकित्सा,

आयुर्वेद चिकित्सा, एक्यूप्रेशर चिकित्सा, प्राण चिकित्सा एवं आहार चिकित्सा के अर्न्तगत रोगी के लिए पथ्य और अपथ्य आहार का वर्णन इकाई में किया गया है।

11.8 पारिभाषिक शब्दावली–

शिथिलता	गतिहीनता
वेदना	पीडा अथवा दर्द
व्यापक	फैला हुआ अथवा विस्तृत
भग्न	हड्डी बीच से टूट जाना अथवा चटक जाना
संधिवात	जोड़ों के बीच में सूजन, दर्द एवं वात कुपित होना
फास्ट फूड	जल्दी पकने वाले मैगी एवं न्युडल्स आदि
चायनीज फूड	चाउमिन, मोमो आदि
जंक फूड	कोक व पैप्सी आदि सोफ्ट ड्रिंक्स
बॉयोकैमिकल्स	शरीर में उपस्थित रासायनिक तत्व

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.	सत्य	क. जोड, सूजन		क.	c
ख.	सत्य	ख. आमवात		ख.	b
ग.	असत्य	ग. साइनोवियल	ग.	c	
घ.	असत्य	घ. मोटापा		घ.	a
ड.	असत्य	ड. तीन		ड.	b

11.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 असाध्य रोगों की सरल चिकित्सा – डॉ0 नागेन्द्र कुमार नीरज, पापुलर बुक डिपो, जयपुर।
2 योग चिकित्सा विज्ञान – श्री आदित्य योगी, योग जीवन धाम ट्रस्ट, हरिद्वार।
3प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डॉ0 राकेश जिन्दल, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मोदी नगर (उ0प्र0)।
4 प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ0 टी0 एन0 श्रीवास्तव, मैत्रेयी प्रकाशन, नई दिल्ली।
5 वृहद आयुर्वेदिक चिकित्सा – डॉ0 ओम प्रकाश सक्सेना, हिन्दी सेवा सदन, मथुरा।
6 एक्यूप्रेशर – डा0 अतर सिंह, एक्यूप्रेशर हैल्थ सेटंर, चण्डीगढ।
7 कल्याण आरोग्य अंक – गीता प्रेस गोरखपुर।

11.11 सहायक पाठ्य सामग्री

1 मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान– प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता, सुमित प्रकाशन, आगरा।
2 स्वस्थ वृत्त विज्ञान – डॉ0 रामहर्ष सिंह, चौखम्बा प्रकाशन बनारस।
3. वैकल्पिक चिकित्सा – डा0 राजकुमार प्रुथी, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली।
4. वैकल्पिक चिकित्सा – डा0 आर0 एस0 विवेक , डायमण्ड पाकेट बुक्स, नई दिल्ली।

11.12 निबन्धात्मक प्रश्न–

1. आर्थराइटिस रोग के कारणों एवं लक्षणों पर प्रकाश डालिए।
2. आर्थराइटिस रोग की वैकल्पिक चिकित्सा को सविस्तार लिखिए।
3 आधुनिक समय में आर्थराइटिस रोग के बढते प्रभाव पर प्रकाश डालते हुए इससे बचाव के उपाय एवं प्रमुख सावधानियों को लिखिए।

इकाई 12 स्लिप डिस्क कारण, लक्षण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 स्लिप डिस्क रोग का सामान्य परिचय
12.4 स्लिप डिस्क रोग के कारण
12.5 स्लिप डिस्क रोग के लक्षण
12.6 स्लिप डिस्क रोग की वैकल्पिक चिकित्सा
12.6.1 स्लिप डिस्क रोग की योग चिकित्सा
12.6.2 स्लिप डिस्क रोग की प्राकृतिक चिकित्सा
12.6.3 स्लिप डिस्क रोग की आयुर्वेद चिकित्सा
12.6.4 स्लिप डिस्क रोग की एक्यूप्रेशर चिकित्सा
12.6.5 स्लिप डिस्क रोग की प्राण चिकित्सा
12.6.6 स्लिप डिस्क रोग की आहार चिकित्सा
12.7 स्लिप डिस्क रोग के लिए सावधानियां एवं सुझाव
12.8 सारांश
12.8 पारिभाषिक शब्दावली
12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
12.11 सहायक पाठ्य सामग्री
12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, आपने पूर्व की इकाई में आपने ओस्टियोपोरोसिस, सर्वाइकल स्पोण्डोलाइटिस एवं आर्थाराइटिस रोगों के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। यह सभी अस्थि संस्थान से सम्बधित रोग हैं जो वर्तमान समय में बहुत तेजी से समाज में बढते जा रहें हैं। वर्तमान समय की भागदौड भरी व्यस्तम जीवनशैली एवं विकृत आहार विहार के कारण इन रोगों से ग्रस्त रोगियों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है।

इन रोगों में भी कमर दर्द ऐसा सामान्य एवं व्यापक रोग है जिसका सामना प्रायः अधिकांश लोगों को अपने जीवन में करना ही पडता है। इनमें से जहाँ कुछ व्यक्तियों को यह दर्द कभी कभी सताता है जो कुछ समय के उपरान्त ठीक हो जाता है किन्तु कुछ व्यक्ति इस कमर दर्द से स्थाई रुप से ही ग्रस्त रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों में आगे चलकर यह कमर दर्द स्लिप डिस्क नामक रोग में परिर्वतित हो जाता है। इस रोग से ग्रस्त होने पर इस दर्द की गंभीरता इतनी अधिक बढ जाती है कि इन लोगों का घूमना फिरना एवं कार्य करना लगभग बंद सा हो जाता है और ये लोग बिस्तर पकड लेते हैं।

यह रोग बहुत तेजी से समाज में फैलता जा रहा है। स्पाइन सोसायटी ऑफ इण्डिया की रिपोर्ट के अनुसार भारत में 10 से 15 प्रतिशत लोग किसी ना किसी रुप में कमर दर्द के शिकार हैं। यद्यपि यह कमर दर्द किसी भी आयु वर्ग के लोगों को हो सकता

है किन्तु 30 से 50 वर्ष की आयुवर्ग के लोग इसकी अधिक चपेट में आते हैं। रोगियों की यह संख्या रोग की गंभीरता एवं व्यपकता की और स्पष्ट संकेत करती है।

प्रिय पाठकों, अब आपके मन में यह प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है कि यह स्लिप डिस्क रोग क्यों होता है अर्थात इसके क्या क्या कारण होते हैं, इसके शरीर में लक्षण क्या क्या होते हैं तथा इस रोग की वैकल्पिक चिकित्सा क्या होती है, अतः अब हम स्लिप डिस्क रोग से सम्बन्धित इन बिंदुओं पर सविस्तार विचार करते हैं।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- स्लिप डिस्क रोग का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- स्लिप डिस्क रोग की उत्पत्ति के कारणों को जान सकेगें।
- स्लिप डिस्क रोग के लक्षणों को समझाने में सक्षम हो सकेंगे।
- स्लिप डिस्क रोग की वैकल्पिक चिकित्सा को जान सकेगें।
- स्लिप डिस्क रोग के सम्बन्ध में विशेष सावधानियों एवं अन्य महत्वपूर्ण बिन्दुओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

12.3 स्लिप डिस्क रोग का सामान्य परिचय

प्रिय विधार्थियों, स्लिप डिस्क अग्रेंजी भाषा का शब्द है जिसमें स्लिप का अर्थ फिसलने से और डिस्क का अर्थ मेरुदण्ड की कशेरुका से होता है अर्थात वह अवस्था जिसमें मेरुदण्ड की कशेरुका अपने स्थान से फिसल जाती है, स्लिप डिस्क रोग के नाम से जाना जाता है। इस रोग का सीधा सम्बन्ध हमारी रीढ अर्थात मेरुदण्ड से है अतः स्लिप डिस्क रोग को जानने के लिए हमें मानव रीढ की संरचना को समझना आवश्यक है। मानव रीढ की संरचना इस प्रकार होती है –

मानव रीढ का निमार्ण विभिन्न आकार की छोटी छोटी कशेरुकाओं (खण्डों) के मिलने से होता है। बाल्यावस्था में इन कशेरुकाओं की संख्या 33 एवं व्यस्क अवस्था में इनकी संख्या 26 होती है। इन 26 कशेरुकाओं को निम्न लिखित पाँच वगों में वर्गीकृत किया जाता है–

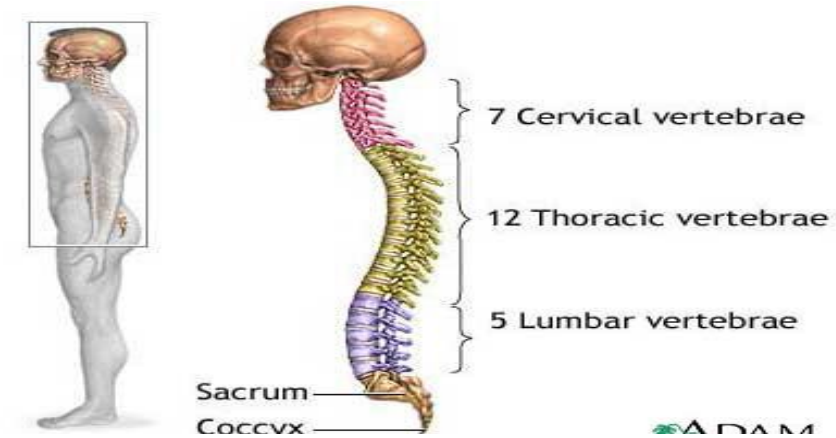

क्रमांक	वर्ग का नाम	कशेरुकाओं की संख्या
1	गर्दन (Cervical)	07
2	वक्षीय (Thorasic)	12
3	कटि (Lumber)	05
4	त्रिकास्थि (Sacrum)	01
5	कोसेजी (Coseyse)	01

उपरोक्त 26 कशेरुकाएं एक निश्चित क्रम में आपस में जुडी होती हैं तथा इन कशेरुकाओं को मध्य मांस की गद्दी रुप में उपास्थियां (कार्टिलेज) उपस्थित होती हैं। ये उपास्थियां रेशेदार होती हैं जिनका बाहरी भाग कुछ सख्त तथा आन्तरिक भाग जेली के समान मुलायम होता है। इनकी उपस्थिति के कारण रीढ में लचीलापन बनता है तथा रीढ की कशेरुकाएं आपस में नही टकराती है। इसके साथ साथ गिरने, फिसलने, कूदने अथवा अन्य चोटों से भी ये उपास्थियां रीढ की रक्षा का कार्य करती हैं किन्तु गलत मुद्राओं में अधिक कार्य करने, अचानक झटका लगने, चोट लगने, भारी वजन उठाने अथवा अन्य सम्बन्धित कारणों के परिणामस्वरुप जब उपास्थि पर अधिक दबाव पडता है तब इनका आन्तरिक जेली वाला भाग फूलकर बाहर आ जाता है, रीढ की वह अवस्था जिसमें कार्टिलेज फूल कर बाहर की ओर निकल जाती है तथा कटि क्षेत्र की कशेरुकाएं अपने मूल स्थान से फिसल जाती है यह **स्लिप डिस्क** नामक रोग कहलाता है।

जिज्ञासु पाठकों, अब आपके मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न होनी स्वाभाविक ही है कि किन–किन कारणों से यह रोग उत्पन्न होता है एवं कौन कौन से कारक इस रोग को बढा देते हैं अतः अब स्लिप डिस्क रोग को उत्पन्न करने वाले महत्वपूर्ण कारणों पर सविस्तार विचार करते हैं –

12.4 स्लिप डिस्क रोग के कारण

प्रिय विधार्थियों, आज के भागदौड भरे स्पर्धात्मक जीवन में व्यक्ति की दिनचर्या एवं जीवनशैली अव्यवस्थित रहती है, जिसका शरीर पर नकारात्मक प्रभाव पडता है और शरीर में विकृतियां अर्थात रोग उत्पन्न होते हैं। स्लिप डिस्क एक ऐसी ही विकृत जीवन शैली (Life Style Disorder) से सम्बन्धित रोग है जो धीरे धीरे शरीर में आकर शरीर को जकड लेता है। इस रोग में कमर दर्द धीरे धीरे बढता हुआ गंभीर रुप धारण कर लेता है और पीठ के निचले भाग में बहुत तेज दर्द रहने लगता है। शरीर में इस रोग की उत्पत्ति के निम्न लिखित कारण होते हैं –

(1) रीढ पर चोट अथवा अचानक झटका लगना : रीढ की चोट स्लिप डिस्क रोग का सबसे प्रमुख एवं महत्वपूर्ण कारण है। रीढ के कटि क्षेत्र की कशेरुकाओं पर अचानक चोट लगने के कारण इन कशेरुकाओं का अपने मूल स्थान से जाना स्लिप डिस्क रोग को जन्म देता है। इसी प्रकार सडक में गढढे से तथा स्पीड ब्रेकर आदि से तेजी से गुजरने पर रीढ में अचानक झटका लगने के कारण भी स्लिप डिस्क रोग पैदा होता है।

(2) गलत मुद्राओं में झुककर अधिक कार्य करना : प्रिय पाठकों, झुककर कार्य करने में सबसे अधिक दबाव रीढ के कटि क्षेत्र पर पडता है। यदि गलत मुद्रा में सामने की

और झुककर अधिक समय तक कार्य किया जाता है तब इससे कमर दर्द उत्पन्न होता है और यदि कार्य करने की मुद्रा को सही नही किया जाए तब ऐसी अवस्था में कमर दर्द स्लिप डिस्क रोग का रुप ग्रहण कर लेता है। सामने की और अधिक झुककर घरेलू कार्य करने, कार्यालय में लम्बे समय तक झुककर बैठते हुए कार्य करने, लम्बी ड्राइविंग करने तथा कम्प्यूटर आदि पर झुककर कार्य करना इस रोग के प्रमुख कारण है।

झुककर अधिक कार्य करने से रीढ की उपास्थियों के घिस जाने के कारण रीढ की कशेरुकाएं आपस में टकराने लगती है जिससे कमर दर्द, लोवर बैक पैन एवं स्लिप डिस्क रोग पैदा होता है।

(3) बढती उम्र (Age Factor) : स्लिप डिस्क रोग की उत्पत्ति में उम्र भी एक महत्वपूर्ण कारक है। उम्र बढने पर अस्थियों, उपास्थियों के साथ साथ मांसपेशियों में कमजोरी एवं कठोरता बढना स्वाभाविक ही होता है। 35 से 45 वर्ष की आयु के उपरान्त अस्थियों, उपास्थियों एवं मांसपेशियों में कमजोरी एवं कठोरता बढने पर रीढ में कमजोरी उत्पन्न होती है और इसके परिणाम स्वरुप स्लिप डिस्क रोग की संभावना बढ जाती है।

(4) मोटापा : मोटापा स्लिप डिस्क रोग का एक प्रमुख कारण है। शरीर का वजन बढने रीढ की कशेरुकाओं एवं कशेरुकाओं के मध्य उपस्थित उपास्थियों पर दबाव बढता है इस दबाव के परिणाम स्वरुप कशेरुकाओं एवं उपास्थियों में विकृति उत्पन्न होती है जो आगे चलकर स्लिप डिस्क रोग को उत्पन्न करती है।

(5) विकृत आहार का सेवन : पोषक तत्वों से हीन विकृत आहार का सेवन करने से रीढ की कशेरुकाओं एवं उपास्थियों में कमजोरी पैदा होती है। विशेष रुप से सोफ्ट कोल्ड डिक्स जैसे पैप्सी और कोक का अधिक सेवन करने से अस्थियों एवं मांसपेशियों में कमजोरी पैदा होती है। इसके अतिरिक्त वात वर्द्धक भोज्य पदार्थों का अधिक सेवन कमर दर्द एवं स्लिप डिस्क रोग का प्रमुख कारण है।

(6) जीवन शैली (Life Style) : स्लिप डिस्क रोग का विकृत जीवनशैली के साथ सीधा सम्बन्ध है। आधुनिक चिकित्सक स्लिप डिस्क रोग को जीवन शैली जनित रोग की संज्ञा देते है। इस रोग के प्रमुख कारणों में रात्रिकाल में देर से सोना, प्रातःकाल देर से उठना, विकृत आहार करना, सद्वृत्त का अपालन करना एवं र्दुव्यसनों में लिप्त रहने से शरीर स्लिप डिस्क रोग से ग्रस्त हो जाता है।

(7) यौगिक आसन–प्राणायाम एवं व्यायाम नही करने के कारण : यौगिक आसन–प्राणायाम एवं व्यायाम का नियमित अभ्यास करने से अस्थियां, उपास्थियां स्वस्थ एवं लचीली बनती हैं जबकि पूर्णतया श्रमहीन रहने से तथा आसन–प्राणायाम व व्यायाम नही करने से अस्थियां एवं उपास्थियां कमजोर एवं कठोर बनती हैं। अस्थियों एवं उपास्थ्यिों का कमजोर एवं कठोर होने से स्लिप डिस्क रोग की संभावना बढ जाती है।

(8) कुछ चिकित्सक अधिक आयु में महिलाओं के गर्भधारण को भी स्लिप डिस्क रोग का कारण मानते हैं।

(9) एक हाथ से अधिक वजन अथवा भारी वस्तु उठाना स्लिप डिस्क रोग को जन्म देता है।

(10) अचानक सीढीयों से पैर फिसलना अथवा गिरना स्लिप डिस्क रोग को जन्म देता है।

प्रिय पाठकों, इस प्रकार उपरोक्त कारणों के परिणामस्वरुप शरीर स्लिप डिस्क रोग से ग्रस्त हो जाता है। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि स्लिप डिस्क रोग से ग्रस्त होने पर रोगी में क्या क्या लक्षण प्रकट होते हैं अतः अब स्लिप डिस्क रोग के लक्षणों पर विचार करते हैं –

11.5 स्लिप डिस्क रोग के लक्षण

स्लिप डिस्क रोग का प्रारम्भ सामान्य कमर दर्द से होता है। रोगी का कमर दर्द एवं जकडन बढती हुई आगे चलकर गंभीर रुप धारण कर लेता है तथा रोगी को खडे होने एवं चलने में व्रीव कमर दर्द होता है इस रोग से ग्रस्त होने पर शरीर में निम्न लिखित लक्षण प्रकट होते हैं –

(1) कमर के निचले भाग में तेज दर्द (लोवर बैक पेन) होना : प्रिय पाठकों, स्लिप डिस्क रोग का मूल लक्षण लोवर बैक पेन है। कमर के निचले भाग में तेज दर्द होना स्लिप डिस्क रोग की ओर संकेत करता है। इस रोग से ग्रस्त होने पर रोगी को कमर के निचले भाग में भयंकर दर्द होता है। यहां स्लिप डिस्क रोग के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण तथ्य यह कि स्लिप डिस्क रोग का सम्बन्ध रीढ की केवल L-1 से L-5 कशेरुकाओं से होता है तथा रोग से ग्रस्त होने पर रोगी को रीढ की इन्ही कशेरुकाओं में व्रीव वेदना उत्पन्न होती है।

(2) रीढ से निकलने वाली तंत्रिकाओं (नाडियों) का दब जाना : स्लिप डिस्क रोग में रोगी की रीढ से निकलने वाली तंत्रिकाएं दब जाती है जिसके कारण रोगी के

विभिन्न अंगों में सुन्नपन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। कुछ रोगियों में स्लिप डिस्क के कारण सियाटिका नाडी भी दब जाती है जिसके कारण ये रोगी सियाटिका दर्द से भी ग्रस्त हो जाते हैं। स्लिप डिस्क रोगी में नाडियों के दबने के कारण पेरेलाइसिस (जकवा) रोग की संभावना भी बढ जाती है।

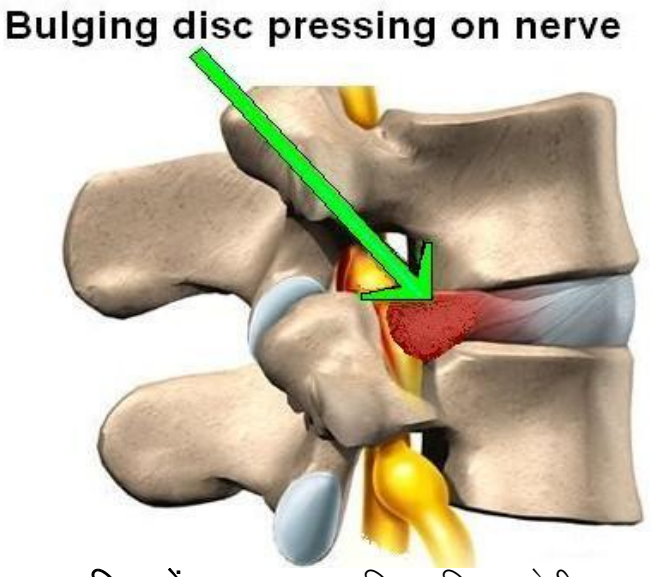

(3) शरीर का एक दिशा में झुक जाना : स्लिप डिस्क रोगी का शरीर दाहिनी अथवा बायीं और झुक जाता है। रोग से ग्रस्त होने पर रोगी रीढ की सीधा रखकर चलने में दर्द अथवा असुविधा का अनुभव करता है जिस कारण वह शरीर के भार को दाहिनी अथवा बायीं और झुकाकर चलने लगता है। स्लिप डिस्क रोगी को दूर से देखकर ही उसके दर्द की अनुभूति होने लगती है। इस प्रकार इस रोग से ग्रस्त होने पर रोगी के शरीर की स्थिति एवं आकृति दोनों ही विकृत हो जाती है।

(4) दैनिक कार्यों में अनियमितता : प्रिय पाठकों, रीढ हमारे शरीर एवं समस्त शारीरिक कार्यों का मूल आधार होती है। रीढ में विकृति उत्पन्न होने से समस्त शारीरिक कार्यों में बाधा उत्पन्न होने लगती है और रोगी अपने सामान्य दैनिक कार्यों को करने में भी असुविधा अथवा असर्मथता अनुभव करने लगता है।

यहां तक कि बैठकर शौच आदि से निवृत्त होने में भी रोगी को असुविधा होने लगती है। इसके अतिरिक्त वह शारीरिक कार्यों को करने से बचने लगता है।

: **(5) मल–मूत्र पर नियंत्रण का अभाव :** स्लिप डिस्क रोग से ग्रस्त होने पर रोगी का नाडियों पर नियंत्रण कम होने लगता है। रोगी का यूरिनरी ब्लेडर एवं एनस की मांसपेशियों पर भी नियंत्रण कम हो जाता है जिसके परिणाम स्वरुप रोगी के मल–मूत्र त्यागने में अनियमितता होने लगती है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में स्लिप डिस्क रोग की जाँच हेतु निम्न तकनिकों को विकसित किया है –

(1) X- Ray : एक्स रे किरणों को रीढ पर डालकर रोग का पता किया जाता है।

(2) C.T. (Computed Tomography) Scan : इसमें कम्प्यूटर द्वारा एक्स किरणें रीढ पर डालकर रीढ की आकृति एवं आकार की जाँच करते हुए रोग का पता किया जाता है।

(3) M.R.I. (Magnetic Resonance Imaging) : इसमें शक्तिशाली चुम्बक की किरणों को कम्प्यूटर तकनीक द्वारा रीढ पर डालकर रीढ की त्रिकोणीय आकृति की जाँच करते हुए रोग का पता किया जाता है।

(4) Myelogram : इसमें एक चमकीले द्रव्य को रीढ में इन्जेक्ट करते हुए रीढ पर एक्स किरणें डालकर रोग की जाँच की जाती है।

इस प्रकार उपरोक्त जाँचों के द्वारा स्लिप डिस्क रोग का पता किया जाता है। प्रिय पाठकों, रोग के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त अब आपके मन में स्लिप डिस्क रोग की वैकल्पिक चिकित्सा को जानने की इच्छा और अधिक प्रबल हो गयी होगी अतः अब स्लिप डिस्क रोग की वैकल्पिक चिकित्सा पर विचार करते हैं –

12.6 स्लिप डिस्क रोग की वैकल्पिक चिकित्सा

स्लिप डिस्क रोग में एलोपैथिक चिकित्सक रोगी को एंटी इन्फलेमेटी ड्रग्स (ब्रुफेन, डिक्लोफेन, पेरासिटामोल आदि) के सेवन की सलाह देता है लेकिन इन दवाई का सेवन करने से रोगी को कुछ समय के लिए दर्द से राहत तो मिल जाती है किन्तु रोग समूल दूर नही हो पाता है। रोगी पर दवाईयों का असर कम होते ही पुनः दर्द की चपेट में आ जाता है। इस रोग में अग्रेंजी दवाईयों का सेवन करने की तुलना में वैकल्पिक उपचार अधिक लाभकारी एवं प्रभावी सिद्ध होता है। इस रोग की वैकल्पिक चिकित्सा इस प्रकार है

12.6.1 स्लिप डिस्क रोग की योग चिकित्सा

(क) षट्कर्म का प्रभाव :षट्कर्मो का अभ्यास करने से शरीर का शोधन होता है एवं वात, पित्त, कफ दोष सम बनते है। शरीर का शोधन होने तथा दोषों के सम बनने से रोगी को दर्द में आराम मिलता है

(ख) आसन का प्रभाव –स्लिप डिस्क रोग में आसनों का अभ्यास बहुत महत्व पूर्ण भूमिका निभाता है। रोगी को विधि पूर्वक एवं सावधानी पूर्वक आसनों का अभ्यास कराने से रोग एवं दर्द में तुरन्त आराम मिलता है। स्लिप डिस्क रोगी को निम्नलिखित तीन चरणों में आसनों का अभ्यास कराना चाहिए–

प्रथम चरण में रोग की त्रीव अवस्था में जब रोगी भयंकर दर्द से ग्रस्त होता है तब रोगी को मकरासन, मरकटासन, सर्पासन व शवासन का अभ्यास कराना चाहिए।

द्वितीय चरण में रोग की सामान्य अवस्था में जब रोगी दर्द से आराम मिल जाता है तब रोगी को अर्द्ध भुजंगासन, अर्द्धशलभासन, अर्द्धचक्रासन, मार्जरी आसन का अभ्यास धीरे धीरे एवं सावधानीपूर्वक कराना चाहिए।

तृतीय चरण में रोगावस्था से निकलने पर रोगी को अपनी क्षमतानुसार चक्रासन, भुजांगासन, शलभासन, उष्ट्रासन एवं सूर्य नमस्कार आदि रीढ को स्वस्थ व मजबूत बनाने वाले आसनों का नियमित अभ्यास कराना चाहिये।

स्लिप डिस्क रोगी को कोई भी सामने की ओर झुककर करने वाले आसन नही कराने चाहिये।

(ग) मुद्रा एवं बन्ध का प्रभाव : रोगी को सामान्य रुप से धीरे धीरे मुद्राओं एवं बन्धों का अभ्यास कराना चाहिए।

(घ) प्रत्याहार का प्रभाव : इन्द्रियों पर संयम, सुव्यवस्थित दिनचर्या एवं शुद्ध सात्विक आहार विहार करने से रोग पर शीघ्र नियंत्रण प्राप्त होता है।

(ड) प्राणायाम का प्रभाव : रोग की व्रीव अवस्था में जब रोगी आसनों का अभ्यास करने में असर्मथ होता है तब ऐसी अवस्था में रोगी को प्राणायामों का अभ्यास कराना चाहिए। प्राणायाम का अभ्यास कराने से रोगी की प्राण ऊर्जा में वृद्धि होती है तथा रोग दूर होता है। रोगी को नाडी शोधन प्राणायाम के साथ साथ ऊर्जा प्रदान करने वाले प्राणायामों जैसे सूर्यभेदी, उज्जायी, भस्त्रिका एवं भ्रामरी प्राणायामों का अभ्यास कराना चाहिए।

(च) ध्यान एवं समाधि का प्रभाव : ध्यान एवं समाधि के अर्न्तगत रोगी को सकारात्मक ऊर्जा प्राप्त होती है जिससे रोगी नकारात्मक भावों एवं रोग की नकारात्मक ऊर्जा से बाहर निकलकर रोग पर विजय प्राप्त करता है।

प्रिय पाठकों, इस प्रकार योग चिकित्सा के द्वारा स्लिप डिस्क रोग पर नियंत्रण प्राप्त होता है। योग चिकित्सा के साथ साथ प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा भी स्लिप डिस्क रोग में शीघ्र एवं स्थाई लाभ प्राप्त होता है। स्लिप डिस्क रोग की प्राकृतिक चिकित्सा इस प्रकार है –

12.6.2 स्लिप डिस्क रोग की प्राकृतिक चिकित्सा

स्लिप डिस्क रोगी को मिट्टी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तत्वों द्वारा इस प्रकार चिकित्सा देने से लाभ प्राप्त होता है –

(क) मिट्टी तत्व चिकित्सा : स्लिप डिस्क रोगी को रीढ पर गर्म मिट्टी की पट्टी देने से दर्द में तुरन्त लाभ प्राप्त होता है।

(ख) जल तत्व चिकित्सा : स्लिप डिस्क रोगी रीढ पर स्थानीय भाप देने से भी लाभ प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त रोगी को समय समय पर भाप स्नान देना चाहिए। स्लिप डिस्क रोगी को सदैव गर्म अथवा गुनगुने जल का सेवन करना चाहिए।

(ग) अग्नि तत्व चिकित्सा : स्लिप डिस्क रोगी को सूर्य स्नान देने से दर्द में आराम मिलता है। इसके साथ साथ नारंगी रंग की बोतल में आवेशित जल का सेवन रोगी को कराने एवं लाल अथवा नारंगी रंग का प्रकाश रीढ पर डालने से दर्द में आराम एवं रोग ठीक होता है।

(घ) वायु तत्व चिकित्सा : स्लिप डिस्क रोगी की रोग की व्रीव अवस्था में मालिश नही करनी चाहिए अपितु रीढ की कशेरुकाओं को अत्यन्त सावधानीपूर्वक हल्के हाथों से धूप में सहलाने से रक्त संचार व्रीव होता है एवं रोगी को दर्द में आराम मिलता है। रोग में कुछ आराम पडने पर सरसों के तेल में लहसुन की चार से छह कलिया पकाकर गुनगुने तेल से हल्के हल्के हाथों से रीढ की कशेरुकाओं पर मालिश करने से रोगी को अत्यन्त लाभ मिलता है।

(ड) आकाश तत्व चिकित्सा : स्लिप डिस्क रोगी को छोटे उपवास अथवा कल्प कराने चाहिए। रोगी को उपवास काल में सकारात्मक चिन्तन रखते हुए पर्याप्त मात्रा में जल पीना चाहिए तथा जल में नींबू का रस एवं शहद मिलाकर भी सेवन कराना चाहिए।

इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा के उपचार से स्लिप डिस्क रोगी को रोग में काफी आराम मिलने लगता है। प्राकृतिक चिकित्सा से प्राप्त यह आराम स्थाई एवं दुष्प्रभाव रहित होता है।

अब स्लिप डिस्क रोगी रोगी की आयुर्वेद चिकित्सा पर विचार करते हैं –

12.6.3 स्लिप डिस्क रोग की आयुर्वेद चिकित्सा

स्लिप डिस्क रोगी की आयुर्वेद चिकित्सा में सर्वप्रथम रोगी की पंचकर्म चिकित्सा की जाती है। इसके अर्न्तगत रोगी की स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन एवं रक्त मोक्षण आदि कर्मों द्वारा शरीर शुद्धि कर दोषों को सम बनाया जाता है। पंचकर्म के साथ साथ रोगी को निम्न औषध द्रव्यों का सेवन कराने से रोग एवं दर्द में आराम मिलता है –

एक से तीन ग्राम गुग्गुल गर्म पानी के साथ रोगी को सेवन कराने से रोग में लाभ मिलता है।

रोगी को 1 से 3 ग्राम की मात्रा में पीसी हल्दी का चूर्ण एवं सौंठ समान मात्रा में मिलाकर सुबह–शाम नियमित सेवन कराने से दर्द एवं सूजन में लाभ प्राप्त होता है।

5 से 10 ग्राम मैथी दाने का चूर्ण सुबह गर्म जल के साथ सेवन कराने से रोगी को रोग में लाभ प्राप्त होता है। मैथी एवं बथुआ के पत्तों को हल्की भाप उबालकर रोगी को सेवन करना चाहिए।

चार से पांच लहसुन की कलियों को दूध में उबालकर रोगी को पिलाने से रोग में लाभ प्राप्त होता है।

रोगी को गर्म जल अथवा गुनगुने दूध के साथ त्रिफला चूर्ण का सेवन कराने से भी रोग में लाभ मिलता है।

12.6.4 स्लिप डिस्क रोग की एक्यूप्रेशर चिकित्सा

स्लिप डिस्क रोग से सम्बन्धित रीढ (Spine) के निम्न लिखित दाब बिदुओं पर विधिपूर्वक दबाव डालते हैं –

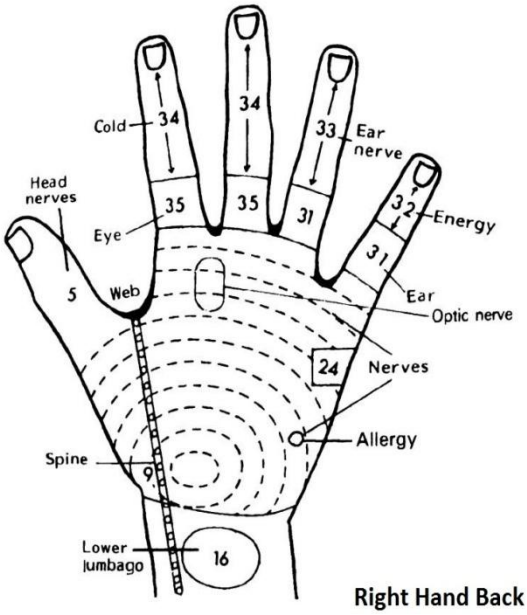

Right Hand Back

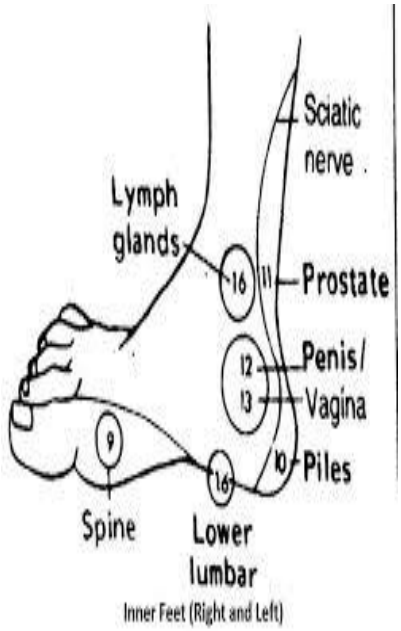

Inner Feet (Right and Left)

12.6.5 स्लिप डिस्क रोग की प्राण चिकित्सा

प्रिय पाठकों, मानव शरीर में रीढ प्राण तत्व का प्रमुख स्थान है। रीढ में प्राण का संचरण अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है, स्लिप डिस्क रोग से ग्रस्त होने पर रीढ में प्राण का प्रवाह बाधित होने लगता है। प्राण चिकित्सा द्वारा रीढ में प्राण का प्रवाह सुचारु होने से रोगी की प्राण ऊर्जा में वृद्धि होती है एवं शरीर में स्थित पंच प्राण सुव्यवस्थित होते हैं।

12.6.6 स्लिप डिस्क रोग की आहार चिकित्सा

स्लिप डिस्क रोगी को निम्न लिखित पथ्य और अपथ्य आहार पर ध्यान देना चाहिए –

(क) पथ्य आहार – सेब, सन्तरा, अंगूर, पपीता, नारियल, तरबूज, खरबूजा, लौकी, कद्दू, गाजर, ककडी, खीरा, चना, मैथी आदि हरी पत्तेदार सब्जियां, अदरक, लहसुन, हरी धनिया, चौकरयुक्त आटा, मौसमी फल, सलाद एवं पोषक तत्वों से युक्त पौष्टिक आहार रोगी के लिए पथ्य है। इसके साथ साथ रोगी के लिए सब्जियों का सूप एवं फलों के जूस भी पथ्य है। रोगी को उष्ण प्रकृतियुक्त खाद्य पदार्थों जैसे सौंट, अदरक, काली मिर्च, लौंग, दालचीनी एवं लहसुन का अधिक सेवन करना चाहिए।

(ख) अपथ्य आहार – नमक, चीनी, चाय, कॉफी, सोफ्ट व कोल्ड डिंक्स जैसे पैप्सी व कोक, एल्कोहल, बाजार की मिठाईयां, चाकलेट, तला भुना चायनीज फूड, फास्ट फूड, जंक फूड, चावल, फूलगोभी, पत्तागोभी, पालक, खट्टी दही, वातवर्धक बासी, रुखा एवं पोषक तत्व विहीन भोजन रोगी के लिए अपथ्य है। धूम्रपान एवं एल्कोहल के सेवन से रोगी को पूर्णतया बचाना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त पथ्य एवं अपथ्य आहार के अनुसार रोगी को आहार कराने से रोग में शीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

12.7 स्लिप डिस्क रोगी के लिए सावधानियां एवं सुझाव

(1) सदैव सीधे बैठने की आदत बनायें, जहाँ पर भी बैठे, रीढ को सीधा करके बैठे तथा रीढ को झुकाकर कोई भी कार्य नही करना चाहिए।

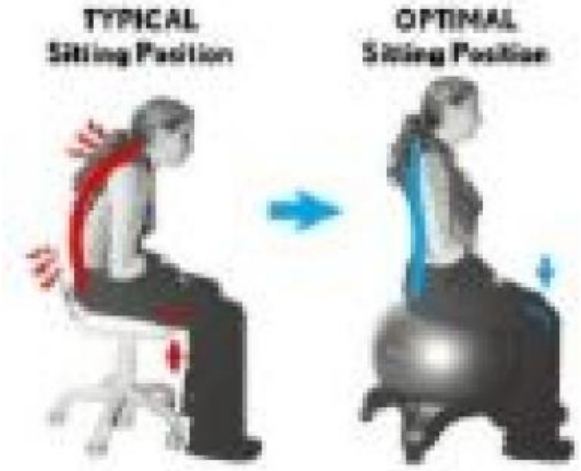

(2) यदि एक स्थान पर बैठकर अधिक देर तक कार्य करना हो तो बीच–बीच में उठकर ठहलना चाहिए।

(3) नियमित रुप से रीढ को लचीली एवं स्वस्थ बनाने वाले आसनों एवं व्यायामों का अभ्यास करना चाहिए।

(4) वाहनों को चलाते समय गढ्ढों एवं स्पीड ब्रेकरों का ध्यान रखते हुये इनके झटको से रीढ को बचाना चाहिए तथा लम्बी यात्रा से बचना चाहिए।

(5) कमर में तेज दर्द होने पर कमर की बैल्ट का प्रयोग करना चाहिये तथा गर्म जल की बोतल से सिकाई करनी चाहिए, रोग की त्रीव अवस्था में पूर्ण विश्राम (Bed Rest) करना चाहिए।

(6) रीढ में लोवर बैक पेन (कमर दर्द) शुरु होते ही इसके निवारण पर ध्यान केंद्रित करते हुये रोग को आगे नही बढने देना चाहिए।

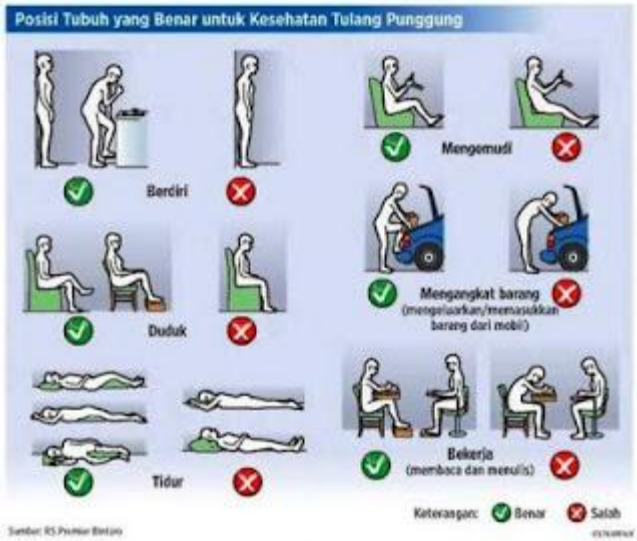

इस प्रकार उपरोक्त सावधानियों को ध्यान में रखने से रोग जल्दी ठीक होता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

1– **सत्य /असत्य**

(क) रीढ की कशेरुकाओं के मध्य उपस्थित उपास्थियों का बाहरी भाग जेली के समान मुलायम तथा आन्तरिक भाग कुछ सख्त होता है।

(ख) स्लिप डिस्क रोगी को रीढ पर गर्म मिट्टी की पट्टी देने से दर्द में तुरन्त लाभ प्राप्त होता है।

(ग) यह रोग रीढ की L-1 से L-5 कशेरुकाओं से सम्बन्ध रखता है।

(घ) स्लिप डिस्क रोगी की रोग की त्रीव अवस्था में मालिश करनी चाहिए।

(ड) स्लिप डिस्क रोगी को कोई भी सामने की ओर झुककर करने वाले आसन नही कराना चाहिये।

2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

(क) कटि क्षेत्र की कशेरुका का अपने मूल स्थान से फिसलना ———————— नामक रोग कहलाता है।

(ख) कुछ रोगियों में स्लिप डिस्क के कारण ———————— नाडी दब जाती है।

(ग) एलोपैथिक चिकित्सक स्लिप डिस्क रोगी को ———————— ड्रग्स के सेवन की सलाह देता है

(घ) स्लिप डिस्क ———————— से सम्बन्धित रोग है

(ड) प्राणायाम का अभ्यास कराने से रोगी की ———————— में वृद्धि होती है।

3–बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) एक व्यस्क मनुष्य की रीढ में कितनी कशेरुकाएं होती है

(a) 27 (b) 25

(c) 26 (d) 18

(ख) स्लिप डिस्क रोगी को आयुर्वेद में सर्वप्रथम क्या चिकित्सा की जाती है

(a) पंचकर्म चिकित्सा (b) षट्कर्म चिकित्सा

(c) मर्म चिकित्सा (d) औषध चिकित्सा

(ग) स्लिप डिस्क रोगी को किस रंग की बोतल में आवेशित जल का सेवन कराया जाता है

(a) नीले रंग (b) हरे रंग

(c) पीले रंग (d) लाल रंग।

(घ) स्लिप डिस्क रोगी को कैसा आहार लेना चाहिए

(a) उष्ण प्रकृति युक्त (b) शीत प्रकृति युक्त

(c) वात प्रकृति युक्त (d) सभी गुणों युक्त ।

(ड) स्लिप डिस्क रोग का लक्षण है

(a) लोवर बैक पेन (b) सियाटिका दर्द

(c) शरीर का एक ओर झुकना (d) सभी ।

12.8 सारांश–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का प्रारम्भ समाज में कमर दर्द एवं स्लिप डिस्क रोगियों की लगातार बढती संख्या को बताने वाले आंकडों से किया गया है। इकाई के प्रारम्भ में ही स्लिप डिस्क रोग का सामान्य परिचय देते हुए मानव रीढ की संरचना को समझाया गया है। इसके साथ साथ इस रोग को उत्पन्न करने वाले प्रमुख कारणों जैसे रीढ पर चोट लगना, रीढ पर अचानक झटका लगना, दोष पूर्ण मुद्राओं में अधिक देर तक कार्य करना, विकृत जीवन शैली एवं मोटापा आदि पर प्रकाश डाला गया है। इकाई में स्पष्ट किया गया है कि कमर दर्द एवं स्लिप डिस्क विकृत जीवन शैली जनित रोग है जिनके कारण कमर के निचले भाग में दर्द रहना प्रारम्भ हो जाता है। इस व्याधि से ग्रस्त होने पर रीढ से आने वाली तंत्रिकाओं पर दबाव आने लगता है, और शरीर की स्थिति एवं आकृति दोनों ही बिगड जाती है। रोग से ग्रस्त रोगी के दैनिक कार्य बाधित होकर अनियमित होने लगते हैं।

इकाई में आगे स्लिप डिस्क रोग की वैकल्पिक चिकित्सा को समझाया गया है। सर्वप्रथम योग चिकित्सा पर को समझाते हुए षट्कर्मों, आसनों, प्राणायामों एवं ध्यान आदि के प्रभावों को स्पष्ट किया गया है। इसके उपरान्त प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेद चिकित्सा, एक्यूप्रेशर चिकित्सा, प्राण चिकित्सा एवं आहार चिकित्सा के अर्न्तगत रोगी के लिए पथ्य और अपथ्य आहार का वर्णन इकाई में किया गया है।

12.9 पारिभाषिक शब्दावली–

स्पर्धात्मक	एक दूसरे से आगे बढने की होड
अर्जन करना	एकत्रित अथवा इकठ्ठा करना
फास्ट फूड	मैगी, बर्गर, पीजा आदि

मुद्राएं कार्य करने में शरीर की आकृति अथवा स्थिति विशेष

12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क.	सत्य	क.	**स्लिप डिस्क**	क. c
ख.	सत्य	ख.	**सियाटिका**	ख. b
ग.	असत्य	ग.	**एंटी इन्फलेमेटी**	ग. c
घ.	असत्य	घ.	**विकृत जीवन शैली**	घ. a
ड.	असत्य	ड.	**प्राण ऊर्जा**	ड. b

12.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कल्याण आरोग्य अंक – गीता प्रेस गोरखपुर।
2. असाध्य रोगों की सरल चिकित्सा – डॉ0 नागेन्द्र कुमार नीरज, पापुलर बुक डिपो, जयपुर।
3. योग चिकित्सा विज्ञान – श्री आदित्य योगी, योग जीवन धाम ट्रस्ट, हरिद्वार।
4. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डॉ0 राकेश जिन्दल, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मोदी नगर (उ0प्र0)।
5. प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ0 टी0 एन0 श्रीवास्तव, मैत्रेयी प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. वृहद आयुर्वेदिक चिकित्सा – डॉ0 ओम प्रकाश सक्सेना, हिन्दी सेवा सदन, मथुरा।
7. एक्यूप्रेशर – डा0 अतर सिंह, एक्यूप्रेशर हैल्थ सेटंर, चण्डीगढ।

12.11 सहायक पाठ्य सामग्री

1 मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान– प्रो0 अनन्त प्रकाश गुप्ता, सुमित प्रकाशन, आगरा।

2 स्वस्थ वृत्त विज्ञान – डॉ0 रामहर्ष सिंह, चौखम्बा प्रकाशन बनारस।

3. वैकल्पिक चिकित्सा – डा0 राजकुमार प्रुथी, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली।

4. वैकल्पिक चिकित्सा – डा0 आर0 एस0 विवेक , डायमण्ड पाकेट बुक्स, नई दिल्ली।

12.12 निबन्धात्मक प्रश्न–

1. स्लिप डिस्क रोग के कारणों एवं लक्षणों को सविस्तार समझाइये।
2. स्लिप डिस्क रोग की वैकल्पिक चिकित्सा का विस्तारपूर्वक वर्णन किजिए।
3 स्लिप डिस्क रोग के यौगिक उपचार को समझाते हुए रोग से छुटकारा पाने हेतु रोगी के लिए प्रमुख सावधानियां एवं सुझाव लिखिए।

इकाई 13 निम्न रक्तचाप – कारण, लक्षण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 निम्न रक्तचाप – कारण, लक्षण एवं वैकल्पिक चिकित्सा
13.3.1 रक्त परिसंचरण तंत्र का परिचय
13.3.2 निम्न रक्तचाप
13.3.3 निम्न रक्तचाप के कारण
13.3.4 निम्न रक्तचाप के लक्षण
13.3.5 निम्न रक्तचाप की चिकित्सा
13.4 निम्न रक्तचाप की वैकल्पिक चिकित्सा
13.4.1 निम्न रक्तचाप की यौगिक चिकित्सा
13.4.2 निम्न रक्तचाप की प्राकृतिक चिकित्सा
13.4.3 निम्न रक्तचाप की आहार चिकित्सा
13.5 सारांश
13.6 पारिभाषिक शब्दावली
13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
13.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.10 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

निम्न रक्तचाप रक्त परिवहन तंत्र से सम्बन्धित एक प्रमुख समस्या है जिससे तात्पर्य रक्तचाप का सामान्य से कम हो जाना होता हैं।उच्च रक्तचाप की भाँति निम्न रक्तचाप से भी स्वास्थ्य और जीवन के लिये भय बना रहता है। किन्तु निम्न रक्तचाप की अवस्था सदैव ही हानिकारक सिद्ध नहीं होती। स्वस्थ व्यक्तियों में प्रायः 3 – 4 प्रतिशत व्यक्तियों को निम्न रक्तचाप की शिकायत होती है। इसे स्वभाविक निम्न रक्तचाप कहते हैं। यह संपूर्ण रूप से एक विकाररहित अवस्था होती है। ऐसे व्यक्तियों के दीर्घ जीवन की प्राप्ति में कोई बाधा अथवा अवरोध उत्पन्न नहीं होता। वरन् उल्टे साधारण व्यक्तियों की अपेक्षा ये लोग अधिक दिनों तक जीवित रहते हैं। अतः इन्हें किसी चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होता। किन्तु किसी – किसी समय शरीर की विभिन्न रूग्णावस्था में रक्तचाप काफी नीचे उतर जाता है, जिसे अवश्य ही रोग समझना चाहिए।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जानेंगे कि –

- रक्त परिसंचरण तंत्र के प्रमुख अवयव क्या है
- निम्न रक्तचाप किसे कहते हैं
- निम्न रक्तचाप के प्रकार
- निम्न रक्तचाप होने के कारण
- निम्न रक्तचाप के लक्षण क्या होते हैं।
- निम्न रक्तचाप में क्या चिकित्सा दी जानी चाहिए।

13.3 निम्न रक्तचाप – कारण, लक्षण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

13.3.1 रक्त परिसंचरण तंत्र–निम्न रक्तचाप रक्त परिसंचरण तंत्र से सम्बन्धित समस्या है। अतः रक्त परिसंचरण तंत्र के बारे में जानना भी आवश्यक है।

शरीर में रक्त – संचरण के प्रमुखअवयव निम्नलिखित हैं–

(1) रक्त,

(2) हृदय,

(3) धमनियाँ तथा शिराएँ

रक्त :–शरीर के भीतर उपस्थित लाल रंग का द्रव पदार्थ रक्त कहलाता है। रक्त शरीर की रक्त वाहिनियों से होकर बहने वाला शरीर का एक प्राणाधार तरल संयोजी उत्तक हैं जो रक्त वाहिनियों में हमेशा परिसंचरण करता रहता है। धमनियों से लिया जाने वाला रक्त लाल तथा शिराओं से लिया जाने वाला रक्त बैंगनी होता है। रक्त के रंग में यह अंतर रक्त में स्थित उसके ऑक्सीजन अंश के कारण होता है। रक्त दो भागों से मिलकर बना होता है, एक तरल अंश होता है जिसे रक्त प्लाज्मा कहतें हैं तथा दूसरा भाग ठोस होता है जो रक्त कणिकाओं के रूप में होता है।

रक्त की संरचना :–

रक्त में दो प्रकार के पदार्थ पाये जाते हैं:–

1. **प्लाज्मा**
2. **रक्त कोशिकाऐं**

प्लाज्मा:–इसमें निम्न प्रकार के पदार्थ पाये जाते हैं:–

- **एल्ब्युमिन,**
- **ग्लोब्यूलिन,**
- **फाईब्रिनोजन**
- **प्रोथोम्बिन**

एल्ब्युमिन :–यह प्लाज्मा में सबसे अधिक पायी जाने वाली प्रोटीन होती है यह परासरणदाब को नियंत्रित करती है।

ग्लोबुलिनः– यह प्रोटीन, वसा, स्टैरायड, हार्मोन,एन्जाइम,तथा बिरलरूबिन को शरीर के एक स्थान से दूसरे स्थान तके ले जाते हैं। इसके साथ–साथ यह लोहे तथा तांबें को भी वहन करती है। यह शरीर को संक्रमण से बचाती हैं यह भी 3 प्रकार की होती है :–

1. एल्फा ग्लोबुलिन, 2.बीटा ग्लोबुलिन, 3. गामा ग्लोबुलिन।

फाईब्रिनोजन :– यह रक्त को जमाने के लिए अत्यावश्यक प्लाज्मा प्रोटीन होती है। **प्रोथोम्बिन :–** यह भी रक्त को जमाने के लिए अत्यावश्यक प्लाज्मा प्रोटीन होती है। शरीर में चोट लग जाने के पश्चात् जब रक्त बहना आरंभ हो जाता है तब रक्त स्कंदन के लिए इसकी आवश्यकता पड़ती है।

प्लाज्मा में इसके अलावा हार्मोन, एण्टीबोडिज, एन्जॉइम्स, क्रिएटिन, युरिक एसिड, तथा अधिक मात्रा में खनिज लवण भी पाये जाते हैं।

रक्त कोशिकाऐं :–इसमें तीन प्रकार की कोशिकाऐं पायी जाती हैं:–

- **लाल रक्त कोशिकाऐं**
- **श्वेत रक्त कोशिकाऐं**
- **प्लेटलेट्स**

लाल रक्त कोशिकाऐं (RBC) :–

यह रक्त में सबसे अधिक पायी जाने वाली कोशिकाऐं होती हैं यह वृत्ताकार चक्रीकाओं के रूप में होती है इनमें केंद्रक नहीं होता किंतु उस स्थान पर हीमोग्लोबीन होता है इसी कारण रक्त का रंग लाल होता है। लौह इसका मुख्य घटक है। लाल रक्त कोशिकाओं का महत्वपूर्ण कार्य गैसों का आदान–प्रदान करना होता है। जब रक्त फेफड़ों से होकर बहता है तब लाल रक्त कोशिकाओं में रहने वाली हीमोग्लोबिन फेफड़ों में बाहर से आने वाली ऑक्सीजन को अपने पास रख लेता है तथा उसी समय शरीर के अंग प्रत्यंगों से खींच कर लाई गई कार्बनडाईऑक्साइड गैस को फेफड़ों में छोड़ देता है।

लाल रक्त कोशिकाओं का निर्माण लंबी ओर बड़ी अस्थियों में विद्यामान लाल अस्थि मज्जा से होता है जहां से वह रक्त में प्रवेश करती है। इनका जीवनकाल 120 दिनों का होता है।

श्वेत रक्त कोशिकाऐं(WBC) :–

श्वेत कोशिकाऐं सभी रक्त कोशिकाओं में सबसे बड़ी होती हैं किन्तु संख्या में कम होती हैं। यह पारदर्शक होती हैं तथा रंगीन नहीं होती इनमें केंद्रक पाया जाता है तथा यह गतिशील कोशिकाऐं होती है।ये कोशिकाऐं जीवाणुओं का तथा अन्य कार्बनिक कणों का नाश करती रहती है।

शरीर में जब भी कोई संक्रमण होता है तब शरीर में इनकी मात्रा बढ़ जाती हैं इसके अलावा शारीरिक श्रम बढ़ जाने पर, गर्भावस्था में, ज्यादा रक्त ढाव हो जाने पर, गर्भावस्था में, ज्यादा रक्त ढाव हो जाने पर, मिर्गी के दौरे पड़ने पर, जल जाने पर इनकी संख्या बढ़ जाती है।

किन्तु टाइफाइड ज्वर, विषाणु संक्रमण, मलेरिया, कालाजार आदि में इनकी संख्या शरीर में कम होती है श्वेत रक्त कणिकाऐं दो प्रकार की होती है :–

1. **ग्रेनुलोसाइटस**
2. **ए– ग्रेनुलोसाइट्स**

1. **ग्रेनुलोसाइटस :–** ये कुल श्वेत रक्त कोशिकाओं की लगभग दो तिहाई संख्या होती है एवं यह तीन प्रकार की होती है–

क.न्युट्रोफिल

ख.इओसिनोफिल

ग.बेसोफिल

क.न्युट्रोफिल :– ये श्वेत रक्त कणिओं की 45 से 80 प्रतिशत तक होती हैं यह बहुत बड़ी होती हैं। न्युट्रोफिल शरीर में जीवाणुओं के प्रवेश करते ही उन्हें निगल कर नष्ट कर देतें हैं अतः यह शरीर को होने वाले संक्रमण से बचते हैं। शरीर में संक्रमण हो जाने पर संख्या बढ़ जाती है। किन्तु कुछ रोग ऐसे होते हैं जिनमें इनकी संख्या कम हो जाती है जैसे – अस्थि मज्जा शोथ, साइनुसाइटिस, सेप्टीसिमीयां आदि।

ख. इयोसिनोफिल :– ये श्वेत रक्त कणिकाओं की 1 से 6 प्रतिशत तक होती है जब रक्त में इओसिनोफिल ककी संख्या बढ़ जाती है तब इस दशा को इओसिनोफिलीया कहते हैं। एलर्जी जन्य रोग जैसे अस्थमा, जुकाम,एक्जीमा, आदि रोगों में तथा परजीवीजन्य रोग जैसे अमीबा,अंकुशकृमि, गोलकृमि, फीमाकृमी, फाइलेरिया, आदि रोगों में देखा जाता है।

ग. बेसोफिल :– ये श्वेत रक्त कणिकाओं में न्यूनतम मात्रा में पायी जाती है ये कोशिकाऐं काफी संवेदनशील प्रतिक्रिया में भाग लेती हैं। जब कोई ऐसी प्रतिक्रिया होती है जैसे दमा,जुकाम, शरीर में एकाएक बड़े दानों का निकलना आदि देखा जाता है। छोटी माता, कैंसर, तपैदिक आदि रोगों में इनकी संख्या बढ़ जाती है।

2. ए– ग्रेनुलोसाइट्स :– ये दो प्रकार की होती है–

क. लिम्फोसाइट

ख. मोनोसाइट

लिम्फोसाइट :– ये रक्त में श्वेत रक्त कणिकाओं में 12 से 40 प्रतिशत तक होती है लिम्फोसाइट शरीर की रोगक्षमता प्रतिक्रिया में भाग लेता है। शरीर के किसी भी प्रकार के संक्रमण में ये सदैव रक्षा करने के लिए तत्पर रहती है इनकी उत्पत्ति बड़ी अस्थियों के लाल अस्थि मज्जा के द्वारा होती है जहां से वे रक्त में आ जाते हैं और फिर लसिका ऊतक में पहुँच कर सक्रिय हो जाते हैं। बाहरी जीवाणुओं इत्यादि से लड़ने में समर्थ हो जाते हैं।

यह निम्न दो प्रकार की होती है :–

1) T –Lymphocytes (T-Cells) :–यह थाइमस ग्रंथि में सक्रिय होती है यह विषाणु संक्रमित कोशिकाओं कवक तथा अर्बुद की कोशिकाओं को नष्ट करने में क्षमता होती है। यह लसिका ग्रंथि, प्लीहा,तथा आंत की दीवारों में सक्रिय रहती है।

2) B- Lymphocytes (B-Cells) :–यह मुख्य रूप से लसिकाभ ऊतक में ओर आंतों की दीवारों में सक्रिया रहती है। यह प्लाज्मा में एंटिबॉडी का स्त्राव करती है जिनके कारण बाहरी जीवाणु आदि कणों को यह नष्ट कर देती है।

मोनोसाइट :–इनकी उत्पत्ति भी अस्थियों के लाल अस्थि मज्जा से होती है यह श्वेत रक्त कोशिकाओं में 2 से 11 प्रतिशत तक होती है। ये कोशिकाऐं घुमती रहती हैं तथा शरीर में जिस स्थान पर सूजन होती है या घाव हो जाता है तब यह उस स्थान पर पहुंच कर जीवाणु आदि को नष्ट कर देती हैं। यह घाव के बाह्य भाग में ज्यादा कार्य करती है।

जब शरीर में मलेरिया, तपेदिक, कालाजार या कैंसर आदि रोग होता है तो इनकी संख्या रक्त में बढ़ जाती है।

प्लेटलेट्स :–यह रक्त में विभिन्न आकृतियों वाली छोटी–छोटी कोशिकाऐं होती है यह प्रति घन किमी. रक्त में एक लाख से तीन लाख तक पाई जाती हैं यह समूहों में रहने वाली कोशिकाऐं होती है। यह कुछ पीले वर्ण की होती है इनका कार्य भी रक्त स्त्राव को रोकना होता है। जहां पर रक्त का स्त्राव होता रहता है वहां पर यह थक्का सा बनातें हैं जहां पर फटी रक्त वाहिनीयाँ बन्द हो जाती है।

जब शरीर में तपेदिक, प्रसप के पश्चात्, कैंसर या अति रक्तढाव आदि घटनाऐं घटती हैं तब रक्त में प्लेटलेट्स की संख्या बढ़ जाती है।

रक्त के कार्य :– रक्त के प्रमुख कार्य निम्नलिखित है :–

1. आहार नलिका से भोजन तत्वों को शोषित कर, उन्हें शरीर के सभी अंगों तक पहुँचाना और इस प्रकार उनकी भोजन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करना।
2. फेफड़ों की वायु से ऑक्सीजन लेकर , उसे शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँचाना जो इनका निष्कासन करते है।
3. शरीर के प्रत्येक भाग से कार्बन डाइ ऑक्साइड, यूरिया, यूरिक अम्ल तथा गंदापानी आदि दूषित पदार्थों को लेकर उन अंगों तक पहुँचाना जो इनका निष्कासन करते हैं।
4. अन्तः ढावी ग्रन्थियाँ द्वारा स्त्रावित हार्मोनों को उनके लक्ष्य तक पहुँचाना।
5. संपूर्ण शरीर का तापमान सम बनाए रखना।
6. वाह्य जीवाणुओं के आक्रमण से शरीर की रक्षा करने के लिए श्वेत कणिकाओं को शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाते रहना।

हृदय :–रक्त–संचरण क्रिया का यह सबसे मुख्य अंग है। यह नाशपाती के आकार का मांसपेशियों की एक थैली जैसा होता है। हाथ की मुट्ठी बाँधने पर जितनी बड़ी होती है, इसका आकार भी उतना ही बड़ा होता है। इसका निर्माण धारीदार एवं अनैच्छिक पेशी – ऊतकों द्वारा होता है। वक्षोस्थि से कुछ पीछे की ओर तथा बाँयें हटकर दोनों फेफड़ों के बीच इसकी स्थिति है। यह पाँचवीं, छठी, सातवीं तथा आठवीं पृष्ट देशीय –कशेरूका के पीछे रहता है इसका शिरों भाग बाँये बेन्ट्रिकल से बनता है निम्न भाग के अपेक्षा इसका ऊपरी भाग कुछ अधिक चौड़ा होता है इस पर एक झिल्ली मय आवरण चढ़ा रहता है जिसे हृदययवरण या पेरिकार्डियम कहते हैं इस झिल्ली से एक का रस निकलता है जिसके कारण हृदय का ऊपरी भाग आद्र बना रहता है। हृदय का भीतरी भाग खोखला रहता है यह भाग सूक्ष्म मांसपेशी की झिल्ली द्वारा ढ़का तथा चार भागों में बंटा रहता है इस भाग में क्रमशः ऊपर नीचे तथा दायें बाँये चार प्रकोष्ठ होतें हैं।

कार्यानुरूप हृदय को दो भागों में बांटा गया है :–

1. हृदय का आधा भाग फुफ्फसीय परिसंचरण से संबंधित है, इसे दाहिने हृदय के रूप में जाना जाता है।
2. हृदय का दूसरा भाग दैहिक परिसंचरण से संबोधित है इसे बायें हृदय के रूप में जाना जाता है।
3. हृदय के दोनों भागों में अपने–अपने दो खण्ड होते है। एक खण्ड रक्त प्राप्त करता है जो आलिंद या एट्रियम कहलाता है दूसरा खण्ड एट्रियम में संग्रहित

रक्त प्राप्त करके हृदय से बाहर पंप कर देता है। वह निलय या वेंट्रिकल कहलाता है।

हृदय की संरचना :–इसका भार व्यस्क व्यक्ति में 200 से 260 ग्राम तक होता है। यह एक भित्ति द्वारा दांये ओर बांये भागों में विभक्त होता है। जन्म के पश्चात् इन दोनों भागों में संबंध नहीं रहता। इनमें से प्रत्येक भाग पुनः दो भागों या कोष्ठों में विभाजित हो जाता है ऊपर का कोष्ठ आलिंद तथा नीचे का कोष्ठ निलय कहलाता है। इस प्रकार दो आलिंद तथा दो निलय होते हैं। दोनों ओर, आलिंद ओर निलय का एक दूसरे से आलिंद निलय द्वार पर सम्मिलिन होता है। यह द्वार कपाटों द्वारा सुरक्षित रहता है। दाँयी ओर का कपाट त्रिकपर्दीवाल्व तथा बांयी ओर का कपाट द्विकपर्दीवाल्व कहलाता है। आलिंद –नियल वाल्व में से रक्त केवल आलिंद से निलय की ओर प्रवाहित हो सकता है इसके विपरीत दिशा में कभी प्रवाहित नहीं हो सकता।

4. **हृदयावरण :–** यह हृदय के ऊपर की एक आवरण होती है इसकी दो तहें होती है आशयिक तह तथा भित्तिक तह आशयिक तह एक सीरमी कला के रूप में होती है तथा यह हृदय से सटी होती है। भित्तिक तह हृदय के आधार से दोहरी होकर हृदय पर आती है तथा हृदय को पूर्ण रूप से ढंक लेती है। इस आवरण के दोनों तहो के बीच में एक तरल भरा होता है जिसके कारण हृदय मुक्त रूप से कार्य करता रहता है।

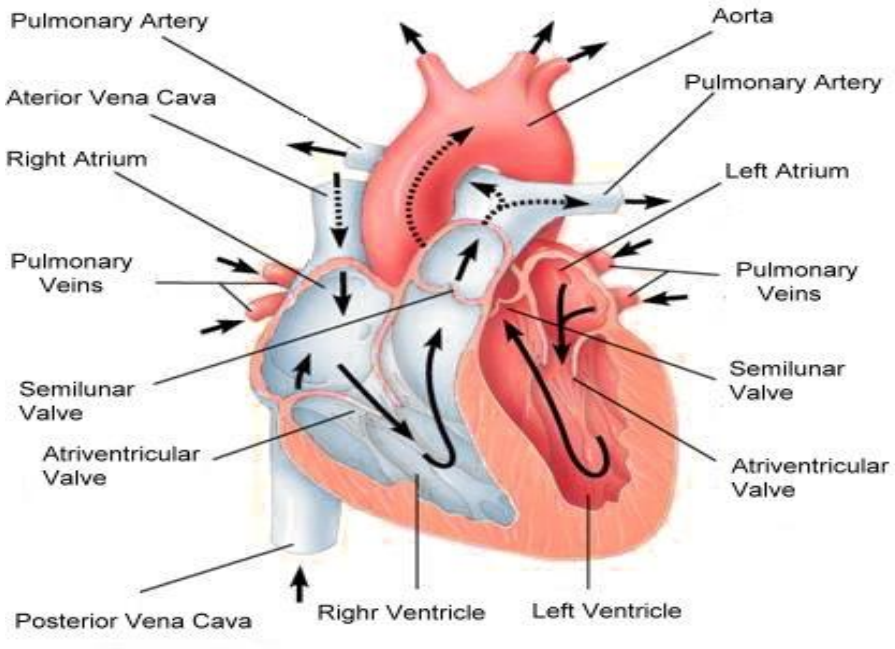

हृदय का कार्यः– हृदय को शरीर का पंपिग स्टेशन कहा जा सकता है हृदय की मांशपेशियों द्वारा ही रक्त संचार की शुरूवात होती है। हृदय के संकोच के कारण ही इसके भीतर भरा हुआ रक्त महाधमनी तथा अन्य धमनियों से होकर शरीर के अंग प्रत्यंग तथा

उनकी कोशाओं मे पहुचका उन्हे पुष्टी प्रदान करता है तथा भीतर स्थित विकारों को लाकर उर्त्सजन अंगों को सौंप देता है। ताकि वे शरीर से बाहर निकल जायें।

हृदय में हर समय धड़कन होती है रहती है यह निरंतर फैलता तथा संकुचित होता रहता है। इसके प्रसार तथा संकुचन के समय एक प्रसार का शब्द लूप – डप सुनाई देता है लूप पहला तथा ढप दूसरा शब्द होता है। उन शब्दों की निरंतर प्रनरावृत्ति होती रहती है इस ध्वनि को हृदय ध्वनि कहा जाता है।

सामान्यतः एक प्रौढ़ मनुष्य का हृदय 1 मिनट में 70 – 75 बार धड़कता है। जन्म से 10 वर्ष तक के बच्चों का हृदय 1मिनट में 140बार तक तथा 11 से 14 वर्ष आयु में 75 से 90 वर्ष तक घड़कता है। वृद्धावस्था में हृदय की धड़कन अधिक बढ़ जाया करती है। लंबे मनुष्यों की अपेक्षा नाटे कद वालों का तथा पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों का हृदय प्रति मिनट अधिक बार धड़कता है। व्यायाम, दौड़ना आदि शारीरिक परिश्रम के समय भी हृदय धड़कन बढ़ जाती है तथा भूखे रहने, दुर्बलता एवं क्लेश आदि के समय कम हो जाती है।

पहले बताया जा चुका है कि शरीर में रक्त – संचरण धमनी, शिराओं तथा कोशिकाओं द्वारा होता रहता है। ये सभी शुद्ध रक्त को हृदय से ले जाकर शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाती है तथा वहाँ से विकार मिश्रित अशुद्ध रक्त को लाकर हृदय को देती रहती है। शुद्ध रक्त का रंग चमकदार लाल होता हैतथा अशुद्ध रक्त बैगनी रंग का होता है। हृदय से निकलकर शुद्ध रक्त जिन नलिकाओं द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में जाता है उन्हें क्रमशः धमनी तथा कोशिकाऐं कहते हैं तथा अशुद्ध रक्त लौटता हुआ जिन नलिकाओं में होकर हृदय में पहुँचता है, उन्हें शिरा कहतें हैं।

शिराओं द्वारा लाये गए अशुद्ध रक्त को हृदय शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में भेज देता है। वहाँ पर अशुद्ध रक्त बैंगनी रंग का अपने विकारों को फेफड़ों से बाहर जाने वाली हवा के साथ मिलकर, मुँह अथवा नाक के मार्ग से बाह्य वातावरण में भेज देता है तथा श्वास के साथ भीतर आई शुद्ध वायु से मिल कर पुनः शुद्ध तथा चमकदार लाल रंग का हो जाता है। इस प्रकार अशुद्ध रक्त फेफड़ों में शुद्ध होकर पुनः हृदय में लौट आता है और वहाँ से फिर संपूर्ण शरीर में चक्कर लगाने के लिए भेज दिया जाता है। इस क्रम की निरन्तर पुनरावृत्ति होती रहती है। तथा इसी को रक्त परिभ्रमाण क्रिया कहा जाता है।

धमनियाँ :–ये रक्त– नलिकाएँ लंबी मांसपेशियों द्वारा निर्मित है। ये हृदय से आरंभ होकर कोशिकाओं पर समाप्त होती है। इनका संचालन अनैच्छिक मांसपेशियों द्वारा होता है। ये आवश्यकतानुसार फैलती तथा सिकुड़ती रहती है। इनके संकुचन से रक्त परिभ्रमण में सरलता आती है। फुफ्फुसी धमनी के अतिरिक्त शेष सभी धमनियाँ शुद्ध रक्त का वहन करती है। इनकी दीवारें मोटी तथा लचीली होती है। छोटी धमनियों को धमनिका कहते हैं।

शिराएँ :–ये नलिकाऐं पतली होती है। इनकी दीवारें पतली तथा कमजोर होती है, जो झिल्ली की बनी होती है। इनकी दीवों में स्थान – स्थान पर प्यालियों जैसे चन्द्र कपाट बने रहते हैं। इनकी सहायता से रक्त उछल कर जीचे से ऊपर की ओर जाता है। इन पर मांस का आवरण नहीं रहता अतः ये कट भी जाती है। जब ये ऊतकों मे पहुँचती है, तब बहुत महीन हो जाती है तथा इनकी दीवारे भी पतली पड़ जाती है। फुफ्फुसीय शिरा के अतिरिक्त अन्य सभी धमनियों शिराओं मे अशुद्ध रक्त बहता है। ये सब अशुद्ध रक्त का हृदय मे पहुँचाने का कार्य करती है।

महाधमनी तथा महाशिरा की कार्य प्रणाली :–

महाधमनी शरीर की सबसे बड़ी धमनी है इसके द्वारा शुद्ध रक्त संपूण्र शरीर में फैलता है इसका कार्य निम्न तरह से होता है। यकृत के भीतर से जाकर हृदय के दांये आलिंद में खुलने वाली अधोमहाशिरा में शरीर के संपूर्ण नीचे के अंगों का रक्त एकत्र होकर ऊपर को जाता है शरीर के ऊपर के भागों से अशुद्ध रक्त तथा सभी अशुद्ध रक्त ऊर्ध्व महाशिरा में आता है यह महाशिरा उस रक्त का हृदय के दायें आलिंद मे देती है रक्त से भरते ही वह कोष्ठ सिकुड़ने लगता है तथा एक झटके में ही वह दांये निलय में फेंक देता है दांया त्रिकपाट इसके साथ ही बंद हो जाता है और रकत को पीछे नहीं जाने देता है अर्थात् निलय से रक्त आलिंद में नहीं पहुँच सकता फिर ज्यों ही दांया निलय भरता है तो वह रक्त को फुफ्फुस धमनी द्वारा शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में भेज देता है।

फेफड़ों मे से शुद्ध हो जाने पर, शुद्ध रक्त दांये तथा बांये फेफड़े द्वारा फुफ्फुस शिरा द्वारा बांये आलिंद में भेज दिया जाता है इसके तश्चात् यह रक्त दांये आलिंद से एक झटके के साथ बांये निलय में आ जाता है जिसे यहाँ स्थित द्विकपर्दीवाल्व रक्त को पीछे नहीं लोटने नहीं देता। फिर जब बांया निलय भरकर सिकुड़ने लगता है तब शुद्ध रक्त महाधमनी में चला जाता है। और वहां से संपूर्ण शरीर में फैल जाता है।

महाधमनी से अनेक छोटी–छोटी धमनियां तथा महाशिरा से अनेक छोटी–छोटी शिराएँ निकली होती हैं जो निरंतर क्रमशः रक्त का ले जाने तथा लाने का कार्य करती है।

13.3.2 निम्न रक्तचाप–किसी भी कारण से उत्पन्न रक्तदाब की कमी की अवस्था को हाइपोटेन्शन (Hypotension) अथवा 'लो ब्लड–प्रेशर' (Low blood pressure) कहते हैं।निम्न रक्तचाप (Low blood pressure) को रक्तचाप – न्यूनता, न्यून रक्तदाब, रक्तचाप–क्षीणता आदि नामों से भी जाना जाता हैं।

वयस्कों में सिस्टोलिक ब्लड–प्रेशर 100 mm Hg. से कम मिलने पर भी उन्हें अल्प रक्तदाब का रोगी माना जा सकता है।

उच्च रक्तचाप की भाँति निम्न रक्तचाप से भी स्वास्थ्य और जीवन के लिए भय बना रहता है। किन्तु निम्न रक्तचाप की अवस्था सदैव ही हानिकारक सिद्ध नहीं होती। स्वथ्य व्यक्तियों में प्रायः 3–4 प्रतिशत व्यक्तियों को निम्न रक्तचाप की शिकायत होती है। इसे स्वाभाविक निम्न रक्तचाप कहते हैं। यह संपूर्ण रूप से एक विकाररहित अवस्था होती है। ऐसे व्यक्तियों के दीर्घ जीवन की प्राप्ति में कोई बाधा अथवा अवरोध उत्पन्न नहीं होता। वरन् उल्टे साधारण व्यक्तियों की अपेक्षा ये लोग अधिक दिनों तक जीवित रहते हैं। अतः इन्हें किसी चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती। किन्तु किसी–किसी समय शरीर की विभिन्न रूग्णावस्था में रक्तचाप काफी नीचे उतर आता है, जिसे अवश्य ही रोग समझना चाहिए।

निम्न रक्तचाप में रक्त का प्रवाह मस्तिष्क में कम होने लगता है। साथ ही नाड़ी संस्थान पर इस रोग का प्रभाव पड़ता है। अतः कुछ विद्वान इसकी गणना शिरोरोग में करते हैं।

प्रकार (Type)–अल्प रक्तदाब मुख्य रूप से तीन प्रकार का होता है –

1. लाक्षणिक अल्प रक्तदाब (Symptomatic hypotension) ।
2. अज्ञात हेतुक अल्प रक्तदाब (Essential hypotension)।
3. ऊर्ध्व–स्थितिज अल्प रक्तदाब (Orthostaitic hypotension)।

13.3.3 निम्न रक्तचाप के कारण–निम्न रक्तचाप सामान्यतः स्थायी और अस्थायी दो प्रकार का पाया जाता है। कभी–कभी यह आनुवंशिक भी होता है एवं सम्पूर्ण परिवार में

मिल सकता है। उस अवस्था में कोई लक्षण नहीं मिलते तथा न ही उससे किसी प्रकार की हानि की ही आशंका होती है।

- हृदय रोग तथा उपवृक्क विकार में निम्न रक्तचाप स्थायी प्रकार का होता है।

मनुष्य में कुछ परिस्थितियों में रक्तचाप स्वतः ही अस्थायी रूप से कम हो जाता है, जैसे–

- भोजन करने के बाद
- रक्तस्त्राव के बाद
- उष्ण जल से स्नान करने के बाद
- उष्ण वातावरण में

1. लाक्षणिक अल्प रक्तदाब के कारण (Causes of symptomatic low blood pressure)-

निम्न रोगों में अल्प रक्तदाब एक लक्षण के रूप में मिलता है –

1. एडिसन का रोग (Addison's disease)
2. स्तब्धता (Shock)
3. एम्फीसीमा (Emphysema)
4. यक्ष्मा रोग (Tuberculosis)
5. मायोकार्डियल इन्फार्क्शन (Myocardial infarctrion)

2. अज्ञात हेतुक अल्प रक्तदाब (Essential hypotension**) –**

इस प्रकार का अल्प रक्तदाब बिना किसी कारण के प्रकट होता है। 3 प्रतिशत रोगी ऐसे होते है, जिनमें अल्प रक्तदाब की स्थिति पायी जाती है। इसमें एक विशेष बात यह होती है कि ऐसे रोगियों में अल्प रक्तदाब का कोई लक्षण तथा चिन्ह उपस्थित नहीं मिलता है।

3. ऊर्ध्व–स्थितिज अल्प रक्तदाब (Orthostatic hypotension)–

इस प्रकार का अल्प रक्तदाब अल्पकालिक घटना–चक्र के रूप में, जैसे– थोड़ी देर के लिए रोगी द्वारा थोड़ा भी श्रम आरंभ करते ही अथवा लेटी हुई स्थिति से खड़ा होने पर होता है, ऊर्ध्व–स्थितिज अल्प रक्तदाब कहलाता है।

- ऐसे अल्प रक्तदाब के उत्पादक कारण तंत्रिकातंत्र के रोग तथा अन्त :– स्रावी ग्रंथियों की तमाम विकृतियाँ होती है।
- कभी –कभी यह बिना किसी कारण के भी उत्पन्न हो जाता है।

इस रोग के मुख्य कारण है–

- वामनिलय का हृदय–पात
- हृदय धमनी की घनास्त्रता
- औषधजन्य हृत्पेशीपात
- हृदय का तीव्र संपीडन
- राजयक्ष्मा

- डिप्थीरिया
- मानसिक आघात
- रक्ताल्पता
- अत्यधिक दुर्बलता
- अधिवृक्कीय रोग
- उपवास
- पोषणाभाव
- फ्लू
- रक्तपित्त
- रक्तप्रदर
- उग्र संक्रमण
- आन्त्रगत रक्तसंचय
- आन्त्रिक ज्वर
- डिहाइड्रेशन
- तीव्र रक्तातिसार
- विशूचिका
- शारीरिक व मानसिक परिश्रम की अधिकता
- अग्निदाह तथा
- अधिक थकान।

कुछ विद्वानों के अनुसार शरीर में सोडियम की कमी होने तथा शरीर से जल व इलेक्ट्रोलाइट्स के निकल जाने से भी रक्त का आयतन कम हो जाता है जिसके परीणामस्वरूप निम्न रक्तचाप की उत्पत्ति होती है।

13.3.4 निम्न रक्तचाप के लक्षण–निम्न रक्तचाप के रोगी में लक्षणों की उत्पत्ति अनिवार्य नहीं है। साधारणतः रोगी को इससे विशेष कष्ट नहीं होता है। प्रायः जब शरीर किसी रोग से आक्रान्त होता है तो उसके लक्षणस्वरूप उस शरीर का रक्तचाप सामान्य से नीचे उतर आता है और उसे रोग की संज्ञा दे दी जाती है। शरीर की यह दशा प्रायः हृदयगति बंद होने के वक्त, विभिन्न संक्रामक रोग, रक्तहीनता, अजीर्ण तथा क्षयरोग में होती है। स्नायुदौर्बल्य के रोगी को भी अक्सर निम्न रक्तचाप की शिकायत होते देखी गई है। निम्न रक्तचाप में शरीर के रक्तपरिभ्रमण का कार्य सुस्त पड़ जाता है।

निम्न रक्तचाप के विशेष उल्लेखनीय लक्षणहै–

- सिर में चक्कर आना,
- थोड़ा परिश्रम करने पर भी थक जाना,
- सिर पीड़ा,
- मानसिक अवसाद एवं थकान,

- हाथ–पैरों से पसीना निकलना,
- हाथ–पैरों का ठण्डा बना रहना,
- हृदय की धड़कन

रक्त का दबाव न्यून होने पर विविध संस्थानों और कोष्ठांगों में रक्त प्रविष्ट नहीं हो पाता है जिसके फलस्वरूप अवयव निष्क्रिय रहते है।

लाक्षणिक अल्प रक्तदाब के लक्षण तथा चिन्ह :–

इस प्रकार के अल्प रक्तदाब में रोग की तीव्रता के अनुसार मृदु तथा तीव्र (Mild and acute) प्रकार के लक्षण तथा चिन्ह प्रकट होते हैं।

सामान्य रूप से यह निम्न प्रकार के होते हैं :–

1 सब–नार्मल तापक्रम (Subnormal temperature)।

2 श्वासकष्ट (Dyspnoea)

3 हाथ–पैर का ठंडा पड़ जाना।

4 माथे तथा शरीर के अन्य भागों में पसीना होना।

5 त्वचा का पीला पड़ जाना।

6 श्रोगी चुपचाप पड़ा रहता है, परन्तु वह होश में रहता है।

7 रोगी की आँखे गड्ढे में धँसी हुई प्रतीत होती है। साथ ही आँखों की स्वाभाविक चमक
गायब हो जाती है।

8 रोगी की दृष्टि–शक्ति कम हो जाती है। तारा विस्फारित अवस्था में रहता है, ऐसे में
उस पर प्रकाश डालने से भी वह बिलकुल नहीं विकुड़ता।

9 रोगी की नाड़ी तीव्र गति वाली सूत्र के समान (Thready type) होती है।

10 शरीर में ऐंठन होती है ; विशेषकर हाथों में कम्पन होता है।

11 रोगी को मूत्र कम आता है। प्रायः मूत्र में अल्बुमिन की उपस्थिति मिलती है।

12 रोगी का ब्लड–प्रेशर और अधिक गिरने से वह बेहोश हो जाता है तथा उसकी मृत्यु हो
जाती है।

अज्ञात हेतुक अल्प रक्तदाब के लक्षण तथा चिन्ह :–

1. इस प्रकार का अल्प रक्तदाब बिना किसी लक्षण के उत्पन्न होता है।
2. ऐसा रक्तदाब प्रायः स्त्रियों में मिलता है।

ऊर्ध्व–स्थितिज अल्प रक्तदाब के लक्षण तथा चिन्ह :–

1 इसमें अस्थाई मूर्च्छा की उपस्थिति मिलती है। यह केवल 4 से 30 सेकेण्ड के लिए
रहती है।

2 रोगी लेटने के पश्चात् जैसे ही खड़ा होता है, उसे एकाएक मूर्च्छा आ जाती है और वह
गिर जाता है। इस प्रकार की स्थिति प्रायः गर्मियों के मौसम में धूप में खड़े हो जाने से

होती है।

3 रोगी के कुछ देर लेटने पर मूर्च्छा स्वतः शांत हो जाती है और रक्त–चाप भी अपनी

सामान्य अवस्था में आ जाता है।

4. इस प्रकार के अल्प रक्तदाब में सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि रोगी के खड़े होने

पर रक्तचाप एकाएक कम हो जाता है, किन्तु नाड़ी की गति नॉर्मल ही रहती है।

5 रोगी में बेहोशी के समय पसीना बिल्कुल नहीं मिलता।

6 कुछ–एक रोगियों में ऐसा भी देखने में आया है कि खड़े होने पर 2–3 मिनट के लिए

अपनी भुजाओं को हृदय के स्तर पर रखने से उनका सिस्टोलिक ब्लड–प्रेशर एकाएक

कम होकर 50 mm Hg रह जाता है और रोगी में मूर्च्छा उत्पन्न हो जाती है।

7 कुछ रोगियों में इस प्रकार के अल्प रक्तदाब की प्रवृत्ति वर्षों तक चलती रहती है।

13.3.4 निम्न रक्तचाप की चिकित्सा

उच्च रक्तचाप कि तरह ही जिन कारणों से रक्तचाप घटता है, उन कारणों से बचना ही इस रोग की प्रमुख चिकित्सा है। साथ ही साथ स्वास्थ्य रक्षा के साधारण नियमों के नित्य प्रतिपालन करने की आदत ड़ालनी चाहिए। इस रोग की चिकित्सा हेतु समग्र चिकित्सा के रूप में योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आहार चिकित्सा आदि का उपयोग किया जा सकता है। इन चिकित्सा पद्धतियों के माध्यम से कम हो चुके रक्तचाप को सामान्य करने का प्रयास किया जाता है।

रोगी का रक्तचाप बहुत गिर जाने और मूर्च्छा जैसे लक्षण उत्पन्न हो जाने पर रोगी को आराम से बिस्तर पर लिटा दें तथा तंग और कसा हुआ कपड़ा उसके शरीर से उतार दें। रोगी के सिर को बाकी शरीर से नीचा कर दें ताकि सम्पूर्ण शरीर का रक्त मस्तिष्क में पहुँच जाए। रोगी के शरीर को गर्मी पहुँचाएँ।

निम्न रक्तचाप के रोगी की मालिश करने, उसकी टाँगो और शरीर को दबाने तथा विधिनुसार तौलिये से रगड़ने से रक्त का दौरा ठीक होने लगता है।

13.4 निम्न रक्तचाप की समग्र चिकित्सा

13.4.1 निम्न रक्तचाप की यौगिक चिकित्सा

निम्न रक्तचाप की यौगिक चिकित्सा में इस समस्या के मूल कारणों को दूर करने का प्रयास किया जाता है। इसके साथ इसके लक्षणों के अनुसार भी चिकित्सा दी जाती है। निम्न रक्तचाप में रक्त परिभ्रमण का कार्य सूस्त पड़ जाता है। यौगिक चिकित्सा में इस सूस्त पड़ चुके रक्त परिभ्रमण के कार्य को फिर से सामान्य स्तर पर लाने का प्रयास करते है। इसकी यौगिक चिकित्सा को हम तीन चरणों में पूरा कर सकते है।

प्रथम चरण :–

निम्न रक्तचाप की यौगिक चिकित्सा रोगी को काफी लाभदायक सिद्ध होती है, फिर भी इन अभ्यासों को क्रमशः बढ़ाना ही उत्तम रहता है। प्रथम चरण के अन्तर्गत पहले व दूसरे सप्ताह तक नीचें दिये गए अभ्यास करें।

आसन :–

- पवन मुक्तासन भाग–1 इसे संधि संचालन के अभ्यास भी कहा जाता है। इसमें पादांगुली नमन, गुल्फ नमन, गुल्फ घूर्णन, जानुनमन, जानु चक्र, जानुफलकाकर्षण, अर्द्धतितली आसन, पूर्णतितली आसन, श्रोणीचक्र, वज्रासन, मुष्ठिका बंध, मणिबंध नमन, मणिबंध चक्र, कोहनी नमन, स्कन्ध चक्र, ग्रीवा संचालन के अभ्यास आते है। इन अभ्यासों को श्वास प्रश्वास के तालमेल के साथ सम्पन्न करें। प्रत्येक अभ्यास को पाँच बार दोहराएँ।
- पवन मुक्तासन भाग–2इसे उदर संचालन के अभ्यास भी कहा जाता है। इसमें उत्तानपादासन, पादचक्रासन, पादसंचलन, पवन मुक्तासन, उदराकर्षन के अभ्यास आते है। इन अभ्यासों को श्वास प्रश्वास के तालमेल के साथ सम्पन्न करें। प्रत्येक अभ्यास को पाँच बार दोहराएँ।
- पवन मुक्तासन भाग–3इसे शक्ति बंध के अभ्यास भी कहा जाता है। इसमें चक्की चलासन, नौका चलासन, रज्जुकर्षण आसन, काष्ठतक्षण आसन के अभ्यास आते है। इन अभ्यासों को श्वास प्रश्वास के तालमेल के साथ सम्पन्न करें। प्रत्येक अभ्यास को पाँच बार दोहराएँ।
- ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन, कटिचक्रासन। इन अभ्यासों को श्वास प्रश्वास के तालमेल के साथ सम्पन्न करें। प्रत्येक अभ्यास को पाँच बार दोहराएँ।

प्राणायाम :–नाड़ी शोधन, सूर्यभेदी प्राणायाम।

- नाड़ी शोधन प्राणायाम –
  किसी भी ध्यानात्मक आसन (पद्मासन, सिद्धासन, सुखासन आदि) में बैठें, हाथ घुटनों पर। मेरूदण्ड, गर्दन सीधी रखें। सम्पूर्ण शरीर शिथिल करें, नेत्र बंद, कुछ देर तक सजगता श्वास पर रखें।
  दाएँ हाथ की तर्जनी एवं मध्यमा को भ्रूमध्य पर रखें तथा अंगूठे को दायीं नासिका तथा अनामिका को बायीं नासिका की ओर रखें। अब दायीं नासिका को बन्द करते हुए बायीं नासिका से क्षमतानुसार धीमी गति से श्वास लें, क्षमतानुसार अन्दर रोकें तथा दायीं नासिका से उसे धीरे–धीरे बाहर छोड़े। प्रयास रहें कि श्वास लेनें, रोकने एवं छोड़ने का समयानुपात लगभग समान हो। प्रारंभिक अवस्था में यदि श्वास अन्दर रोकनें में कठिनाई हो तो बिना रोके ही क्रिया सम्पन्न करें। यह एक चक्र नाड़ी शोधन प्राणायाम हुआ। प्रारम्भ में पाँच चक्र से प्रारम्भ करें। बाद में धीरे–धीरे चक्र को बढ़ाएँ।
- सूर्यभेदी प्राणायाम –
  यह प्राणायाम सूर्य नाड़ी को चलाने वाला है, जिससे कि गर्मी उत्पन्न होती है। इस प्राणायाम हेतु किसी भी ध्यानात्मक आसन (पद्मासन, सिद्धासन,

सुखासन आदि) में बैठें, हाथ घुटनों पर। मेरूदण्ड, गर्दन सीधी रखें। सम्पूर्ण शरीर शिथिल करें, नेत्र बंद, कुछ देर तक सजगता श्वास पर रखें। दाएँ हाथ की तर्जनी एवं मध्यमा को भ्रूमध्य पर रखें तथा अंगूठे को दायीं नासिका तथा अनामिका को बायीं नासिका की ओर रखें। अब धीरे–धीरे दायीं नासिका से श्वास भरें व यथाशक्ति कुम्भक करें, तत्पश्चात् बायीं नासिका से निकाल दें। यह एक चक्र सूर्यभेदी प्राणायाम हुआ। प्रारम्भ में पाँच चक्र से प्रारम्भ करें। बाद में धीरे–धीरे चक्र को बढ़ाएँ।

क्रियाएँ :–कपालभांति (25–50 चक्र नियमित)

द्वितीय चरण :–

प्रथम चरण के अभ्यास भलिभांति कर चुकने के बाद द्वितीय चरण में इन अभ्यासों को आगे बढ़ाया जाता है। तीसरे तथा चौथे सप्ताह तक इन अभ्यासों को करें।

आसन :–प्रथम चरण के पवनमुक्तासन–1,2,3 ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन, कटिचक्रासन के

अभ्यास करने के बाद निम्नलिखित अभ्यास करें।

- सूर्यनमस्कार– इसमें 12 स्थितियां होती है। अपनी क्षमतानुसार 5–5 चक्र सम्पूर्ण क्रिया को करें। सूर्य (सविता) का प्रखर तेज हमें स्वस्थ, प्रसन्न व पवित्र बना रहा है, ऐसा भाव बनाए रखें।
- विपरीतकरणी आसन
- भुजंगासन

प्राणायाम :–नाड़ी शोधन, सूर्यभेदी, उज्जायी तथा भस्त्रिका प्राणायाम।

- उज्जायी प्राणायाम

किसी भी ध्यानात्मक आसन (पद्मासन, सिद्धासन, सुखासन आदि) में बैठें, हाथ घुटनों पर। मेरूदण्ड, गर्दन सीधी रखें। सम्पूर्ण शरीर शिथिल करें, नेत्र बंद, कुछ देर तक सजगता श्वास पर रखें।

अब गले को सिकुड़ते हुए गहरी, धीमी श्वास खींचे। अनुभव करें कि श्वास गलें से स्पर्श करती हुई अन्दर जा रहीं है। श्वास को क्षमतानुसार अन्दर रोकें तथा गले को सीधा करते हुए धीरें–धीरें छोड़ दें। प्रारम्भ यह क्रिया दस मिनट तक करें, फिर धीरें–धीरें इसकी अवधि बढ़ा सकते है।

भस्त्रिका प्राणायाम

किसी भी ध्यानात्मक आसन (पद्मासन, सिद्धासन, सुखासन आदि) में बैठें, हाथ घुटनों पर। मेरूदण्ड, गर्दन सीधी रखें। सम्पूर्ण शरीर शिथिल करें, नेत्र बंद, कुछ देर तक सजगता श्वास पर रखें।

अब गहरी श्वास लें और नासिका से बलपूर्वक श्वास छोड़े। अधिक जोर न लगायें। इसके तुरन्त बाद उतने ही जोर के साथ श्वास को लें। श्वास लेते समय मध्य–पट नीचे की ओर तथा उदर बाहर की ओर जाना चाहिए। तथा श्वास छोड़ते समय मध्य–पट ऊपर और उदर भीतर की ओर जाना चाहिए। अपनी क्षमतानुसार इस अभ्यास को करते रहें, इसके बाद

अन्त में एक गहरी श्वास लें और धीरे–धीरे श्वास छोड़े। यह एक चक्र हुआ। इसका 5 चक्रों तक अभ्यास करें।

क्रियाएँ :–

- कपालभांति (25–50 चक्र नियमित)
- वमन (सप्ताह में एक बार)

तृतीय चरण :–

आसन :–द्वितीय चरण के अभ्यासों के अतिरिक्त निम्नलिखित अभ्यासों को चौथे सप्ताह के
बाद करना शुरू करें।

- सर्वांगासन
- शलभासन
- धनुरासन
- चक्रासन

प्राणायाम :–नाड़ी शोधन, सूर्यभेदी, उज्जायी तथा भस्त्रिका प्राणायाम(5–5 चक्र)

क्रियाएँ :–

- कपालभांति (25–50 चक्र नियमित)

  किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठे। सिर और मेरूदण्ड को सीधा रखते हुए हाथों को घुटनों पर रखें तथा आंखे बंद कर लें। उदर को फैलाते हुए दोनों नासिकाछिद्रों से गहरी श्वास लें और उदर की पेशियों को बलपूर्वक संकुचित करते हुए श्वास छोड़े।परन्तु अधिक जोर न लगायें। अगली श्वास में उदर की पेशियों को बिना फैलाये पूरक करें, इस हेतु किसी प्रकार का प्रयास नहीं करना हैं। प्रारम्भ में 10 बार पूरक रेचक करें। यह एक चक्र हुआ। 3 से 5 चक्र का अभ्यास करें।

- वमन (सप्ताह में एक बार)

सावधानियाँ :–

- कोई भी उच्च अभ्यास बिना कुशल मार्गदर्शक के न करें।
- किसी भी उच्च अभ्यास के लिए उत्सुकतावश प्रयास न करें।

13.4.2 निम्न रक्तचाप की प्राकृतिक चिकित्सा

साधारणतः निम्न रक्तचाप की चिकित्सा यही है कि आँतों की बार –बार सफाई की जाए, फलों और तरकारियों का रस लिया जाए और पीछे वर्णित विधिनुसार तैयार की जाए, फलों और तरकारियों का रस लिया जाए और पीछे वर्णित विधिनुसार तैयार किया हुआ खाद्य –पदार्थ ग्रहण कर शरीर का मल–निकाल दिया जाए। इस हालत में–माँस, मछली, शराब, चाय, कॉफी, मैदे की चीजों और उन सभी खाद्य पदार्थों तथा पेयों से पूरा–पूरा परहेज किया जाना चाहिए जो अप्राकृतिक माने गए हैं।

इस रोग में कुछ दिनों तक उपवास कर लेने के बाद 3 सप्ताह तक फलाहार करना चाहिए। उसके बाद सुबह 10 मिनट उदरस्नान और शाम को 8 मिनट मेहन स्नान करना चाहिए तथा कब्ज तोड़ने हेतु एनिमा लेते रहना चाहिए लेते रहना चाहिए। फिर फल और दूध पर कुछ दिनों तक रहकर धीरे –धीरे भोजन पर आ जाना चाहिए। इस रोग में भी लहसून का प्रयोग विशेष रूप से उपयोगी पाया गया है। इस रोग में परहेज और पथ्य वे ही रखने चाहिए, जो उच्च रक्तचाप में वर्णित है।

विशेष उपचार के लिए समूचे बदन की नित्य मालिश, मामूली गरम पानी में स्नान, विश्राम एवं शिथिलीकरण, सोने से पहले गरम पानी में नींबू का रस निचोड़कर पीना उत्तम है।

इस रोग के संबंध में स्मरणीय बात यह है कि रोग का विकार, उपचार का वही रूप प्रयोग में लाने से दूर होता है, जो रक्तप्रवाह को शुद्ध करने और शरीर को अपनी क्रिया स्वाभाविक रूप में करने की स्थिति में लाने में सहायक हो।

उच्च और आशावादिता के विचारों से रोगमुक्ति में सहायता मिलती है। इस दशा में ब्रह्मचर्य का पालन करना भी आवश्यक होता है क्योंकि शक्ति का व्यय होने पर आरोग्य लाभ में बहुत अधिक समय लगता है।

13.4.3 निम्न रक्तचाप की आहार चिकित्सा

निम्न रक्तचाप के रोगी को डॉक्टर लोग साधारणतयः अधिक खाने–पीने का सुझाव देते हैं, किन्तु इस भ्रांतिमूलक राय से सदा सतर्क रहना चाहिये। अधिक भोजन करने का अर्थ है मृत्यु को शीघ्र बुलाना। इस रोग में जो भोजन किया जाए, उसका संतुलित होतना आवश्यक है।

भोजन में उपयोगी खाद्य–तत्वों, विटामिन तथा खनिज लवणों आदि की मात्रा यथेष्ट हो। भोजन का सुपाच्य, सहज पचय, अनुत्तेजक तथा क्षारधर्मी होना भी आवश्यक है। फल, साग–सब्जियों का कच्चा रस, उबली तरकारी, तरकारी का सूप, दूध, दही, मधु, तरल गुड़ तथा 12 घण्टे की भीगी हुई किशमिश अथवा मुनक्का आदि ऐसे ही खाद्य पदार्थ हैं जिनका उचित मात्रा में सेवन करके निम्न रक्तचाप को रोगी पूरा–पूरा लाभ उठा सकता है।

यदि रोगी भात खाना पसंद करे तो उसे माँड़ सहित लेना चाहिए और रोटी चोकर सहित आटे की। लेकिन इस रोग में इस प्रकार शर्करा जातीय खाद्य पदार्थ बहुत कम मात्रा में लेने चाहिए अथवा सेवन करना ही नहीं चाहिए।

यह रोग शरीर में रक्त की कमी और कमजोरी से होता है। इसलिए रोगी को प्रोटीन प्रधान खाद्य पदार्थ अधिक मात्रा में ग्रहण करने चाहिए। प्रोटीन की प्राप्ति हेतु प्रधानतः दूध, पनीर, अण्डे, दही, मक्खन, बादाम आदि का अधिक मात्रा में सेवन करना चाहिए।

यदि रोगी को दस्त, कै अधिक आने से, रक्त अधिक निकल जाने से उसके शरीर का तरल कम हो चुका हो तो ऐसी दशा में उसको बार–बार पानी, दूध, फलों का रस पिलाएँ ताकि तरल की कमी दूर हो जाए।

अभ्यास प्रश्न –

1. लाल रक्त कोशिकाओं का जीवनकाल ..... दिनों का होता है–
   क. 120
   ख. 80
   ग. 360
   घ. 210
2. रक्तचाप का मापन किस यंत्र की सहायता से किया जाता है–
   क. माइक्रोस्कोप
   ख. इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम

ग. स्पाइरोमीटर
घ. स्फीग्मोमॅनोमीटर

लघुउत्तरीय प्रश्न –

1. निम्न रक्तचाप के प्रकार बताइयें।
2. निम्न रक्तचाप के विशेष उल्लेखनीय लक्षण बताईयें।
3. रक्त – परिसंचरण तंत्र के प्रमुखअवयवों के नाम बताईयें।

13.5 सारांश

रक्तचाप का सामान्य औसत से कम रहना, निम्न रक्तचाप कहलाता है। रक्त चाप में कमी कई कारणों से आती है। निम्न रक्तचाप के तीन प्रकार है–लाक्षणिक अल्प रक्तदाब, अज्ञात हेतुक अल्प रक्तदाब, ऊर्ध्व–स्थितिज अल्प रक्तदाब।निम्न रक्तचाप के लक्षणों में–सिर में चक्कर आना, थोड़ा परिश्रम करने पर भी थक जाना, सिर पीड़ा, मानसिक अवसाद एवं थकान, हाथ–पैरों से पसीना निकलना, हाथ–पैरों का ठण्डा बना रहना, हृदय की धड़कन आदि विशेष उल्लेखनीय है। इसकी चिकित्सा के रूप में योग काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्राकृतिक चिकित्सा तथा आहार चिकित्सा से भी निम्न रक्तचाप को सामान्यावस्था में ला सकते है।

13.6 पारिभाषिक शब्दावली

पूरक – श्वास को अन्दर लेना
रेचक – श्वास को बाहर छोड़ना
वमन – नमकीन गुनगुना पानी पीकर उल्टी करना

13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. घ

13.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रोग और योग – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
2. योग द्वारा रोगों की चिकित्सा – डॉ. फुलगेंदा सिन्हा
3. योग महाविज्ञान– डॉ. कामाख्या कुमार
4. शरीर–रचना एवं शरीर–क्रिया विज्ञान – श्रीनन्दन बन्सल
5. बृहद् प्राकृतिक चिकित्सा –डॉ. ओमप्रकाश सक्सेना
6. बृहद् आयुर्वेदिय चिकित्सा –डॉ. ओमप्रकाश सक्सेना
7. आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
8. डायग्नोसिस –जी. डी. सिंघल

13.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. योग चिकित्सा आधारभूत तत्व एवं सिद्धान्त – डॉ. सरस्वती काला
2. योग चिकित्सा संदर्शिका – डॉ. कामाख्या कुमार

13.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. निम्न रक्तचाप के प्रकार तथा उनके लक्षणों का वर्णन करें।
2. निम्न रक्तचाप की समग्र चिकित्सा पर प्रकाश डालें।

इकाई–14 उच्च रक्तचाप – कारण, लक्षण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 उच्च रक्तचाप – कारण, लक्षण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

14.3.1 रक्तचाप

14.3.2 उच्च रक्तचाप

14.3.3 उच्च रक्तचाप के कारण

14.3.4 उच्च रक्तचाप के लक्षण

14.3.5 उच्च रक्तचाप की चिकित्सा

14.4 उच्च रक्तचाप की वैकल्पिकचिकित्सा

14.4.1 उच्च रक्तचाप की यौगिक चिकित्सा

14.4.2 उच्च रक्तचाप की प्राकृतिक चिकित्सा

14.4.3 उच्च उक्तचाप की आहार चिकित्सा

14.5 सारांश

14.6 पारिभाषिक शब्दावली

14.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

14.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

14.10 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

हमारा हृदय निश्चय ही ऐसा बना है कि वह शरीर के अन्य अंग–अवयवों के साथ अंततक काम कर सकें। परंतु सभी अंग–अवयवों के कार्यरत होते हुए भी हमारा हृदय अचानक अपना काम करना क्यों बंद कर देता हैं ? हमारे हृदय को स्वाभाविक से अधिक कार्य न करना पड़े तो निश्चित रूप से वह हमारा अंततक साथ देगा, परंतु यदि उसे स्वाभाविक से अधिक कार्य करना पड़ता है तो वह अंदर ही अंदर कमजोर होते जाता है। उच्च रक्तचाप के व्यक्तियों में यह हृदय को कमजोर करने कि क्रिया बराबर होती रहती हैं।

विश्व में लाखों लोग रक्त – नलिका तथा हृदय के रोगों से पीड़ित है। इन रोगों को सामान्यतः रक्तवह – संस्थान के रोग कहा जाता है। अमेरिका तथा यूरोप के विकसित देशों में यह 'सबसे मारक रोग' बन चुका है। विकासशील देशों में भी यह रोग भीषण रूप ले रहा है। अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन के अनुसार वहाँ होने वाली मौतों में 50 प्रतिशत से अधिक मौतें इन्हीं रोगों से होती है। इन रोगों में से उच्च रक्तचाप एक महत्त्वपूर्ण रोग के रूप में जाना जाता है। उच्च रक्तचाप रक्त परिवहन तंत्र से सम्बन्धित एक प्रमुख समस्या है जिससे तात्पर्य रक्तचाप का सामान्य से अधिक हो जाना होता हैं।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जानेंगे कि –

- रक्तचाप का अर्थ क्या होता हैं
- उच्च रक्तचाप किसे कहते हैं
- उच्च रक्तचाप होने के विभिन्न कारण क्या हैं
- उच्च रक्तचाप के व्यक्ति में कौन – कौन से लक्षण पाये जाते हैं
- उच्च रक्तचाप केव्यक्ति को क्या यौगिक चिकित्सा दी जानी चाहिए
- उच्च रक्तचाप के व्यक्ति को क्या प्राकृतिक चिकित्सा दी जानी चाहिए
- उच्च रक्तचाप के व्यक्ति को क्या आहार चिकित्सा दी जानी चाहिए

14.3 उच्च रक्तचाप – कारण, लक्षण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

14.3.1 रक्तचाप–चूँकि उच्च रक्तचाप एक महत्त्वपूर्ण समस्या है अतः हमें यह जानना आवश्यक है कि उच्च रक्तचाप का सम्बन्ध हृदय तथा रक्त – नलिकाओं से किस प्रकार है। इनका मूल–भूत ज्ञान होना जरूरी है।

हमारा मनुष्य हृदय एक कड़ा तथा मांसपेशियों से बना पंप है, जिसका काम लगातार 70 –75 बार प्रति मिनट की औसत चाल से रक्त धमनियों में रक्त फेंकना है। हमारा हृदय शरीर के सभी भागों से शिराओं के माध्यम से अपने कक्षों में रक्त पाता है तथा धमनियों के द्वारा पुनः उस रक्त को शरीर के भागों में भेजता है।हमारा मनुष्य हृदय**रक्त परिसंचरण संस्थान (Circulatory System)** का मुख्य केन्द्रीय अंग है। हृदय एक मुलायम पतली थैली है जिसको Pericardium 'बाह्य हृदय आवरण' कहते हैं। हृदय एक अदभूत और ताकतवर पंप है, जो मशीनरी से बने पंपों की ही भाँति पिस्टन न होने पर भी गर्भ के बच्चे में चलना प्रारंभ होता है ओर जब तक मनुष्य जीवित रहता है, निरंतर रात – दिन बिना आराम किए, अपना कार्य करता रहता है। जब हृदय की माँसपेशियाँ ढीली हो जाने पर हृदय में रक्त

आ जाता है और जब हृदय रक्त से भर जाता है तब हृदय की माँसपेशियाँ (Muscles) सिकुड़ती है जिससे हृदय में जमा रक्त को धकेलकर फेंफड़ों में साफ करने के लिए भेज देता है। इसके साथ ही एक दूसरा पंप है जो फेंफड़ों से आए आक्सीजन मिश्रित शुद्ध रक्त को धक्का लगाकर महाधमनी (Aorta) में पहुँचाता है तथा उस रक्त धकेल कर धमनियों में पहुँचा देता है। जहाँ से धक्का लगते– लगते शरीर की समस्त धमनियाँ (Arteries) और उनकी शाखाओं द्वारा शरीर के प्रत्येक भाग की कोशिकाओं (सैल्स) में पहुँच जाता है।

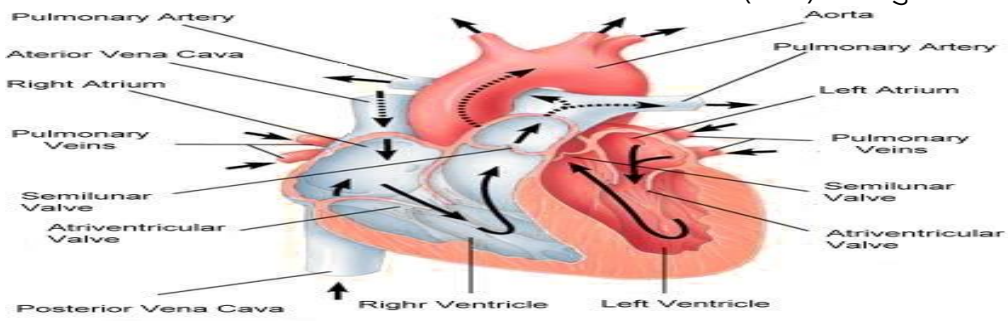

यदि स्टेथोस्कोप (श्रवण यंत्र) हृदय पर रखकर दिल की धड़कन को आप ध्यान पूर्वक सुनेंगे तो दो आवाजें सुनाई पड़ेंगी। प्रथम आवाज थोड़ी मध्यम किन्तु लंबी और द्वितीय आवाज छोटी परंतु तेज होती है। दोनों आवाजों के मध्य थोड़ा – सा अंतर होता है। बाद में थोड़े अंतरके बाद इस प्रकार दोनों आवाजें बार– बार सुनाई देती रहती है। हृदय की यह आवाजें लुप (Lup) डुप (Dup) की आवाजों जैसी सुनाई देती है। जब वेण्ट्रिकल सिकुड़कर – रक्त धमनियों को भेजता है तो पहली लंबी आवाज ''लुप'' सुनाई देती है। दूसरी आवाज ''डुप'' महाधमनी और फेंफड़ों की धमनी के कपाट (Valve) के बंद होने पर सुनाई देती है।

धमनियों तथा रक्त वाहिनियों में थोड़ी – थोड़ी देर बाद हृदय जीवन पर्यन्त धक्का लगाकर रक्त प्रविष्ट करता रहता है। धक्का लगाकर रक्त प्रविष्ट करने पर धमनी फैल जाती है। हृदय की धमनी में रक्त प्रविष्ट करने पर जो दबाव पड़ता है – उसको 'ब्लड प्रैशर' कहते हैं। हृदय में प्रत्येक बार धड़कने को Beat of the Heart (धड़कन) कहते हैं। हर धड़कन के समय हृदय में जाता रक्त धक्का लगाकर धमनी में प्रविष्ट करता है। महाधमनी पहले ही रक्त से भरी और फैली होती है। हृदय की हर नई धड़कन उसको और अधिक फैला देती है। इस विधि से हृदय को बार – बार धक्के लगाकर रक्त धकेलने से धमनियों में लहरों की भांति रक्त आगे ही बढ़ता जाता है। यही कारण है कि नाड़ी में रक्त के धक्के लगने के कारण लहर अथवा तड़प – सी प्रतीत होती है। इस प्रकार हृदय धक्का लगाकर समस्त शरीर में लहरों के रूप में रक्त पहुँचाता रहता है। जब हृदय सिकुड़कर अपने अंदर का रक्त महाधमनी में प्रविष्ट करता है तो इस सिकुड़ने की क्रिया को ''सिस्टोल'' (Systole) कहतेहैं। और जब हृदय सिकुड़कर शरीर में रक्त प्रवेश करने पर धमनी पर जो दबाव पड़ता है उसे सिस्टोलिक ब्लडप्रैशर (Systolic Bloood Pressure) कहते हैं। रक्त धकेल चुकने पर जब हृदय थोड़ी सी देर के लिए आराम करता है और फेंफड़ों से ताजा रक्त लेता है तो इस समय को डायस्टोल (Diastole) कहते हैं। इस समय के दबाव को ''डाय स्टोलिक ब्लड प्रैशर (Diastolic Blood Pressure) कहते हैं।

हमें जीवित रहने के लिए हमारे शरीर के प्रत्येक भाग में धमनियों के माध्यम से रक्त को पहुँचाया जाता है। इसके माध्यम से शरीर का पोषण होता है। इन रक्त–वाहिनी नलिकाओंमें रक्त का संचार का काम हकारा हृदय ही करता हैं। रक्त को धमनियों में आगे बढ़ाने की हृदय की क्रिया को रक्तचाप कहा जाता है। इसे ही ब्लडप्रेशर भी कहते हैं।वस्तुतः रक्तचाप हृदय की वह स्वाभाविक शक्ति है जिसके माध्यम से हृदय शरीर के रक्त को शरीर के समस्त अंग–अवयवों में अनवरत रूप से प्रवाहित करता रहता हैं। सामान्य स्वस्थ वयस्क का रक्तचाप का परिसर औसतन 120 mm. Hg. से 80 mm. Hg. होता हैं। अर्थात् सामान्य स्वस्थ व्यक्तियों में 120 मि.मि. पारद (mm. Hg.) प्रकुंचन दाब (Systolic pressure)और 80 मि.मि. पारद (mm. Hg.) अनुशिथिलन दाब (Diastolic pressure) सामान्य माने जाते है।

रक्तचाप का मापन करने के लिए स्फीग्नोमॅनोमीटर का उपयोग किया जाता हैं।

Age	**15**	**to**	**19Min**	**Average**	**Max**
Systolic			Range105	117	120
Diastolic			Range73	77	81

Age	**20**	**to**	**24**Min	Average	Max
Systolic			Range108	120	132
Diastolic			Range75	79	83

Age	**25**	**to**	**29**Min	Average	Max
Systolic			Range109	121	133
Diastolic			Range76	80	84

Age	**30**	**to**	**34**Min	Average	Max
Systolic			Range110	122	134
Diastolic			Range77	81	85

Age	**35**	**to**	**39**Min	Average	Max
Systolic			Range111	123	135
Diastolic Range			78	82	86

Age	**40**	**to**	**44Min**	**Average**	**Max**
Systolic			Range112	125	137
Diastolic			Range79	83	87
Age	**45**	**to**	**49**Min	Average	Max
Systolic			Range115	127	139
Diastolic			Range80	84	88
Age	**50**	**to**	**54**Min	Average	Max
Systolic			Range116	129	142
Diastolic			Range81	85	89
Age	**55**	**to**	**59**Min	Average	Max
Systolic			Range118	131	144
Diastolic			Range82	86	90
Age	**60**	**to**	**64**Min	Average	Max
Systolic			Range121	134	147
Diastolic Range			83	87	91

14.3.2 उच्च रक्तचाप–आयु वर्ग विशेष के लिए मान्य अधिकतम रक्त–चाप से अधिक रक्त–चाप हो जाना उच्च रक्तचाप कहलाता हैं। उच्च रक्तचाप को हाइपरटेन्शन तथा हाई ब्लड प्रेशर अति रक्तदाब, रक्तभार वृद्धि, धमनी जरा रोग आदि नामों से भी जाना जाता हैं।

जब तक शरीर की धमनियाँ और रक्त–नलिकाएँअपनी स्वाभाविक दशा में रहती हैं, अर्थात् जबतक लचीली रहती है एवं उनके छिद्र पूरे खुले रहते हैं तब तक रक्त को शरीर में आगे बढ़ाने के लिए हृदय को आवश्यकता से अधिक दबाव डालने की आवश्यकता नहीं पड़ती। स्वाभाविक रूप से हृदय से निकलकर रक्त धमनियों और रक्त–नलिकाओं के माध्यम से शरीर के प्रत्येक भाग में पहुंचता रहता है।परंतु जब धमनियों और रक्त–नलिकाओं के छिद्र विभिन्न कारणों से संकरे पड़ जाते है तब हृदय को अस्वाभाविक रूप से अधिक दबाव ड़ालकर पतली और तंग रक्त नलिकाओं में रक्त को ठेलना पड़ता है। इस कार्य हेतु हृदय को अतिरिक्त परिश्रम करना पड़ता है। इसे ही उच्च रक्तचाप कहा जाता हैं।

रक्तचाप संबंधी क्रियाएँ मस्तिष्क में स्थित एक विशेष स्नायुकेंद्र के नियंत्रण में होती हैं। हमें इसका आभास नहीं होता। ग्रंथियों से निकलने वाले कुछ रासायनिक पदार्थ भी ऐसा ही प्रभाव ड़ालते है। इस प्रकार शरीर की आवश्यकता के अनुसार रक्तचाप प्रत्येक क्षण घटता बढ़ता रहता है। स्वस्थ अवस्था में यह रक्तचाप के घटने बढ़ने का अन्तर अधिक नहीं होता।

उच्च रक्तचाप प्रारंभिक उच्च रक्तचाप अथवा अज्ञात हेतुक उच्च रक्तचाप एवं द्वितीयक उच्च रक्तचाप अथवा लाक्षणिक उच्च रक्तचाप, दो प्रकार का होता हैं। वह उच्च रक्तचाप जिसमें बाह्यरूप से उसकी उत्पत्ति का कोई स्पष्ट कारण नहीं मिलता है उसे अज्ञात हेतुक उच्च रक्तचाप अथवा प्रारंभिक उच्च रक्तचाप कहा जाता है। 90प्रतिशत व्यक्ति इसी प्रकार के उच्च रक्तचाप से पीड़ित रहते है। इसके विपरीत कुछ ऐसे भी रोगी होते है जिनमें शुरू से ही कुछ न कुछ लक्षण अवश्य मिलते है। ऐसे उच्च रक्तचाप को लाक्षणिक उच्च रक्तचाप अथवा द्वितीयक उच्च रक्तचाप कहते है। यह अन्य रोगों के फलस्वरूप भी होता हैं।

14.3.3उच्च रक्तचाप के कारण–शरीर की धमनियों और रक्त–नलिकाओं का लचिलापन खोने और उनके छिद्रों के तंग होने का एक मात्र कारण व्यक्ति का अपना कृत्रिम एवं अप्राकृतिक जीवनशैली तथा अनियमित आहार–विहार होता हैं। आहार–विहार में गड़बड़ी के कारण रक्त में विकार बढ़ने लगते है और इनका वहन रक्त द्वारा संपूर्ण शरीर में होते रहता हैं जो धीरे–धीरे धमनियों एवं रक्त–नलिकाओं को कड़ा करता है। आहार में वसा के अधिक सेवन के फलस्वरूप यह अतिरिक्त वसा रक्त के माध्यम से शरीर की धमनियों और रक्त–नलिकाओं के छिद्रों को चिपककर रक्त संचरण के मार्ग को संकुचित कर देती हैं।
किसी भी व्यक्ति का रक्तचाप निम्न परिस्थितियों में स्वाभाविक रूप से बढ़ सकता है–

- क्रोध आदि मानसिक आवेगों में।
- व्यायाम करने से।
- स्त्री प्रसंग (मैथुन) करते समय।
- घबराहट या भय की दशा में।
- भोजन के पश्चात।
- उत्तेजक साहित्य को पढ़ते समय।
- उत्तेजक दृश्य आदि देखते समय।
- किसी प्रकार की खुशी प्राप्त होने पर।
- तीव्र खुशबू या बदबू से।
- जोशीली आवाज सुनने से।
- ठण्डे जल से नहाने से।

मानसिक आवेगों एवं शारीरिक श्रम के अनुसार समय–समय पर रक्तदाब सामान्य से अधिक हो जाता है जो स्वाभाविक भी है। इस प्रकार कम समय के लिए बढ़े हुए रक्तदाब को उच्च रक्तचाप नहीं कहते है।जब रक्तचाप स्थायी रूप से अधिक रहने लगता है तब उसे उच्च रक्तचाप की संज्ञा दी जाती है।
उच्च रक्तचाप के कारण निम्नवत हैं–

- बार बार या अधिक खाना।
- मैदा से बनी हुई चीजों का अधिक सेवन।
- तली–भुनी चीजों का अधिक सेवन करने से।
- अपर्याप्त शारीरिक व्यायाम।

- मद्य, चाय, तम्बाकू, कॉफी आदि का अधिक मात्रा में तथा अधिक समय तक सेवन करने से।
- शरीर में यूरिक एसिड की वृद्धि अर्थात् गठिया की प्रवृत्ति होने पर।
- ऐलोपैथिक औषधियाँ एड्रीनलीन तथा इफेड्रीन का अधिक प्रयोग करने से।
- थायरायड ग्रंन्थि किसी कारण से अधिक क्रियाशील या निष्क्रिय हो जाती है।
- पियूष ग्रंन्थि की प्रबलता से धमनी संकोच होने से।
- महिलाओं में रजोधर्म बन्द होने पर डिम्ब ग्रंथियों का स्त्राव मन्द पड़ जाने से।
- बड़ी आयु में जब धमनियों का लचीलापन कम हो जाता है तब हृदय संकोच के समय धमनियों के फैल नहीं पाने के कारण।
- जो लोग व्यायामशील तथा अत्यधिक चिन्तनशील एवं आवेश प्रधान होते है उनमें पैरासिम्पेथिटिक की अपेक्षा सिम्पेथिटिक नाड़ियों की प्रबलता रहती है जिससे उनमें रक्तचाप बढ़ जाता हैं।
- वृक्क के लगभग सभी रोगों में जिनमें वृक्क के बहुत बड़े भाग का नाश हो जाता है।

14.3.4 उच्च रक्तचाप के लक्षण

मस्तिष्क संबंधी–उच्च रक्तचाप के75 प्रतिशत रोगियों में प्रायः शिरशूल मिलता है। ये शूल सिर के पश्चिम प्रदेश में रहता है तथा विशेष रूप से सुबह के समय जागकर उठने पर होता है, जो बाद में धीरे–धीरे कम होते जाता है। रोगी के सिर में बार–बार चक्कर आता है और खड़े रहने में इधर–उधर धक्के से लगते है।
मस्तिष्क की धमनियों में कठोरता आने से रोगी की बौद्धिक, मानसिक क्षमताओं में कमी आती है। बुद्धि, स्मृति, एकाग्रता आदि की शक्तियाँ घट जाती है। जिसके फलस्वरूप स्वल्प कारणों से ही रोगी व्याकुल एवं अशान्त हो जाता है। किसी किसी रोगी में बोलने की शक्ति नष्ट हो जाती है तो किसी–किसी रोगी में दृष्टि–मन्दता का लक्षण हो जाता है। किसी–किसी रोगी में थोड़े समय के लिए मूर्च्छा अथवा गहरी निद्रा होने का लक्षण भी मिलता है। अन्त में किसी मस्तिष्क धमनी में अवरोध होकर मूर्च्छा तथा पक्षाघात के लक्षण हो जाते हैं।

हृदय संबंधी– उच्च रक्तचाप के आधे के लगभग रोगियों में हृदय कम्पन एवं श्वास काठिन्य के लक्षण होने लगते हैं। श्वास केन्द्र को रक्त के या ऑक्सीजन कम मिलने तथा रक्त में एसीडोसिस के बढ़ जाने से श्वास काठिन्य हो जाता है अथवा इसकी उत्पत्ति फुफ्फुसों में ओडिमा होने से होती है। श्वास काठिन्य का उपद्रव रात्रि में सोने के 2 घण्टे पश्चात् तीव्र रूप में उत्पन्न हो सकता है, जिसे हृदयजन्य श्वास कहते हैं।

रक्तचाप के बढ़ने पर हृदयशूल के दौरे आने लगते हैं। थोड़े परिश्रम से अथवा बिना परिश्रम के भी दौरे पड़ने लगते हैं। सामान्य हृदयशूल, हृदय धमनी के संकीर्ण होने से होता है परन्तु उच्च रक्तचाप में हृदय धमनी संकीर्णन होते हुए भी दौरा पड़ता हैं। उच्च रक्तचाप से कभी–कभी नासा रक्तस्त्राव भी हो सकता है।

वृक्क संबंधी– वृक्कों की सूक्ष्म धमनियों के कमजोर होने से उनकी ट्यूबूल्स का पोषण कम होता है जिससे उच्च रक्तचाप के आधे के लगभग रोगियों में मूत्र रात्रि

के समय अधिक मात्रा में तथा बार–बार त्याग होने का लक्षण होता है। उच्च रक्तचाप की प्रारम्भिकावस्था से ही यह लक्षण मिलने लगते है। उच्च रक्तचाप के उग्र स्वरूप में मूत्र त्याग की मात्रा और भी अधिक बढ़ जाती है।

- जंघाओं की माँसगत सूक्ष्म धमनियों के कठोर हो जाने से प्रान्त भागों की माँसपेशियों का पोषण कम हो जाता है जिससे रात्रि के समय उनमें वेदना होने लगती है।
- पैरों के धमनी काठिन्य के कारण रक्त कम मिलने से उनकी वसा शुष्क हो जाती है और वे कृश होते जाते हैं।
- पैरों तथा हाथों को रक्त कम मात्रा में मिलने के कारण नाखुन शुष्क तथा कठोर दिखाई देने लगते है।
- त्वचा को रक्त न मिलने से त्वचा भी पतली, शुष्क एवं झुरीदार हो जाती है।
- जब आमाशय की धमनियों में क्षीणता आती है तो अजीर्ण सम्बन्धी लक्षण होने लगते हैं।
- कभी–कभी आँत, पित्ताशय तथा प्लीहा की धमनियाँ कठोर हो जाती है तब इनमें तीव्र वेदना होने लगती है।
- फुफ्फुस की किसी धमनी में अवरोध होने से पार्श्वशूल और रक्त वमन के लक्षण उत्पन्न होते हैं।
- नेत्रों की रेटिना की धमनियों के कठोर एवं संकुचित हो जाने से वह चाँदी के तार के समान तुड़ी–मुड़ी दृष्टिगोचर होती है तथा शिराएँ भरी हुई दीखती है।

उपरोक्त लक्षणों के अतिरिक्त रोगी में निम्न लक्षण भी होते है–

- हमेशा आलस्य बने रहना।
- शारीरिक एवं मानसिक परिश्रम से अनिच्छा।
- समय–समय पर श्वास बन्द होने का भाव।
- रात्रि के समय अच्छी नींद का न आना अथवा बिल्कुल ही न आना।
- बीच–बीच में नाक से रक्तस्त्राव।
- हृदय में दर्द।
- पैरों में झुनझुनी इत्यादि।

14.3.5 उच्च रक्तचाप की चिकित्सा–जिन कारणों से रक्तचाप बढ़ता है, उन कारणों से बचना ही इस रोग की प्रमुख चिकित्सा है। साथ ही साथ स्वास्थ्य रक्षा के साधारण नियमों के नित्य प्रतिपालन करने की आदत ड़ालनी चाहिए। इस रोग की चिकित्सा हेतु समग्र चिकित्सा के रूप में योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आहार चिकित्सा आदि का उपयोग किया जा सकता है। इन चिकित्सा पद्धतियों के माध्यम से सख्त हो गई धमनियों को सामान्य करने का प्रयास किया जाता है, रक्त में से चर्बी की मात्रा को कम किया जाता है तथा तनावमुक्त रहने का प्रयास करते है।

1.4 उच्च रक्तचाप की समग्र चिकित्सा

1.4.1 उच्च रक्तचाप की यौगिक चिकित्सा

योग चिकित्सा सिद्धान्त :–बहुत अधिक उच्च रक्तचाप के समय रोगी को योग चिकित्सा लाभदायक नहीं होगी। इसका उपयोग तभी किया जाना चाहिए जब रोगी संकट में फंसा हुआ न हो।

योग चिकित्सा को तीन चरणों में दिया जा सकता है:–

प्रथम चरण :–

प्रथम चरण में केवल शवासन का अध्ययन कराना चाहिए। इसे दो से तीन सप्ताह तक कराया जाना चाहिए।

शवासन की विधि :–

पीठ के बल लेट जाएँ और दोनों हाथों को जमीन पर शरीर से लगाकर रखें। दोनों पैर सीधे रहें, एड़ियाँ सटी रहें और पंजे खुले रहें। अब आँखें बंद करके समस्त शरीर को ढीला कर दें। उस मय बहुत धीरे–धीरे साँस लें और चित्त की मनोवृत्तियों को अंतर्मुख कर दें। पैरों के अँगूठों को ढीला करने की क्रिया आरंभ करें तथा क्रमशः पिंडली, पीठ, छाती, गर्दन और सिर की माँसपेशियों को ढीला करते जाएँ। इस बात का ध्यान रहे कि पेट, छाती, हृदय तथा मस्तिष्क सभी ढीले पड़ जाएँ। यह एक क्रम से चलाना चाहिए। इससे पूर्ण शान्ति, विश्राम तथा सुख प्राप्त होगा।

शवासन का अभ्यास प्रतिदिन 2 बार अवश्य करना चाहिए। इसे 25 – 30 मिनट तक किया जा सकता है। शीघ्रता में इसे न करें। धैर्य के साथ इसे अच्छी तरह तथा प्रसन्नतापूर्वक करें। ध्यान रखें शवासन के समय पेट खाली रहें, भोजन से भरा न हो।

शवासन के लाभ :–

शवासन का नियमित अभ्यास उच्च रक्तचाप पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। आतंरिक अंग – अवयव तथा स्नायुओं को आराम प्रदान कर यह वहाँ की गड़बड़ियों को दूर करता है। धमनियों को सामान्य बनाकर यह उच्च रक्तचाप को कम करता है तथा धीरे – धीरे सामान्य अवस्था में ला देता है।

द्वितीय चरण :–

प्रथम चरण में तीन सप्ताह तक शवासन का अभ्यास करने के बाद चौथे एवं पांचवे सप्ताह में निम्नलिखित अभ्यास करवाने चाहिए–

- संधिसंचालन के अभ्यास – इसमें पादांगुली नमन, गुल्फ नमन, गुल्फ घूर्णन, जानुनमन, जानु चक्र, जानुफलकाकर्षण, अर्द्धतितली आसन, पूर्णतितली आसन, श्रोणीचक्र, वज्रासन, मुष्ठिका बंध, मणिबंध नमन, मणिबंध

चक्र, कोहनी नमन, स्कन्ध चक्र, ग्रीवा संचालन के अभ्यास आते है। इन अभ्यासों को श्वास प्रश्वास के तालमेल के साथ सम्पन्न करें। प्रत्येक अभ्यास को पाँच बार दोहराएँ। अभ्यास के दौरान थकान महसूस होने पर बिच–बिच में थोड़े समय के लिए शवासन का अभ्यास करें।

- द्वितीय चरण के दौरान शवासन का अभ्यास अलग से भी करना है। शवासन के अभ्यास की विधि प्रथम चरण जैसी ही है।
- नाड़ीशोधन प्राणायाम तथा शीतली प्राणायाम के अभ्यास प्रतिदिन पाँच चक्र करें।
- नाड़ी शोधन प्राणायाम –
  किसी भी ध्यानात्मक आसन (पद्मासन, सिद्धासन, सुखासन आदि) में बैठें, हाथ घुटनों पर। मेरूदण्ड, गर्दन सीधी रखें। सम्पूर्ण शरीर शिथिल करें, नेत्र बंद, कुछ देर तक सजगता श्वास पर रखें।
  दाएँ हाथ की तर्जनी एवं मध्यमा को भ्रूमध्य पर रखें तथा अंगूठे को दायीं नासिका तथा अनामिका को बायीं नासिका की ओर रखें। अब दायीं नासिका को बन्द करते हुए बायीं नासिका से क्षमतानुसार धीमी गति से श्वास लें तथा दायीं नासिका से उसे धीरे–धीरे बाहर छोड़े। प्रयास रहें कि श्वास लेनें, एवं छोड़ने का समयानुपात लगभग समान हो। यह एक चक्र नाड़ी शोधन प्राणायाम हुआ। प्रारम्भ में पाँच चक्र से प्रारम्भ करें। बाद में धीरे–धीरे चक्र को बढ़ाएँ।

तृतीय चरण :–

छठे सप्ताह से आगे इस चरण में द्वितीय चरण में वर्णित अभ्यासों के साथ – साथ निम्नलिखित अभ्यास करने चाहिए–

- ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन (पाँच– पाँच चक्र)

ताडासन –

खड़े होकर दोनो पैर एक साथ, हाथ की हथेलियों को आपस में फँसाकर, पलट कर सिर के उपर रखिए, सामने दीवार में एक बिन्दु निश्चित कीजिए, जिसमें अपनी चेतना को एकाग्र रखना है। चेतना को केन्द्रित रखते हुए, श्वास लेते हुए, एड़ी और हाथ को उपर उठाइये, कोहनियों को सीधा कीजिए, पंजों के बल आने का प्रयास कीजिए, श्वास छोडते हुए धीरे–धीरे नीचे। इस क्रिया को 5 बार कीजिए।खिंचाव को अनुभव कीजिए– उदर, छाती, जाँघ, पिंडली व बाँह की माँसपेशियों में, फिर दोनों हाथेलियों को बगल में झुलने दीजिए, इसी स्थिति में विश्राम। अभ्यास के प्रभाव को जानने का प्रयास कीजिए।

तिर्यक–ताड़ासन –

दोनो पैरों के बीच में एक से डेढफीट की दूरी। हाथ की हथेलियों को ताड़ासन की स्थिति में उपर उठा कर फंसाये, श्वास छोडते हुए बांयी तरफ झुकिये। खिंचाव को अनुभव कीजिये, श्वास लेते हुए बीच में आएं, श्वास छोडते हुए दाहिनी तरफ झुकिये, कोहनी सीधी रहेगी, ध्यान रहे

कोहनी आगे या पीछे नही झुकनी चाहिए। कटिप्रदेश में, कंधास्थि में, हल्की पीड़ा उत्पन्न की जा रही है, दोनों तरफ समान रूप से झुकिये। बाँहों में, जाँघों में, उदर और छाती की मांसपेशियों में सक्रियता अनुभव कीजिए।

कटिचक्रासन –

हथेलियों को कंधे की सीध में उपर उठाइए, पैरों को फैलाए रखिये, श्वास छोडते हुए बांयी तरफ मुडिये, बांयी हथेली दायीं कमर में, दाहिनी हथेली बायें कंधे पर, रीढ़ के हड्डियों में ऐठन महसुस कीजिए। श्वास लेते हुए बीच में आइये, कोहनी को फैलाए रखिए। श्वास छोडते हुए, दूसरी तरफ मुड़ियें। दाहिनी हथेली कमर में, बांयी हथेली कंधे पर। क्रमशः बाएँ–दाएँ इसी क्रिया को 5–5 बार दोहराएँ।

- शवासन 15 मिनट

- नाड़ीशोधन प्राणायाम, शीतली प्राणायाम, सीत्कारी प्राणायाम, भ्रामरी प्राणायामके अभ्यास प्रतिदिन पाँच चक्र करें।

सावधानियाँ–

- कोई भी उच्च अभ्यास बिना कुशल मार्गदर्शक के न करें।
- बीच में जब भी परेशानी महसूस हो, शवासन में लेट कर सोह्म का अभ्यास करें।

4.4.2 उच्च रक्तचाप की प्राकृतिक चिकित्सा

जिन कारणों से रक्तचाप बढ़ने का रोग होता है, उन कारणों से बचना इस रोग की प्रमुख चिकित्सा है। साथ ही साथ स्वास्थ्य रक्षा के साधारण नियमों के नित्य प्रतिपालन करने की आदत डालनी चाहिए।

स्वास्थ्य रक्षा के साधारण नियम इस प्रकार है –

- सुबह– शाम शक्तिनुसार वायु सेवनार्थ टहलना।
- उषाःपान करना।
- नीबू का रस मिला जल में प्रचुर मात्रा में पीना ।
- भोजन चबा – चबाकर करना ।
- भोजन के समय पानी न पीना।
- भोजनोपरान्त मूत्रत्याग करना तथा कम से कम 50 कदम टहलना।
- तदुपरान्त थोड़ा आराम करना ।
- भोजन करने के 2 घण्टे बाद खूब पानी पीना।
- शाम का खाना सूर्यास्त से पूर्व खा लेना।
- भूख न होने पर खाना न खाना।
- प्रातः समय सूर्योदय से पूर्व ही बिस्तर से उठ जाना।
- दिन में न सोना।
- प्रसन्नचित्त रहना।

रक्तचाप के रोग में औषधियों का प्रयोग बहुत ही हानिकारक सिद्ध होता है। अतः इस रोग में भूलवश भी औषधि का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

इस रोग में यदि हो सके तो कुछ दिनों तक उपवास चलाया जाना चाहिए और यदि यह संभव न हो तो 5 से 10 दिनों तक फलाहार अथवा कच्ची और उबली तरकारियों पर ही रहना चाहिये। यदि तरकारियों पर ही रहा जाए तो जलपान में गाजर, खीरा आदि का एक गिलास रस लिया जाना चाहिए, दोपहर का भोजन केवल सलाद का होना चाहिए और शाम को केवल उबली तरकारियाँ खाई जानी चाहिए। एक समय में केवल एक प्रकार का फल खाना चाहिए तथा इन दिनों प्रतिदिन सुबह–शाम को गुनगुने पानी का एनिमा भी प्रयोग करना चाहिए।

तरकारी अथवा फलाहार का उपर्युक्त क्रम चलाने के बाद से एक माह तक सुबह – शाम महनस्नान और शाम को उदरस्नान करना चाहिए तथा रात भर के लिए कमर की पट्टी भी लगानी चाहिए।

सप्ताह में 1 बार एप्सम साल्टबाथ और दो बार पैरों को गरम स्नान भी लेना चाहिए। यदि अधिक कष्ट हो तो 5 से 7 मिनट तक गरम जल में स्नान करना चाहिए और उसके बाद सिर पर गीली मिट्टी बाँधनी चाहिए।

हृदय में धड़कन आदि का रोग हो तो गरम जल में स्नान नहीं करना चाहिए। आवश्यकता हो तो सप्ताह में 1 – 2 बार 45 मिनट से 1 घण्टा तक शरीर की भीगी चादर की लपेट भी लगावें। उस वक्त सिर पर ठण्डे पानी से भीगा गमछा और पैरों के पास गरम पानी से भरी बोलतें अवश्य रखनी चाहिए तथा बाद को रोगी को एक शीतल घर्षण स्नान देना चाहिए।

त्वचा की क्रिया ठीक करने के लिए सुबह–शाम आधा–आधा घण्टा के लिए सारे शरीर की मृदु मालिश करनी चाहिए। मालिश सूखी की जाए तो अति उत्तम है। उसके बाद गीले कपड़े से समूचे शरीर को रगढ़ना भी आवश्यक है।

उच्च रक्तचाप में ठण्डा अथवा बहुत ठण्डा स्नान उपयोगी नहीं होता। यदि इससे लाभ मालूम हो तो उस लाभ को स्थायी लाभ नहीं समझना चाहिए क्योंकि ठण्डा स्नान कालान्तर में रक्तचाप के रोगी को हानि ही पहुँचाता है। जब रक्तचाप ठीक हो जाए और शरीर की जीवनीशक्ति लौट आए केवल तभी रोगी को ठण्डा स्नान लाभकारी सिद्ध हो सकता है और तभी उससे स्थायी लाभ भी मिल सकता है। उस वक्त ठण्डा स्नान करने के लिए सर्वप्रथम रोगी को अपनी हथेलियों से अपने अंग–अंग को खूब रगड़–रगड़ कर सूखी मालिश करनी चाहिए। यह मालिश खुरदरें तौलिये से भी की जा सकती है। मालिश कम से कम सात मिनट तक अवश्य की जानी चाहिये। तदुपरान्त ठण्डे अथवा हल्के गरम पानी से नहाना चाहिए किन्तु स्नान देर तक नहीं करना चाहिए। यदि गरम पानी से स्नान किया जाए, तो गरम परनी सिर पर नहीं डालना चाहिए। स्नान कर चुकने के बाद भी स्नान करने से पूर्व की ही भाँति समूचे शरीर की सूखी मालिश करके शरीर का जल सुखा डालना चाहिए।

यदि रक्तचाप के रोगी को हृदय का भी कोई रोग हो तो उसे गरम जल से स्नान नहीं करना चाहिए। ऐसी दशा में 90^0 से 100^0 F के जल से 10 – 20 मिनट तक स्नान करना ठीक होता है।

उच्च रक्तचाप के रोगी के शरीर की त्वचा प्रायः अस्वस्थ होती है, उसके चर्म के छिद्र लाखों –करोड़ों मृतकोषों से भरे होते हैं। परिणामतः रोगी के रक्त की सफाई उनके द्वारा पूर्णतः नहीं हो पाती। ऐसी स्थिति में त्वचा को सक्रिय करने हेतु शरीर को किसी प्रकार गरम कर लेने के उपरान्त 'आर्द्र घर्षण स्नान' अर्थात्Cold Friction का सहारा लेना चाहिए।

रक्तचाप के रोग में शरीर के ऊपर से नीचे की ओर मालिश नहीं की जाती। बल्कि मालिश की रगड़ पैरों से जाँघों की ओर होनी चाहिए तथा मालिश रगड़ सहित गहरी होनी चाहिए। मालिश करते समय जब रीढ़ की बारी आए तो नितम्ब की रगड़ और मालिश के बाद नितम्ब से सीधे सिर की ओर मालिश नहीं करनी चाहिए।

इसलिये दाँए नितम्ब से बाँयी भुजा की और तथा बाँए नितम्ब से दाँयी भुजा की और मालिश करनी चाहिए। सिद्धान्ततः मालिश में रक्त को सदैव की ओर ढकेलना चाहिए, किन्तु रक्तचाप के रोगी की मालिश इस नियम के विपरीत किए जाने का लाभकारी विधान है।

यदि किसी कारणवश मालिश की विधि न आती हो तो उसकी जगह सप्ताह में 1 बार गरम स्नान किया जा सकता है। इससे धमनियों के कड़ेपन में लाभ होता है। इसकी विधि इस प्रकार है –

एक बर्तन में 1 मुट्ठी पिसा नमक डालें फिर उसमें थोड़ा –सा जल मिलाकर – मिश्रण को गाढ़ा कर लें। तदुपरान्त उस मिश्रण या घोल से शरीर के अंग – प्रत्यंगों को रगड़े। यदि शरीर पर कहीं घाव हो, तो उस स्थान पर यह घोल न लगने दें, अन्यथा वहाँ प्रदाह होने के कष्ट होगा। जब नमक का घोल शरीर पर सूख जाए तो गरम पानी से स्नान करके शरीर को साफ कर लें। उसके बाद जल्दी से ठण्डे पानी का तौलियास्नान कर लें अथवा आर्द्र घर्षणस्नान कर लें। इस प्रयोग से त्वचा के बन्द छिद्र खुल जाते हैं और उनसे होकर रक्त की कुछ खराबियाँ पसीने के रूप में बहकर बाहर निकल जाती है, जिससे रोगी हल्कापन और फुर्ती तथा ताजगी का अनुभव करता है।

शरीर पर आवश्यकतानुसार ही हल्के वस्त्र धारण करने का भी महत्व कम नहीं है। भारी–भरकम लबादों से हर वक्त ढँके शरीर की त्वचा कभी भी स्वास्थ नहीं रह सकती। इसी प्रकार जिन कपडों की छिद्रों से छानकर बाहर की हवा भीतर प्रवेश करके त्वचा को न छुए, ऐसे वस्त्र भी स्वास्थ्यकारी नहीं होते। खद्दर के कपड़े स्वास्थ्यकारी कहे जा सकते हैं। हम केवल अपनी नाक के दो छिद्रों से ही साँस नहीं लेते, बल्कि त्वचा के असंख्य छिद्रों रूपी नाकों से भी साँस लेते हैं। अतः हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि हमारी त्वचा अधिकाधिक समय तक वायु के संपर्क में रहे यह व्यवस्था तभी हो सकती है जब तक प्रत्येक मौसम में आवश्यकतानुसार कपड़े धारण करें अधिक नहीं।

उच्च रक्तचाप के रोगियों को अपनी खोपड़ी की त्वचा विशेष रूप से परिष्कृत तथा स्वस्थ रखनी चाहिए क्योंकि उसके द्वारा शरीर का दूषित द्रव्य कम मात्रा में निकलता है। इसलिये खोपड़ी की त्वचा और बालों को भी सप्ताह में कम से कम एक बार तो अवश्य ही ठण्डे पानी से आँवले के पानी से या बेसन के घोल से परिष्कृत कर देना चाहिए।

साबुन का प्रयोग इस कार्य हेतु भूलकर भी नहीं करना चाहिये। सिर को धोते समय गरम पानी का भी प्रयोग नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार रोगी को सिर धोने में अधिक ठण्डे पानी का भी प्रयोग नहीं करना चाहिये।

उच्च रक्तचाप के रोग में मालिश की ही भाँति व्यायाम का भी बहुत ही महत्व है किन्तु इस रोग में भारी और कष्टसाध्य व्यायाम लाभकारी नहीं होते। मात्र हल्के और आरामदेह व्यायाम ही लाभप्रद है। फिर जिन रोगियों का रोग बहुत बढ़ा हुआ हो, उन्हें तो हल्के व्यायाम का भी परामर्श नहीं दिया जा सकता। उनके लिए तो प्रारंभ में पूर्ण विश्राम करना ही ठीक होता है और जब रक्तचाप थोड़ा घट जाए तो शक्ति के अनुसार टहलने का व्यायाम प्रारंभ कर देना चाहिए। फिर हाथों को धीरे–धीरे फैलाएँ। साथ ही मुट्ठी खोलते जाएँ तथा साँस धीरे–धीरे बाहर निकालते जाएँ एवं पूर्ण स्थिति में आ जाँ। इस प्रयोग को 10 से 12 बार तक किया जा सकता है, लेकिन 2 बार से आरंभ करके धीरे–धीरे प्रयोग का अभ्यास बढ़ाना चाहिए।

उच्च रक्तचाप के रोगी के लिए विश्राम सर्वाधिक आवश्यक होता है। यहाँ विश्राम से तात्पर्य शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के विश्राम से है। शिथिलीकरण को विश्राम के अंतगर्त मानना चाहिए तथा गाढ़ी नींद को भी विश्राम के ही अंतर्गत माना जाता है। यदि हो सके तो प्रतिदिन रोगी को 2 से 3 बार लगभग आधा घण्टा शिथिलीकरण में लगाना चाहिये।

शिथिलीकरण के अभ्यास द्वारा पेशियों और स्नायुओं को तनाव दूर होने पर दोहरा लाभ होता है। पहला, रक्तचाप में कमी आ जाती है तथा दूसरा, शारीरिक तनाव दूर होने पर उससे संबद्ध भावनात्मक तनाव भी आते जाते रहते हैं। फिर शिथिलीकरण का सर्वोत्कृष्ट ढंग 'शवासान' है, जिसकी विधि योग चिकित्सा के अन्तर्गत बताई जा चुकि है।

उच्च रक्तचाप के आरंभ में लंबे समय तक निराहार रहना अथवा उपवास करना उपयोगी नहीं होता, किन्तु चिकित्साकाल के बीच–बीच में 2 से 3 दिनों के छोटे उपवास आवश्यकतानुसार करते रहने से रोग में अच्छा सुधार होता है और उपवास की समाप्ति पर रक्तचाप कम हो जाता है। उपवास में अभ्यस्त हो जाने के बाद अन्त में रोगी के बलाबल के अनुसार किसी प्राकृतिक चिकित्सक की देख –रेख में लंबे उपवास करके भी लाभान्वित हुआ जा सकता है।

साधारणतः इस रोग में रोगी को चिकित्सा के आरंभ में 7 दिन और यदि रोगी दुर्बल नहीं हो तो 10 दिन केवल फल खाकर ही रहना चाहिए। आहार 5 – 5 घण्टे के अंतर से दिन में केवल 3 बार ही लिया जाए। अच्छा हो यदि 1 बार में केवल एक ही प्रकार का फल लिया जाए। जैसे–सबेरे के समय संतरा, दोपहर को अमरूद और शाम के समय टमाटर या सेब। फलाहार के लिए – संतरा, सेब, नाशपाती, आम, अमरूद, अनन्नास, जामुन, रसभरी, खरबूजा, शरीफा आदि लिये जा सकते हैं। केवल केला और कटहल का उपयोग नहीं होना चाहिये। फलाहार के बाद फलों के साथ दुग्धपान भी प्रारंभ किया जाए। दूध गाय या बकरी का शुद्ध व ताजा होना चाहिए। दोपहर को सबेरे का एक उफान का दूध लिया जा सकता है। दूध पर दो सप्ताह तक रहने के बाद अन्न हा उपयोग किया जा सकता है। अन्न शुरू करने पर भी सबेरे –शाम फल व दूध लेना उत्तम रहता है। केवल दोपहर को ही अन्न ग्रहण किया जाए। अन्न में गेहूँ के चोकरयुक्त आटे की रोटी अथवा दलिया लेना ठीक रहता है। रक्तचाप के रोगियों के लिए हरी तरकारियाँ भी उतनी ही लाभकारी है जितने कि फल।

14.4.3 उच्च उक्तचाप की आहार चिकित्सा

रोटी, डबल रोटी, दालें, क्रीम निकाला दूध, क्रीम निकाले दूध का पनीर, हरी सब्जियाँ व इनके पत्ते खाना बहुत लाभकारी है। शलजम और दूसरी सब्जियाँ, दालों और सब्जियों का पका रस, फल तथा उनका रस भी लाभप्रद है। चिकनाई की कमी को पूरा करने तथा शरीर को ताकत देने के लिए – तिली या सूरजमुखी के फूलों के बीजों का खालिस तेल, धब्जियों में डाल कर प्रयोग करना लाभकारी है। यह तेल संकीर्ण धमनियों में पहुँचकर जमें हुए कोलेस्ट्रोल और चर्बी को पतला करके धीरे–धीरे शरीर से निकाल देते हैं जिससे धमनियों की कठोरता और संकीर्णता दूर होकर उनमें लचक उत्पन्न हो जाती है और बिना औषधि सेवन किए ही उच्च रक्तचाप कम हो जाता है और रोगी की कमजोरी दूर होकर उनमें शक्ति उत्पन्न हो जाती है। क्रीम निकाल लेने के बाद भी दूध में प्रोटीन काफी मात्रा में रहता है। अधिक रक्त चाप के रोगी को यह दूध पीना लाभप्रद है। बाजार में क्रीम निकले दूध का पाउडर बंद डिब्बों में बिकता है। उबलते पानी में इस पाउडर को घोलकर पिया जा सकता है।

इस रोग में चाय, शराब, तम्बाकू, सिगरेट, मसाले वाले भोजन खाना – पीना हानिकारक होते हैं। एकाएक रक्तचाप बढ़ जाने पर जाता दूध पिलाने से बहुत लाभ होता है। ठोस भोजन रोगी की कम मात्रा में दें। फलों का रस, सब्जियों का पका रस बिना घी तथा मसाला डाले थोड़ी – थोड़ी मात्रा में दिए जा सकते हैं।

उच्च रक्तचाप के रोगी के वृक्कों में मूत्र बनना कम हो जाता हे और रोगी को मूत्र नहीं आता। इसलिए उसको पानी, दूध या पेय कम मात्रा में पिलाना चाहिए। इस रोग में जौ का उबला पानी, ग्लूकोज पानी में घोल कर अथवा सोडावाटर में संतरे का रस मिलाकर थोड़ी – थोड़ी मात्रा में पिलाते रहना लाभकारी है। इनमें मूत्र जारी करने का भी गुण हैं। लक्षण कम हो

जाने पर रोगी को शक्ति देने वाली खुराक खिलाना प्रारंभ कर दें। 30 – 40 ग्राम प्रोटीन और निशास्ते वाले पदार्थ प्रतिदिन खिलाना चाहिए।

उच्च रक्तचाप के रोगी को ताजा दूध, फल, सब्जियों का रस सबसे अच्छी खुराक है। रोगी को थोड़ा – थोड़ा जाता पानी खाली आमाशय में, खाने से 1 घण्टा पहले तथा रात्रि को सोते समय पिलाना लाभकारी है। उच्च रक्तचाप के मोटे रोगी जिनके शरीर में बहुत अधिक रक्त होने के कारण चेहरा और शरीर लाल है– वे यदि सप्ताह में 1 – 2 उपवास रखलें तो ब्लड प्रैशर गिराने में बहुत सहायता मिलती है। उपवास से उनके शरीर के विषैले दोष (Toxins) भी निकल जाते हैं। मोटे रोगी जो खाए बिना नहीं रह ही नहीं सकते हैं, वे फलों का रस पीकर शरीर के विषैले अंश निकालकर अपने ब्लड प्रैशर को कम कर सकते हैं।

रोगी को अपने आपको मोटा होने से बचाना चाहिए तथा वजन नार्मल से अधिक नहीं बढ़ने देना चाहिए। यदि वजन नार्मल से अधिक हो तो उसको तुरन्त घटाने का यत्न करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. एक वयस्क व्यक्ति में औसतन सामान्य रक्तचाप होता है–

क) 100/60 mm. Hg

ख) 120/80 mm. Hg

ग) 140/100 mm. Hg

घ) 150/100 mm. Hg

2. उच्च रक्तचाप के उग्र स्वरूप में मूत्र त्याग की मात्रा

क) और भी अधिक बढ़ जाती है

ख) घट जाती है

ग) बन्द हो जाती है

घ) इनमें से कुछ भी नहीं

3. **उच्च रक्तचाप के रोगी के लिए ..... सर्वाधिक आवष्यक/ लाभदायक होता है।**

क) लम्बे समय तक निराहार रहना

ख) भस्त्रिका प्राणायाम

ग) सूर्यनमस्कार

घ) विश्राम

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. किन–किन परिस्थितियों में उच्च रक्तचाप स्वाभाविक रूप से बढ़ सकता है?
2. उच्च रक्तचाप को परिभाषित कीजिए।

14.5 सारांश

इस इकाई में हमने जाना कि धमनियों के विरूद्ध रक्त का बढ़ा हुआ दबाव उच्च–रक्तचाप के नाम से जाना जाता है। रक्त परिसंचरण तंत्र की यह समस्या आज के दिनों में बहुत ही सामान्य हो गई है। बढ़ा हुआ रक्त चाप कई खतरनाक रोगों का कारण हो सकता है। इसकी मुख्य वजह लंबे समय का तनाव ही है। मुख्य रूप से यह तनाव तब बढ़ जाता है, जब हमारी रक्तवाहिनियाँ सख्त हो जाती है। अनुवांशिकता, उम्रवृद्धि, धूम्रपान, तैलीय एवं चर्बीयुक्त भोजन का अधिक प्रयोग एवं अकर्मण्य जीवन– शैली आदि इस रोग की अन्य वजहें है। उच्च रक्तचाप की समग्र चिकित्सा में योग चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, आहार चिकित्सा द्वारा सख्त

हो गई धमनियों को सामान्य करने का प्रयास किया जाता है, रक्त में से चर्बी की मात्रा को कम किया जाता है तथा तनाव से मुक्ति मिलती है।

14.5 पारिभाषिक शब्दावली

सिस्टोलिक ब्लड प्रेशर– हृदय में बायें निलय के संकुचित होने पर उत्पन्न अधिकतम रक्त चाप

डायस्टोलिक ब्लड प्रेशर– धमनियों के भीतर विद्यमान रक्त का उनकी भित्तियों पर पड़ने वाला न्यूनतम दाब।

स्फीग्नोमॅनोमीटर– रक्त चाप को मापने के लिए उपयोग किया जाने वाला यंत्र

उषाःपान– सुबह सोकर उठने के बाद बैठकर पानी पीना

14.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1 – ख

2 – क

3 – घ

14.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

9. रोग और योग – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
10. योग द्वारा रोगों की चिकित्सा – डॉ. फुलगेंदा सिन्हा
11. योग महाविज्ञान– डॉ. कामाख्या कुमार
12. शरीर–रचना एवं शरीर–क्रिया विज्ञान – श्रीनन्दन बन्सल
13. बृहद् प्राकृतिक चिकित्सा –डॉ. ओमप्रकाश सक्सेना
14. बृहद् आयुर्वेदिय चिकित्सा –डॉ. ओमप्रकाश सक्सेना
15. डायग्नोसिस –जी. डी. सिंघल
16. शरीर क्रिया विज्ञान – प्रियव्रत शर्मा
17. शरीर रचना विज्ञान – मुकुन्द स्वरूप वर्मा
18. आयुर्वेदीय क्रिया शरीर – रंजीत सहाय देशाई
19. आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान – ताराचन्द्र शर्मा
20. मानव शरीरदीपिका – मुकुन्द स्वरूप वर्मा

14.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

3. योग चिकित्सा आधारभूत तत्व एवं सिद्धान्त – डॉ. सरस्वती काला
4. योग चिकित्सा संदर्शिका – डॉ. कामाख्या कुमार

14.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. उच्च रक्तचाप की समग्र चिकित्सा पर प्रकाश ड़ालें।
2. उच्च रक्तचाप के कारण, लक्षण एवं यौगिक चिकित्सा पर प्रकाश डालिएँ।

इकाई–15 हृदय रोग– कारण, लक्षण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 हृदय रोग– कारण, लक्षण एवं समग्र चिकित्सा
15.3.1 हृदय की संरचना
15.3.2 हृदय रोगोंके प्रकार
15.3.3 हृदय रोगके कारण
15.3.4 हृदय रोगके लक्षण
15.3.5 हृदय रोगकी समग्र चिकित्सा
15.4 हृदय रोगकी समग्र चिकित्सा
15.4.1 हृदय रोगकी यौगिक चिकित्सा
15.4.2 हृदय रोगकी प्राकृतिक चिकित्सा
15.4.3 हृदय रोगकी आहार चिकित्सा
15.5 सारांष
15.6 पारिभाषिक षब्दावली
15.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
15.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
15.10 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

आज विश्व के सबसे घातक रोगों में हृदय रोगों की गिनती होती है। प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में मानव समाज हृदय रोगों से पीड़ीत हो काल के ग्रास बन जाते है। हृदय रोगों में वैसे तो अनेक रोग आते है, परन्तु हृत्कम्प, हृदयशूल, हृत्पात् इत्यादि प्रमुख हैं। यह सारी समस्याएं मूल रूप से हमारी दैनिक जीवनचर्या में शामिल तनावों का हृदय पर पड़ने वाले कुप्रभाव को प्रदर्शित करती हैं।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जानेंगे कि –

- हृदय रोग किसे कहते हैं ?
- हृदय रोग होने के विभिन्न कारण क्या हैं
- हृदय रोगके व्यक्ति में कौन – कौन से लक्षण पाये जाते हैं
- हृदय रोगके व्यक्ति को क्या यौगिक चिकित्सा दी जानी चाहिए
- हृदय रोगके व्यक्ति को क्या प्राकृतिक चिकित्सा दी जानी चाहिए
- हृदय रोगके व्यक्ति को क्या आहार चिकित्सा दी जानी चाहिए

15.3 हृदय रोग– कारण, लक्षण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

15.3.1 हृदय की संरचना

हृदय :–रक्त–संचरण क्रिया का यह सबसे मुख्य अंग है। यह नाशपाती के आकार का मांसपेशियों की एक थैली जैसा होता है। हाथ की मुट्ठी बाँधने पर जितनी बड़ी होती है, इसका आकार भी उतना ही बड़ा होता है। इसका निर्माण धारीदार एवं अनैच्छिक पेशी – ऊतकों द्वारा होता है। वक्षोस्थि से कुछ पीछे की ओर तथा बाँयें हटकर दोनों फेफड़ों के बीच इसकी स्थिति है। यह पाँचवीं, छठी, सातवीं तथा आठवीं पृष्ट देशीय –कशेरूका के पीछे रहता है इसका शिरों भाग बाँये बेन्ट्रिकल से बनता है निम्न भाग के अपेक्षा इसका ऊपरी भाग कुछ अधिक चौड़ा होता है इस पर एक झिल्ली मय आवरण चढ़ा रहता है जिसे हृदययवरण या पेरिकार्डियम कहते हैं इस झिल्ली से एक का रस निकलता है जिसके कारण हृदय का ऊपरी भाग आद्र बना रहता है। हृदय का भीतरी भाग खोखला रहता है यह भाग सूक्ष्म मांसपेशी की झिल्ली द्वारा ढ़का तथा चार भागों में बंटा रहता है इस भाग में क्रमशः ऊपर नीचे तथा दायें बाँये चार प्रकोष्ठ होतें हैं।

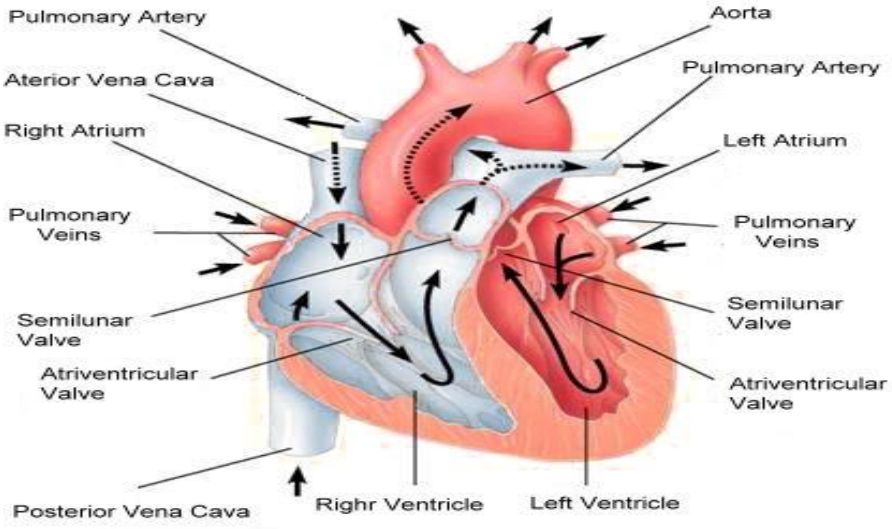

कार्यानुरूप हृदय को दो भागों में बांटा गया है :–

1. हृदय का आधा भाग फुफ्फसीय परिसंचरण से संबंधित है, इसे दाहिने हृदय के रूप में जाना जाता है।
2. हृदय का दूसरा भाग दैहिक परिसंचरण से संबेधित है इसे बायें हृदय के रूप में जाना जाता है।

हृदय के दोनों भागों में अपने–अपने दो खण्ड होते है। एक खण्ड रक्त प्राप्त करता है जो आलिंद या एट्रियम कहलाता है दूसरा खण्ड एट्रियम में संग्रहित रक्त प्राप्त करके हृदय से बाहर पंप कर देता है। वह निलय या वेंट्रिकल कहलाता है।

हृदय की संरचना :–

इसका भार व्यस्क व्यक्ति में 200 से 260 ग्राम तक होता है। यह एक भित्ति द्वारा दांये ओर बांये भागों में विभक्त होता है। जन्म के पश्चात् इन दोनों

भागों में संबंध नहीं रहता। इनमें से प्रत्येक भाग पुनः दो भागों या कोष्ठों में विभाजित हो जाता है ऊपर का कोष्ठ आलिंद तथा नीचे का कोष्ठ निलय कहलाता है। इस प्रकार दो आलिंद तथा दो निलय होते हैं। दोनों ओर, आलिंद ओर निलय का एक दूसरे से आलिंद निलय द्वार पर सम्मिलिन होता है। यह द्वार कपाटों द्वारा सुरक्षित रहता है। दाँयी ओर का कपाट त्रिकपर्दीवाल्व तथा बांयी ओर का कपाट द्विकपर्दीवाल्व कहलाता है। आलिंद –नियल वाल्व में से रक्त केवल आलिंद से निलय की ओर प्रवाहित हो सकता है इसके विपरीत दिशा में कभी प्रवाहित नहीं हो सकता।

15.3.2 हृदय रोगोंके प्रकार

हृदय रोगों के निम्नांकित भेद होते हैं :–

1. हृत्कम्प :–

इस रोग में जोर–जोर से दिल धड़कने के दौरे आते हैं। उस वक्त रोगी को घबराहट बढ़ जाती है तथा उसे मृत्यु – भय होने लगता है। यह रोग पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक होता है। आकस्मिक घटनाओं, भय या क्रोध की स्थिति में भी हृदय तीव्र गति से धड़कने लग जाता है।

हृदय की पेशियों और स्नायुओं की निर्बलता इस रोग का मूल कारण है। इस रोग के अन्य प्रमुख कारण है –

- नशीली चीजों का सेवन
- शारीरिक और मानसिक दुर्बलता,
- अजीर्ण,
- रक्तहीनता,
- स्नायुविकार,
- अनियमित आहार–विहार,
- हृदयदोष,
- वीर्य–विकार,
- खूनी बवासीर एवं पेट में अपच के कारण वायु की उत्पत्ति आदि

हृदय में कोई दोष उत्पन्न हो जाने के कारण जब हृत्कम्प रोग होता है तो उसमें प्रायः हाथ बर्फ की भाँति ठण्डे हो जाते हैं तथा रोगी को ठण्डा पसीना आता है।

2. हृदय की धड़कन का बंद होने लगना :–

हृदय की धकड़न तो अकस्मात् बंद हो जाती है, परन्तु उसके पूर्व रोगी को कितने ही लक्षणों द्वारा उसका आभास अवश्य ही मिल जाता है। हृदय की धड़कन सदैव के लिए बंद होने (Heart Failure) से पहले उसमें कमी होने लगती है जिसे हृदय या दिल का बैठाना कहते हैं। साथ में हृदय में कभी – कभी दर्द भी होता है। प्रायः पेट में नाभि के ऊपर कठिन पीड़ा भी होती है। जिसे साधारणतः कलेजे का दर्द समझा जाता है।

हृदय की धड़कन बंद होकर जब मृत्यु होने को होती है तो अत्यधिक और अवर्णनीय प्रकार की रोगी को बेचैनी होती है। अचानक ही बदन में सख्त गर्मी

मालूम होने लगती है और उसके बाद पसीना आता है। छाती के पास रोगी को इतना अधिक तीव्र दर्द होता है कि रोगी बुरी तरह से छटपटाने लगता है।

3. हृदयशूल :–

हृदय की रक्त कोशिकाओं से प्रकृति जब वहाँ पर एकत्रित विजातीय द्रव्य को बाहर निकाल फेंकने की चेष्टा करती है तो रूकावटों को दूर करने में विजातीय द्रव्य के कणों में रगड़ व टक्कर होती है, जिससे भयानक पीड़ा की अनुभूति होती है। यही – ' हृदयशूल' या दिल का दर्द है जिसे अँग्रजी में 'एन्जाइना पैक्टोरिस (Angina Pectoris) कहते हैं। यदि समय पर इस रोग की सफल चिकित्सा न की जाए तो रोगी की मृत्यु निश्चित है। कभी –कभी हृदय और उसके स्नायुओं में कमजोरी आ जाने के कारण भी यह दर्द उत्पन्न होता है।

हृदयशूल के समय रोगी बुरी तरह घबराता है। श्वास लेने में कष्ट होने लगता है और मृत्यु– भय साक्षात् उपस्थित हो जाता है। कभी–कभी यह दर्द बढ़कर पूरे बाँए हाथ और पूरी बाँयी छाती तक फैल जाता है। उस समय रोगी का मुँह लाल, बदन ठण्डा और नाड़ी की गति धीमी हो जाती है। दर्द के दौरे आते हैं। दर्द साधारणतः के 3–4 मिनट तक रहता है। कभी–कभी इससे अधिक समय तक भी रहता है।

4. हृदय का आकार में छोटा या बड़ा हो जाना :–

हृदय में अथवा हृदय के आस –पास विजातीय द्रव्य के एकत्रित हो जाने से रक्तनलिकाओं में दूषित पदार्थ भर जाते हैं जिससे वे सँकरी हो जाती है और साथ ही हृदय की दीवारें भी मोटी हो जाती है तथा फेल भी जाती है जिससे हृदय आकार में बड़ा प्रतीत होने लगता है।

विजातीय द्रव्य की ही गर्मी से जब हृदय सूख जाता है तो उस समय वह आकार में छोटा हो जाता है। इन दोनों ही परिस्थितियों में रक्त को शरीर के समस्त भागों में पहुँचाने हेतु हृदय को कड़ी मेहनत करनी पड़ती है।

5. हृदय शोथ :–

हृदय में शोथ (सूजन) उत्पन्न हो जाना इस बात का प्रमाण है कि हृदय में विजातीय द्रव्य काफी मात्रा में एकत्रित हो गया है।

हृदय चारों ओर से एक प्रकार की झिल्ली से ढँका होता है। जब इसकी झिल्ली में सूजन हो जाती है तो उसे 'परिहार्दिक सूजन' (Pericarditis) कहते हैं और जब यह सूजन हृदय की भीतरी झिल्ली में होती है तो उसे – 'अन्तःहार्दिक सूजन' (इण्डो कार्डइटिस) कहते हैं तथा जब स्वयं हृदय अथवा उसकी माँसपेशियों में सूजन हो जाती है तब उसे 'मध्य हार्दिक सूजन' कहते हैं।

प्रायः हृदय को ढँकने वाली झिल्ली जिसे ' हृदयावरण' कहते हैं, में पानी आ जाने से भी हृदय सूजा हुआ प्रतीत होता है जिसकी बढ़ी हुई अवस्था में रोगी को साँस लेने में कष्ट होता है।

- पारिहार्दिक सूजन में हृदय में मीठा–मीठा दर्द होता है, नाड़ी तेज चलती है और कभी–कभी ज्वर भी हो जाता है।

- अन्तःहार्दिक सूजन में –रोगी छाती में भारीपन अनुभव करता है।
- मध्यहार्दिक सूजन में– जब रोग बढ़ा हुआ होता है तो हृदय के स्थान पर हल्की पीड़ा और साथ ही साथ हल्का ज्वर भी हो जाता है।

आयुर्वेद के अनुसार हृदय रोग के प्रकार :

हृदय रोग पांच प्रकार क होते हैं, उनके नाम तथा लक्षण निम्नलिखित है–

1. **वातिक हृद्रोग–** इसमें हृदय में खिंचावट तथा सूचिकावेधन वत् पीड़ा होती है, रोगी को कभी–कभी प्रतीत होता है कि उसके हृदय को कोई डण्डे से मथ रहा हो, टुकड़े कर रहा हो या कुल्हाड़ी से चीर रहा हो। हृदय में कम्पन, स्तम्भ एवं मूर्च्छा, वष्टन तथा जकड़ाहट होती है।
2. **पैत्तिक हृद्रोग–** इसमें तृषा, उष्मा (गर्मी), दाह, चोष, हृदय की व्याकुलता, धूम निकलने की प्रतीति, मूर्च्छा, स्वेद आना तथा मुख का सूखना आदि लक्षण होते हैं।
3. **श्लैष्मिक हृद्रोग–**हृदय के कुपित कफ के व्याप्त होने पर शरीर में गौरव (भारीपन), ताला प्रसेक, अरूचि, हृदय में स्तम्भ (जकड़ाहट), तथा अग्निमांद्य होते हैं, और मुख का स्वाद मधुर मीठा रहता है।
4. **त्रिदोषज् हृद्रोग–**इसमें तीनों दोषों (वात, पित्त, कफ) के मिले हुऐ लक्षण मिलते हैं।
5. **कृमिज हृद्रोग–**इसमें तीव्र पीड़ा, कण्डू (खुजली), उत्क्लद, निष्ठीवन (बार–बार थूकने की प्रवृत्ति), तोदवत् पीड़ा, शूल, हृल्लास (मिचली), तम (आंखों के सामने अंधेरा छा जाना), अरूचि, नेत्रों में मलिनता तथा शोथ के लक्षण मिलते हैं।

   त्रिदोष तथा कृमिज् हृद्रोग में परस्पर सम्बन्ध भी हेतु तथा लक्षणों की दृष्टि से मिल सकता है, यथा अपथ्य सेवन से त्रिदोषज् हृद्रोग की प्रवर्धमानावस्था को कृमिज हृद्रोग माना गया है। उत्क्लेद से तम पर्यन्त त्रिदोषज् हृद्रोग के तथा अरूचि आदि कृमिज हृद्रोग के लक्षण होते है।

15.3.3 हृदय रोग के कारण

हार्ट डिसीज (Heart Diseases) हृदय रोग के प्रमुख दो कारण है :–

1. अधिक गरिष्ठ भोजन।
2. व्यायाम तथा परिश्रम का अभाव।

माँस, मैदा, सफेद चीनी, नशीली चीजें, तेल, खटाई, आचार, मसाले और तली–भुनी चीजें गरिष्ठ होती है। इनमें से प्रत्येक वस्तु हृदयरोग उत्पन्न करने वाली सिद्ध होती है। इन वस्तुओं के सेवन से रकत में अम्लता यदि, खट्टापन की वृद्धि होती है जो हृदय रोगों का एक प्रधान कारण होती है। इसके अतिरिक्त अधिक औषधियों का सेवन भी हृदय पर बुरा प्रभाव डालता है। हकीमों के कुश्ते, वैद्यों के भस्म और एलोपैथी डॉक्टर्स की ज्वरनाशक औषधियाँ, वेदनाशामक 'सोडा सैली साईलिट' एस्प्रिन, फीनस्टीन, पैरासिटामोल, एनालजिन, डिक्लोनेक, आइबूप्रोफन आदि जैसी तीक्ष्ण औषधियाँ तथा कथित हृदयरोग निवारक डिजीटेलि, स्ट्रिकनिया, फूरासिमाइड आदि औषधियाँ एवं नाना प्रकार के विषैले इंजेक्शन ये सब हृदय पर इतना भयानक दुष्प्रभाव डालते हैं कि हृदय के ढाँचे को गंभीर हानि पहुँचाती है।

15.3.4 हृदय रोगके लक्षण

क) वातिक हृदय रोग के लक्षण–हृदय रोग के सामान्य लक्षण जो पूर्व में बताये गये हैं, जैसे वैवर्ण्य, मूर्च्छा, ज्वर, कास, हिक्का, श्वास, मुखविरसता, तृषा, प्रमोह, छर्दि, कफोत्क्लेश, रूजा, अरूचि आदि उनकी पर्याप्त समानता तथा अवस्था हृदय विकारों में मिलती है।

उदाहरणार्थ, वैवर्ण्य या विवर्णता (डिस्कलरेशन) हृदय विकार में होती है, इसमें पांडुता (पेलोर), श्यावता (सायनासिस) तथा कापोलारूण्य(मेलर फलश) इन तीनों का समावेश हो जाता है। पांडुता रक्ताल्पता की द्योतक है, जो कि हृत्कपाटों की विकृति से उत्पन्न होती है। इनमें श्यामता शोणवर्तुलि (हिमोग्लोबिन) की कमी से आ जाती है। इसकी प्रतीत विशेषतया ओष्ठ, नासाग्र तथा नखसदृश देह के सीानों में होने लगती है, जहां कि कोशिकाएं उत्तान (सुपरफिशियल) रहती हैं। इसमें सिरागत रक्तावरोध (वीनस स्टेसिस) कारण रहता है। द्विपत्रक कपाट संकोच (माइट्रल स्टेनोसिस) के कारण कपोलारूप्यता (मेलर फलश) हो जाती है।

इसी तरह अन्य लक्षणों में हृदय जन्य श्वास (कार्डियक एस्थमा) के कारण मूर्च्छा उत्पन्न होती है। आमवात जन्य या औपसर्गिक हृदन्तःकलाशाथ (रियूमेटिक और सेप्टिक एण्डोकार्डायटिस) में ज्वर प्रधान लक्षण के रूप में रहता है। हृदय विकारों में कास, हिक्क तथा श्वास को अवरोध जन्य लक्षण (प्रेशर सियटमस) कहते हैं, ये हृद्विकारों में मिलते हैं, जैसे द्विपत्रक प्रत्युद्विरण (माइट्रल रिगर्गिरेशन) तथा विशेषतया द्विपत्रक संकोच (माइट्रल स्टेनासिस), जिसमें रक्तवभन भी होता है। हृदयवाहिनी की घनास्रता (कोरोनरी थ्रोम्बोसिस) में वमन, अरूचि तथा श्वासकृच्छृता, आदि लक्षण होते हैं। हृदयगत विकारों की इन अवस्थाओं तथा अन्य लक्षणों का दोषानुसार हृदय रोगों में उत्पन्न लक्षणों में जो साम्य होता है, उससे चिकिम्सापूर्व हृदयरोग निदान में पर्याप्त सहायता मिलती है।

जैसा कि वातिक हृदय रोग के लक्षणों से प्रगट है, इसमें पीड़ा की विशेषता रहती है। हृच्छूल (एन्जाइना पेक्टोरिस) तथा हृदयवाहिनी की घनास्रता (कोरोनरी थ्रोम्बासिस) में भी पीड़ा विशेष लक्षण के रूप में रहती है। यद्यपि इन दोनों अवस्थाओं में पीड़ा अनिवार्य रूप में मिलता है, तथापि दोनों के शूल की प्रकृति तथा अन्य लक्षणों में भिन्नता रहती है। इन दोनों विकारों की हृदय रोगों में महत्ता है तथा व्यवहार में अधिक मिलत हैं, अतः इन रोगों का परस्पर अन्तर इस विभेदक निदान (डिफरेंशियल डायग्नोसिस) से प्रगट हो जाएगा–

हृच्छूल (एंजाइना पैक्टोरिस)

1. शूल का प्रचलन अनिवार्य रूप से वाम बाहु या कभी–कभी दोनों बाहु की ओर होता है।
2. शूल का आवेग कुछ मिनटों के बाद समाप्त हो जाता है।
3. शूल का प्रचलन या आक्रमण परिश्रम, भावावेश तथा भोजनोपरान्त होता है।
4. रक्तवाहिनी प्रसारक औषधियों के प्रयोग से शूल शान्त हो जाता है।
5. इस अवस्था में रोगी निश्चल खड़ा रहता है, हिलने से डरता है, चेहरा पीला पड़ जाता है, पसीना आ जाता है तथा शीत का अनुभव करता है।
6. इसमें धमनीगत रक्तदाव बढ़ जाता है।
7. इसमें रक्तगत घनता साधारण रहा करती है।
8. इसमें पीड़ित व्यक्ति के रक्त में श्वेतकायाणूत्कर्ष (लियोसायटोसिस) रहा करता है।
9. रोगी को ज्वर नहीं रहता है।

हृदयवाहिनी घनास्रता (कोरोनरी थ्रोम्बोसिस)

1. शूल का प्रचलन इस रीति से नहीं होता, यह उरःफलक के पीछे तथा कुछ नीचे तक होता है।
2. शूल का आवेश कुछ क्षणों तक ही चलता है।
3. रक्तप्रवाह के बन्द होने अर्थात् रात्रि को विश्राम के समय इसका आक्रमण होता है।
4. रक्तवाहिनी प्रसारक औषधियों के प्रयोग से शूल शमन होने की बजाय शूल की वृद्धि हो जाती है।
5. इस अवस्था में रोगी बेचैन रहा करता है, जिससे इधर–उधर गतियां करने लगता है, शरीर गरम रहता है, मुख मुडल (चेहरे) पर श्यावता (सायनोसिस) रहा करती है।
6. इसमें धमनीगत रक्त का दाब बढ़ जाता है
7. इसमें रक्त की घनता बढ़ जाती है।
8. इसमें पीड़ित व्यक्ति के रक्त में श्वेतकायाणूत्कर्ष नहीं मिलता है।
9. इसमें रोगी को अल्पमात्रा में ज्वर रहा करता है।

वातिक हृदय रोग में हृदय का कम्पल (पल्पिटेशन) तथा स्तम्भन (इरिदिमिया एण्ड हॉर्ट ब्लाक) विशेष लक्षण होते हैं।

ख) पैत्तिक हृदय रोग के लक्षण–पैत्तिक हृदय रोग में रस तथा रक्त में पित्ताधिक्य एवं हृदय या उसके अवयवों में व्रणशोथ (इन्फ्लामेशन के कारण उष्णता या उष्मा की अनुभूति, दाह, चोष, हृदय की व्याकुलता धूमायन (धुंआ निकलने की प्रतीति) स्वेदाध्क्यि (पसीना अधिक निकलना) तथा मुखशोष जैसे लक्षण उत्पन्न लगते हैं।

क) श्लैष्मिक हृदय रोग के लक्षण–श्लैष्मिक हृदय रोग में अधिकांश लक्षण जैसे शरीर गौरव, लाला प्रसेक, अरूचि, हृदय स्तम्भ, अग्निमांद्य आदि मुख्यतः हृत्पेशी के अत्युपचय (हायपरट्रॉफी) मेदोवृद्धि तथा हृदयावरण में द्रव्य संचय होने के कारण होते हैं।

सामान्य रूप से व्यवहार में जो हृदय विकार मिलते हैं, वे चार प्रकार के वर्गों में रखे जा सकते हैं –

1. स्वतन्त्र हृदय रोग
2. सलक्षण हृदय रोग } वास्तविक विकार के विभिन्न रूप
3. उपद्रव हृदय रोग
4. भ्रांत हृदय रोग (हृदय रोग होने का भ्रम या शंका होना)

हृदय (पल्पिटेशन)–सामान्य रूप से हृत्स्पन्दन या हृदय की स्पन्दन गति (दिल की धड़कन) की अनुभूति स्वयं को नहीं होती है, कभी–कभी अस्थायी रूप से अथवा भय या अति परिश्रम से हृत्स्पन्दन बढ़ जाता है, तब कुछ क्षण के लिए जो अनुभव हो, वह यथाविधि सामान्य हो जायेगा। परन्तु जब हृदय रोग माना जाता है। ऐसा मनस्ताप, रक्त की विकृति या कमी, हृत्पेशी दुर्बलता, चाय, काफी, मद्य, तम्बाकू आदि मादक द्रव्यों का अति सेवन, शुक्र का अतिक्षय जैसा कई कारणों से हृदय रोग उत्पन्न हो जाता है। इसके अतिरिक्त अर्श, गलगण्ड, मधुमेह, वातरक्त, हिस्टीरिया, श्वेतप्रदर आदि रोगों में उनके कारण (परिणाम) स्वरूप हृदय रोग हो सकता है।

हृत् दौर्बल्य (कार्डियक फैल्योर)–जब विशिष्ट कारणों से हृदय को रक्त कम मिलने लगता है तथा इस प्रकार आक्सीजन की कमी होती है, तब वाम हृदय में शिथिलता का लक्षण होने लगता है। इससे वाम हृदय निर्बल हो जाता है, इससे प्रति मिनट आगे जाने वाले

रक्त की मात्रा में भी कमी आती है। इसके परिणामस्वरूप शरीर के अन्य उपयोगी अंगों, यथा– वृक्क, मस्तिष्क, यकृत एवं मांसपेशियों के कार्य में पोषण की कमी के कारण न्यूनता आ जाती है। जब आगे आने वाले रक्त की मात्रा आधी से कम होने लगती है, तब शिराओं एवं स्रोतों में रक्तभार के अधिक बढ़जाने के कारण हाथ–पैरों में शोथ उत्पन्न हो जाता है। स्वल्प श्रम जनित श्वास कष्ट इस रोग का प्राथमिक लक्षण है। श्वास लेने में सीटी की–सी आवाज मालूम पड़ती है, रात को नींद आने से थोड़ी देर बाद ही सांस फूलने लगती है। रोगी कभी–कभी कुछ सैकेण्ड के लिये सो भी जाता है, परन्तु सीधा लेटकर सोना कठिन हो जाता है। फिर रोगी को आरामकुर्सी पर लेटने में अधिक सुविधा लगती है।

15.3.5 हृदय रोगकी चिकित्सा

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने हृदय रोगों के लिए अनेक शक्तिशाली औषधियों का आविष्कार किया है, जो इन रोगों के लक्षणों एवं इनके खतरनाक कुप्रभावों को नियंत्रित करने में सक्षम है। ये औषधियाँ संकटावस्था में जीवन रक्षक सिद्ध होती है। परन्तु ये औषधियाँ सिर्फ लक्षणों तथा खतरनाक दुष्प्रभावों को नियंत्रित कर सकती हैं, हृदय रोगों के सूक्ष्म मूल कारणों की तह तक नहीं पहुँच पाती हैं। ये औषधियाँ रोगों का प्रतिरोध कर उन्हें समूल नष्ट कर सकने में असमर्थ हैं।

योग, प्राकृतिक चिकित्सा तथा आहार के माध्यम से इन हृदय रोगों के मूल में जाकर इसके मूल कारण को ही नष्ट करने का प्रयास किया जाता है। अतः औषधि सेवन के साथ–साथ कुशल चिकित्सक के निर्देशन में इनक उपचार योग, प्राकृतिक चिकित्सा तथा आहार के माध्यम से करना चाहिए।

15.4 हृदय रोगकी समग्र चिकित्सा

15.4.1 हृदय रोग की यौगिक चिकित्सा

योगचिकित्सा सिद्धान्त– हृदय की समस्या से ग्रसित लोगों के लिए बहुत की सावधानी की आवश्यकता होती है, क्योंकि किसी भी प्रकार की लापरवाही घातक हो सकती है। रक्त संचार की प्रक्रिया बेहतर हो, रक्त से कोलेस्ट्रॉल एवं शर्करा की मात्रा घटे एवं हृदय का कार्यभार घटे यही यौगिक चिकित्सा का उद्देश्य होता हैं।

एक बोझ तले दबे तथा थके हुए हृदय की प्राथमिक आवश्यकता है 'आराम' क्योंकि आराम से खोई हुई जीवनी शक्ति का संचय होगा और पुनुरूद्भवन की प्रक्रिया पुनः प्रारंभ हो सकेगी। यथोचित आराम के साथ सादगीपूर्ण जीवनचर्या, कुछ घूमना–फिरना तथा आसन –प्राणायाम इत्यादि को संश्लेषित करना होगा, तभी पूरा–पूरा लाभ संभव होगा। आहार, विहार–विचार और व्यवहार–इन सभी का संतुलन स्वास्थ्य की कुंजी है।

आसनाभ्यास अति महत्त्वपूर्ण है, मगर उन्हें अपने सामर्थ्य से अधिक नहीं करना चाहिए। हृदय पर जरा भी जोर न पड़े तथा जैसे ही यह महसूस हो कि जोर पड़ रहा है या हल्का–सा भी दर्द हो तो फौरन आसन बंद कर शिथिलीकरण का अभ्यास करना चाहिए।

1. **आसन :–**पवनमुक्तासन भाग –1 से प्रारंभ करें। प्रतिदिन प्रातः स्नान, गर्मियों में ठंडे पानी तथा सर्दियों में गर्म पानी से करना चाहिए। इसके बाद आसनों का अभ्यास करें। यदि कहीं भी कठिनाई महसूस हो या जब भी थकावट महसूस हो, शवासन

का अभ्यास करें। अभ्यास जल्दी से खत्म करने का प्रयास कभी न करें। योगाभ्यास आराम, शांति तथा शिथिलीकरण का स्त्रोत होना चाहिए। इस एक घंटे में मिली शांति की कालावधि धीरे–धीरे बढ़ती जायेगी और संपूर्ण जीवन को रूपांतरित कर देगी। इन आसनों का अभ्यास दैनिक रूप से दो महीनों तक करना चाहिए। निम्नलिखित मुख्य आसन अनुसंशित हैं–

- वज्रासन

- शशांकासन (इस आसन में कुछ मिनटों के लिए शिथिलीकरण)

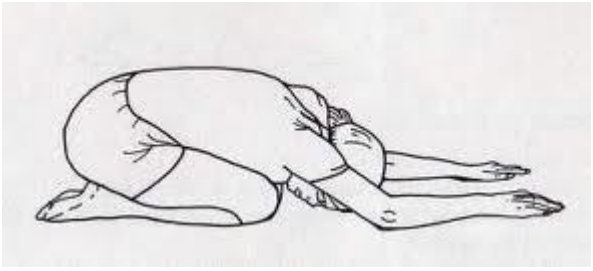

- सर्पासन

- सेतु आसन

- योग मुद्रा आसन
- भू–नमनासन
- गोमुखासन

2. **प्राणायाम** –हृदय रोगी की हालत में सुधार के दरम्यान तथा उसके बाद भी स्वास्थ्य वर्धन एवं पुनरूज्जीवन की प्रक्रिया को द्रुत बनाने में प्राणायाम का अभ्यास अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। प्राणायाम फेफड़ों तथा हृदय के लिए कभी कष्टकर नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा होता है तो नकारात्मक प्रभाव होने की संभावना है। प्राणायाम से विक्षिप्त मन शांत होता है। इससे उत्तेजित स्नायुओं का शिथिलीकरण तथा अनियमित हृदय गति का नियमन होता है। हृदय के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्राणायाम हैं नाड़ी –शोधन तााि उज्जायी। प्राणायाम करते समय श्वास सामान्य से थोड़ी ही अधिक गहरी होनी चाहिए। अभ्यास में कुंभक वर्जित है (विशेषतः शुरू में)। श्वास जितनी शांत या ध्वनि रहित तथा प्राकृतिक बनी रहे, उतना अच्छा है। श्वास–प्रश्वास का पूरी सजगता से अवलोकन करने का प्रयास करें। श्वास का अवलोकन मन का अवलोकन है। इस साधारण प्रक्रिया से फौरान ही तनाव एवं चिंता से मुक्ति की अनुभूति होने लगती है। ऑक्सीकरण की प्रक्रिया अधिक सुचारू होने से हृदय को बहुत लाभ पहुँचता है तथा ऊतक तेजी से पुनरूज्जीवित होने लगते हैं। नाड़ी शोधन प्राणायाम के दस चक्र तथा दस मिनट तक उज्जायी प्राणायाम अनुशंसित हैं।
3. **योगनिद्रा** :–आसन कार्यक्रम के दौरान बीच–बीच में शिथिलीकरण करते रहना चाहिए। शवासन, मत्स्य क्रीड़ासन या अद्वासन में से किसी भी आसन का प्रयोग कर सकते हैं। योगनिद्रा का पूर्ण अभ्यास दिन में एक बार कभी भी अवश्य करें।
4. **ध्यान** :–हृदय रोगियों को ध्यान एक नियमबद्ध अभ्यास के रूप में नहीं, वरन् एक आनंददायी कार्यकलाप के रूप में सीखना चाहिए। खासकर बीमारी के बाद वाले समय में, जब बिस्तर से उठ पाना संभव नहीं हो अथवा बाद में भी स्वास्थ्य लाभ के दौरान। ध्यान के द्वारा हृदय, मस्तिष्क और भावनाओं में कहर बरपा करने वाले तनावों को जानना लाभदायक अनुभव होगा।

   ध्यान की अनेक तकनीकें हैं, जो भावनात्मक तनावों के प्रति सजगता बढ़ाने हेतु अत्यंत उपयोगी अभ्यास हैं। सबसे उपयुक्त अभ्यास अजमा–जप (सोअहं मंत्र के साथ) तथा अंतर्मौन हैं। ये अभ्यास असुरक्षा तथा चिंताओं के प्रति निश्चिंतता का भाव पैदा करते हैं, जो मानसिक उद्वेलनों तथा तनावों के मूल कारण हैं।

1. **षट्क्रियाएँ** :–हृदय रोगियों के लिए जल नेति एक आदर्श अभ्यास है। इसका अभ्यास बिस्तर पर लेटे–लेटे ही सीखा तथा किया जा सकता है। मगर उसके पश्चात् भस्त्रिका नहीं करें, न ही नासिका का सुखाने के लिए श्वास पर जोर डालें। नेति प्रतिदिन प्रातः करें। कुंजल तथा शंख प्रक्षालन हृदय पर काफी जोर डालते हैं, अतः उनका अभ्यास हृदय रोगियों को कम –से–कम कुछ महीनों तक नहीं करना चाहिए।
2. **कर्मयोग** :– हृदय रोगियों को पूर्ण सजगता, सावधानी तथा निस्स्वार्थता की भावना से कार्य करना चाहिए। जहाँ पर कार्य के बदले में पुरस्कार, या लाभ की आशा न हो, ऐसी मानसिकता द्वारा जीवनयापन करने से हृदय रोग सफलतापूर्वक ठीक किया जा सकता है।

3. **जीवनशैली में परिवर्तन :–** हृदय पर तनाव तथा हृदय रोग की परिस्थिति उन्हीं लोगों में अधिकतर उत्पन्न होती है, जिनकी मनःस्थिति राजसिक, क्रियाशील एवं प्रतिस्पर्धात्मक है। मुख्यतः व्यवसायी लोग, जो अपने व्यवसाय में एक ही धुन से जुटे रहते हैं, हृदयाघात के प्रति सर्वाधिक प्रवण होते हैं, क्योंकि वे अंगों को पुनरूज्जीवित करने वाले 'विश्राम' के लिए समय ही नहीं निकाल पाते। अपने कार्य में इस प्रकार उलझे रहते हैं कि दैनिक जीवनचर्या में भाग–दौड़ के सिवाय उन्हें फुरसत ही नहीं रहती।

   अधिकतर लोग 'विश्राम' की वास्तविकता नहीं जानते, और इसके बदले उन्होंने एक 'रिलैक्स' होने की भ्रामक धारणा पाल रखी है, जो वास्तव में उत्तेजित करने वाली आदतें हैं – जैसे धूमपान, मदिरापान, तेज संगीत, पार्टियाँ तथा सामाजिक गतिविधियाँ। ये विश्रांति की बजाय उत्तेजना तथा थकावट उत्पन्न करती हैं। न केवल मन में, वरन् शरीर, विशेषतः हृदपरिसंचारी तंत्र में परिश्रांति की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। देर रात तक जागना और अधिक मात्रा में गरिष्ठ भोजन बची–खुची कमी पूरी कर देता है।

   हृदयरोगी को संपूर्ण स्वास्थ्य लाभ के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि वह काम–काज की चिंताओं से बिल्कुल अलग रहे और ऐसे वातावरण में रहे जो पूर्णतः प्राकृतिक तथा विश्रांतिदायक हो। आश्रम का वातावरण बहुधा आदर्श सिद्ध होता है। प्रकृति अपने आप ऐसा संपूर्ण अवकाश लेने पर मजबूर कर देती है जिससे वे वर्षों तक वंचित रहे। इस कालावधि में उनका परिचय नयी रचनात्मक, शांति प्रदायी तथा गैर प्रति–स्पर्धात्मक अभिरूचियों से कराया जा सकता है, जो प्रकृति चक्र तथा प्राकृतिक नियमों से तालमेल रखती हों। उदाहरण के तौर पर सरल बागवानी, जहाँ पर लाभ की दर शेयर बाजार के उतार–चढ़ाव पर नहीं, वरन् मातृवत् पृथ्वी की प्रचुरता पर निर्भर करती है। ये छोटी–छोटी बातें महत्त्वकांक्षी व्यक्ति को मानसिक शांति देती हैं, तथा जीवन की गति को, प्रकृति की लय के अनुसार स्वीकार करने में सहायता देती हैं। इसी प्रकार साधारण कार्य, जैसे, लकड़ी का काम उस व्यक्ति को एक आश्चर्यजनक सुखद अनुभूति दे सकता है, जिसने अपने हाथों का पूर्व में केवल चेक पर दस्तखत करने में ही उपयोग किया हो।

4. **स्वाध्याय :–**विभिन्न धर्मग्रंथों, उपदेशों, तथा महान् व्यक्तियों के जीवन तथा कार्य का अध्ययन करना, जिन्होंने अपना संपूर्ण जीवन परम सत्य की खोज व सेवा में लगा दिया है। स्वाध्याय पुराने आर्थिक एवं भावनात्मक हिसाब–किताब से ऊपर उठकर सोचने की दिशा नवीनता प्रदान करता है। यह हृदय रोगी के लिए एक नयी तनाव –मुक्त जीवन शैली का रहस्योद्घाटन तथा पथ प्रदर्शन करने वाला होगा।

5. **भक्ति योग :–**भावनात्मक ऊर्जा को व्यक्तिगत विषय वस्तुओं तथा वासनाओं के बंधनों से परे उच्च चेतना या ईश्वर की ओर अभिमुख करने का विज्ञान भक्ति योग कहलाता है। कीर्तन, या भजन हृदय रोगियों के लिए अत्यंत लाभकारी है, तथा व्यक्तिगत आसक्तियों के जाल में उलझी भावनाओं से भार मुक्ति का एक प्रभावी साधन है।

15.4.2 हृदय रोग की प्राकृतिक चिकित्सा–

हृदय रोगों की तात्कालिक चिकित्सा :–

हृदयरोगों के दौरे में उस समय स्थिति बड़ी विकट एवं नाजुक हो जाती है तथा रोगी के समक्ष जीवन–मृत्यु का प्रश्न आ खड़ा होता है। ऐसी दशा में रोगी को पूर्ण मानसिक और शारीरिक आराम देने के लिए किसी निर्जन, साफ–स्वच्छ, आरामदेह बिस्तर पर सर को ऊँचा रखते हुए लिटा देना चाहिए तथा रोगी के पहने हुए कपड़ों के बटन आदि खोलकर ढीला–ढाला कर देना चाहिए। रोगी के सामने ऐसी कोई भी चेष्टा नहीं करनी चाहिए जिससे रोगी की उत्तेजना बढ़ने की आशंका हो। संकट की घड़ी जब तक पूर्णरूपेण टल न जाए रोगी को उपवास करना चाहिए। यदि रोगी बहुत दुर्बल हो तो ऐसी दशा में आवश्यकतानुसार अँगूर, अनार, संतरे अथवा कागजी नीबू का रस दिया जा सकता है। उपवास के दिनों में रोगी को प्रतिदिन गुनगुने पानी का एनिमा देकर पेट साफ कर देना चाहिए। उपवास की समाप्ति पर रोगी को कुछ दिनों तक फलों के रस तथा उसके बाद फल और दूध पर रखना चाहिए।

प्रतिदिन 2 बार 15 मिनट से धीरे–धीरे बढ़ाकर 1 घण्टा तक हृदय पर बदल–बदल कर कपड़े की ठण्डी पट्टी रखनी चाहिए और अंत में उस स्थान को फलालेन या रूई अथवा अन्य किसी सूखे हुए साफ–स्वच्छ कपड़े से रगड़कर लाल कर देना चाहिए।

रोगी को श्वास कष्ट हो अथवा कफ का जोर हो तो आँतों को गरम करने के लिए उन पर ऊनी पट्टी अथवा अन्य कोई गरम कपड़ा लपेट देना चाहिए। साथ ही हृदय पर ठण्डे पानी से भीगे कपड़े की एक पट्टी अलग से रखकर समूची छाती पर 1 घण्टा के लिए छाती की भीगी पट्टी भी लगानी चाहिए। इस प्रयोग को प्रत्येक 20 – 20 मिनट के अंतराल से करना चाहिए एवं प्रत्येक बार जब छाती की पट्टी हटाई जाए तो उस स्थान को सूखे कपड़े से रगड़–रगड़ कर लाल कर देना चाहिए। रोगी को अधिक घबराहट हो तो पट्टी को साधारण ठण्डे पानी में तर करने के स्थान पर बर्फ के पानी तर करके और निचोड़ करके प्रयोग में लाना चाहिए।

यदि हृदय बैठ रहा हो और धड़कन बंद होने वाली हो तो रीढ़ की हड्डी पर गरम – ठण्डी सेंक करनी चाहिए और बीच– बीच में स्पंज बाथ अथवा गरम पानी में भिगोई हुई निचोड़ी हुई कपड़े की पट्टी से हृदय को तब तक सेंकना चाहिए जब तक कि हृदय की धड़कन अपनी स्वाभाविक अवस्था में न आ जाए। सेंकने के उपरान्त लेटे–लेटे ही अथवा टब में रोगी को बैठाकर मेहनस्नान देने से लाभ होता है। लाल रंग की बोतल के सूर्यतप्त जल अथवा तेल की हृदय पर मालिश और पीली बोतल के सूर्य तप्त जल की प्रति मात्रा आधा–आधा छटाँक की मात्रा में प्रतिदिन 8 मामाएँ सेवन कराना दिल बैठने के रोग में लाभ होता है।

हृदयशूल में :–

हृदय को 5 मिनट तक गरम जल में भीगे और निचोड़े कपड़े से सेंककर 15 मिनट उस पर ठण्डी पट्टी का प्रयोग करना चाहिए तथा इस क्रिया को 4 – 5 बार दोहराना चाहिए अथवा 5 मिनट तक हॉट तक फुट बाथ (Hot Foot Bath)यानि पैरों का गरम स्नान देने के बाद आधा घण्टा तक हाथों और पैरों में गरम कपड़ा लपेटकर उन्हें गरम रखना चाहिए। हृदय के रोगों के साथ यदि पेट की भी तकलीफ हो तो एनिमा के साथ पेट पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करना चाहिए तथा अजीर्ण रोग की चिकित्सा चलानी चाहिए।

हृदय रोग के साथ यदि ज्वर भी हो तो पेडू पर मिट्टी की पट्टी का ही प्रयोग करना चाहिए अथवा कटि–स्नान लेना चाहिए।

यदि हृदय रोग के रोगी को नींद न आती है तो सोने के पहले 15 मिनट तक सिर पर ठण्डे जल से भीगा और निचोड़ा हुआ कपड़ा रखकर पैरों को गरम पानी में रखने से लाभ होता है।

यदि रोगी के शरीर पर सूजन आ जाए और जलोदर के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगें तो इस स्थिति में रोगी को पूरे शरीर की गीली चादर की लपेट लेकर तथा ऊनी कम्बलों में लपेटकर 3–4 घण्टों तक रखना चाहिए। अथवा धूप स्नान देकर पसीना निकाल देना चाहिए तथा पसीना निकालने वाले इन प्रयोगों के बाद रोगी को तौलिया –स्नान अवश्य कराना चाहिए।उसके बाद कटिस्नान या मेहनस्नान देना चाहिए।

हृदय रोगों की स्थायी चिकित्सा

हृदय के रोगियों को दौरा न होने के समय में रोग को निर्मूल करने के कुछ दिनों तक उपवास करके दिन में 2 बार एनिमा लेकर पेट साफ करना चाहिए। तदुपरान्त 15 दिनों तक फलाहार अथवा फल –दुध पर रखकर दिन में 2 बार घर्षण स्नान कराने के बाद साधारण स्नान कराना चाहिए अथवा शरीरमर्दन के उपरान्त सबेरे के समय कटिस्नान और उष्ण पादस्नान के बाद सायंकाल के समय मेहनस्नान कराना चाहिए। पेट को ठीक करने के लिए रात भर के लिए कमर की भीगी पट्टी भी लगानी चाहिए। बीच–बीच में शरीर शुद्ध करने के लए 1 घण्टा तक पूरे शरीर को भीगी चादर की लपेट लगानी चाहिए। साथ ही जिन कारणों और कुपथ्यों से हृदय रोग होते हैं, उनसे बचना चाहिए।

शुद्ध मधु हृदय रोगों के लिए लाभदायक है। इसे थोड़ा–थोड़ा, धीरे–धीरे बढ़ाकर 1 औंस प्रतिदिन नीबू के रस के साथ ठण्डे पानी में लिया जा सकता है।

शोथ हो जाने और रोगी की भयंकरता में नमक का सेवन त्याग देना चाहिए। सायंकाल का भोजन सूरज डूबने के पहले ही कर लेना चाहिए।

15.4.3 हृदय रोगकी आहार चिकित्सा– भोजन नियमपूर्वक हल्का होना चाहिए। मांस तथा अधिक प्रोटीन युक्त आहार जैसे दूध तथा दूध से बनी चीजों, अथवा मसालेदार भोज्य पदार्थों का सेवन वर्जिज है। उनकी जगह अन्न, दालें, फल तथा ताजी सब्जियाँ लें। इससे मोटापा भी कम होगा जिससे लगातार हृदय पर पड़ने वाला भार कम होगा। भोजन का समय नियतिम हो, मुख्य भोजन के बीच में कुछ भी खाते रहने की आदत जीवनभर के लिए नियमपूर्वक त्याग देना चाहिए। आवश्यकता से अधिक मात्रा में भोजन न लें, क्योंकि निःसंदेह इससे हृदय पर अधिक भार पड़ता है। वस्तुतः बहुधा दिल का दौरा भारी भोजन के कुछ समय बाद ही पड़ता है, क्योंकि भारी भोजन को पचाने के लिए रक्त को ज्यादा मात्रा में पेट में पहुँचना होता है। अतः हृदय में रक्त की आपूर्ति कम हो जाती है, और हृतशूल या हृदययाघात अवक्षेपित हो जाता है। संध्या का भोजन सात बजे से पहले ही कर लें, क्योंकि यह नियम इस बात से आश्वस्त कर देता है कि पाचन संस्थान पर ज्यादा भार नहीं पड़ रहा है और ऊर्जा, पाचन की बजाय रोग को स्वस्थ करने में लग रही है।

दूसरी आवश्यक बात यह है कि हृदय रोगियों को कब्ज नहीं होनी चाहिए, क्योंकि इससे आँतों में प्राणिक ऊर्जा का प्रवाह अवरूद्ध हो जाता है। शौच के समय ज्यादा जोर लगाने से भी हृदय पर जोर पड़ता है। इसी कारण तथा उपर्युक्त वर्णित अन्य कारणों से हृदयाघात के पश्चात् व्यक्ति के लिए सुपाच्य, पतला भोजन अनुशंसित किया जाता है।

हृदय की कार्य क्षमता के ठीक होते समय धीरे–धीरे भोजन सामान्य स्थिति में वापस लाया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

1. .....इस रोग में जोर जोर से दिल धड़कने के दौरे आते है।

क)हृत्कम्प

ख)हृदयशूल

ग)हृत्पात्

घ)उच्च रक्तचाप

2. हृदय के दायीं ओर का कपाट ..... कहलाता है।

क)एकपर्दीवाल्व

ख) द्विकपर्दीवाल्व

ग)त्रिकपर्दीवाल्व

घ)चतुर्पर्दीवाल्व

लघुउत्तरीय प्रश्न –

1. हृदयशूल में प्राकृतिक चिकित्सा का वर्णन करें।
2. हृदयशोथ किसे कहते है ?

15.5 सारांश

इस इकाई में हमने जाना कि हृदय रक्त संचरण क्रिया का सबसे मुख्य अंग है और आज विश्व के सबसे घातक रोगों में हृदय रोगों की गिनती होती है। हृदय से संबंधित दो रोगों की मुख्य रूप से गणणा की जाती है – उच्च रक्तचाप तथा निम्न रक्तचाप परंतु इन दो रोगों के अलावा भी कई प्रकार के रोबों का इसमें समावेश होता है जैसे हृत्कम्प, हृदयशूल, हृत्पात् इत्यादी। इन सभी रागों का मुख्य कारण व्यायाम, परिश्रम का अभाव तथा अधिक गरिष्ठ भोजन करना है। भिन्न –भिन्न रोगों के अनुसार रोगी में भिन्न – भिन्न लक्षण दिखाई पड़ते है। हृदय रोगों को समग्र चिकित्सा से ठिक किया जा सकता है।

15.6 पारिभाषिक शब्दावली

आलिंद–हृदय का एक खण्ड जो रक्त प्राप्त करता है

निलय–हृदय का दूसरा खण्ड जो एट्रियम में संग्रहित रक्त प्राप्त करके हृदय से बाहर पंप कर देता है

त्रिकपर्दीवाल्व–इसमें तीन त्रिकोणाकार पल्ले या कस्पस् होते है

द्विकपर्दीवाल्व –इसमें दो त्रिकोणाकार पल्ले या कस्पस् होते है

15.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1–घ **2–ख**

15.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रोग और योग – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
2. योग द्वारा रोगों की चिकित्सा – डॉ. फुलगेंदा सिन्हा

3. योग महाविज्ञान– डॉ. कामाख्या कुमार
4. शरीर–रचना एवं शरीर–क्रिया विज्ञान – श्रीनन्दन बन्सल
5. बृहद् प्राकृतिक चिकित्सा – डॉ. ओमप्रकाश सक्सेना
6. बृहद् आयुर्वेदिय चिकित्सा – डॉ. ओमप्रकाश सक्सेना
7. आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
8. डायग्नोसिस – जी. डी. सिंघल
9. शरीर रचना विज्ञान – मुकुन्द स्वरूप वर्मा
10. आयुर्वेदीय क्रिया शरीर – रंजीत सहाय देशाई
11. आयुर्वेदीय शरीर रचना विज्ञान – ताराचन्द्र शर्मा
12. मानव शरीरदीपिका – मुकुन्द स्वरूप वर्मा

15.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. योग चिकित्सा संदर्शिका – डॉ. कामाख्या कुमार
2. योग चिकित्सा आधारभूत तत्व एवं सिद्धान्त – डॉ. सरस्वती काला

15.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. हृदय रोग के प्रकार के बारे में विस्तृत चर्चा कर उनकी यौगिक चिकित्सा पर प्रकाश डालें।
2. हृदय रोग के कारण तथा लक्षण स्पष्ट करते हुए उनकी समग्र चिकित्सा का वर्णन करें।

इकाई 16 सामान्य जुकाम एवं खाँसी - कारण लक्षण एवं वैकल्पिक चिकित्सा

16.1. प्रस्तावना

16.2. उद्देश्य

16.3 खाँसी का परिचय
16.3.1 खांसी क्या है
16.3.2 खांसी रोग की उत्पत्ति
16.3.3 खांसी रोग के लक्षण
16.3.4 खांसी के कारण
16.3.5 खांसी के बचाव के लिये कुछ घरेलू उपाय

16.4 प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार खांसी के कुछ उपाय

16.5 आयुर्वेदिक चिकित्सा
16.5.1 निर्देश

16.6 जुकाम का परिचय
16.6.1 जुकाम रोग की उत्पत्ति
16.6.2 जुकाम रोग के लक्षण
16.6.3 रोग के कारण
16.6.4 रोग में सावधानियां
16.6.5 जुकाम के बचाव के लिये घरेलू उपाय
16.6.6 पुराने व बिगड़े हुये जुकाम की चिकित्सा
16.6.7 रोगी का आहार

16.7. प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार जुकाम के कुछ उपाय

16.8 सारांश

16.9 शब्दावली

16.10 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

वर्तमान समय में व्यक्ति के जीवन में व्याधियां उसके चारो ओर विद्यमान है और मानव के जीवन में समय–समय पर अनेक कपट आते हैं और मनुष्य अनेक प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो रहा है, शरीर की देख–रेख करना धर्म का साधन है, मानव शरीर का स्वस्थ न होना ही आज संसार की समूची अव्यवस्था का प्रमुख कारण है। आज का मानव अपनी निजी जिन्दगी में इतना व्यस्त है कि वह अपने स्वास्थ्य के प्रति बहुत उदासीन हो गया है उसे स्वस्थ रहने के लिये उपाय बताना तथा अच्छा नहीं लगता है जिस कारण से वह सांसारिक व्याधियों का शिकार हो रहा है, लेकिन वह सार्वभौमिक सत्य है कि हमें यह ज्ञात होना चाहिये कि जब तक मानव अपने हित में नहीं सोचेगा तो दवायें आती रहेगी, इसलिये

मानव की अपने बारे में सोचकर अपने स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहना चाहिये आज मानव को स्वस्थ रहने के लिये किसी न किसी स्वास्थ्य केन्द्र की जरूरत है और यहां तक कि किसी स्वास्थ्य केन्द्र में चिकित्सा और न किसी औषधि की क्योंकि स्वस्थ्य रहना मनुष्य के स्वयं अपने हाथ पर निर्भर करता है, स्वस्थ रहने का तात्पर्य है कि अपने में स्थिर होना है। आज मानव को स्वस्थ रहने के लिये प्रकृति की ओर आने तथा प्राकृतिक नियमों को चाहने वाली या पालन करने वाली चिकित्सा पद्धतियों के द्वारा निरापद और श्रेष्ठतम उपचार होने लगा है वैकल्पिक चिकित्सा में चुम्बकीय चिकित्सा ने अपनी श्रेष्ठता कायम की है पृथ्वी में चुम्बकत्व गुण सभी जगह विद्यमान है। यह आज के वैज्ञानिकों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है।

16.2 उददेश्य

प्रिय विद्यार्थियों इस विषय को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि खॉसी व जुकाम मे प्राकृतिक चिकित्सा के उद्देश्य क्या हैं।

1– इस अध्याय को पडने के बाद विद्यार्थी खॉसी रोग की उत्पत्ति लक्षण व कारण के विषय मे जान सकेगें।

2– विद्यार्थी जुकाम रोग की उत्पत्ति एंव लक्षण के बारे जान सकेगें।

3– इस अध्याय मे विद्यार्थी प्राकृतिक चिकित्सा से खॉसी व जुकाम का इलाज भी जान सकेगें।

16.3 खांसी का परिचय

16.3.1 खासी क्या है :–

खांसी एक सामान्य बीमारी है लेकिन यह तकलीफ बहुत देती है, इसे दूर करने के लिये बाजार में मिलने वाली दवायें आपको अनिन्द्रा बना सकती है, इसलिये आप कारगर कुछ घरेलू उपचार भी अपना सकते हैं।

खांसी किसी भी समय हो सकती है, वैसे तो सर्दी, खांसी, सिर दर्द, जुकाम जैसे कुछ बीमारी होती है, लेकिन जिनके इलाज के लिये हम चिकित्सक के पास जाने से बचते हैं खांसी की समस्या होने पर आप सुकून से कोई कार्य नहीं कर सकते हैं, खांसी किसी वजह से भी हो सकती है, बदलता मौसम, ठण्ड गर्म या कुछ उल्टा–पुल्टा, खाने से पीने से या फिर धूल या किसी उल्टा चीज जैसे एलर्जी के कारण सूखी खांसी होने पर ज्यादा तकलीफ हो सकती है।

16.3.2 रोग की उत्पत्ति :–

चिकित्सकों ने खोजों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि खांसी अपने आप में कोई रोग नहीं है, दरअसल यह अन्य रोगों का लक्षण है। यह सर्दी निमोनिया, काली खांसी, तपेदिक, दमा, ब्रोन्काइटिस, प्लूरिसी तथा यकृत की व्याधि के कारण हो जाती है, यह तीन तरह की होती है – सूखी खांसी में बलगम नहीं निकलता लेकिन अधिकतर खांसी में कफ निकलता है, काली खांसी में तेज दौरा पड़ता है।

16.3.3 खांसी रोग के लक्षण :–

खांसी उठने पर मुँह में खों–खों की आवाज निकलती हे, छाती धड़कने लगती है, सूखी खांसी में रोगी खाँसते–खाँसते बेदम सा हो जाता है लेकिन बलगमी खांसी में कफ बाहर निकलता है, रोगी की छाती में जकड़न सी मालूम पड़ती है, दौरे के रूप में उठने

वाली काली खांसी के छाती में अधिक तकलीफ होती है, खांसी के कारण नींद उबासी आदि सब रूक जाते हैं।

16.3.4 खांसी के कारण :–

खांसी के निम्नलिखित कारण सामने आते हैं जो इस प्रकार प्रस्तुत किये गये हैं :–

1. खांसी अपने आप में कोई बीमारी नहीं है बल्कि यह शरीर में स्थित रोग का एक लक्षण है, जो श्वांस नली के द्वार से हवा के झटके के साथ निकलने की एक आवाज होती है खांसी उत्पन्न करके हमारे शरीर में स्थित कफ को बाहर निकलने के लिये जोरदार कोशिश करती है, खांसी अनेक प्रकार की होती है।

''जिस खांसी के साथ कफ निकलता है उसे तर खांसी कहते हैं''

''जिस खांसी के साथ कफ नहीं निकलता है उसे सूखी खांसी कहते हैं।

अगर खांसी लगातार, आते रही और खांसते समय सीने में दर्द मालूम हो तथा एक सप्ताह में अधिक टिक तो समझना चाहिये कि दमा रोग का आरम्भ हो रहा है।

एक खांसी वह भी होती है जो मनुष्य की निर्बलता के कारण बिना वजन खांसने की आदत पड़ जाने की वजह से हुआ करती है।

''आइये हम आपको खांसी के कुछ उपचारों के बारे में बताते हैं'' –

16.3.5 खॉसी के बचाव के लिये कुछ घरेलू उपाय :–

1. दो ग्राम अजवाइन को साफ करके गत को पान के बीड़े में रखकर खायें।
2. एक चुटकी पिसी हुई काली मिर्च में एक चम्मच शहर मिलाकर रोगी को दिन में चार बार चटाएं।
3. एक चम्मच पान के रस में शहद मिलाकर चाटें।
4. दो लौंग तवे पर भूनकर फिर उसे पीसकर शहर में मिलाकर दें।
5. शहद किसमिस व मुनके को मिलाकर खाने से खांसी ठीक हो जाती है।
6. तुलसी काली मिर्च व अदरक की चाय पीने से खांसी समाप्त हो जाती है।
7. एक चम्मच मेथी को एक कप पानी में उबालें फिर उसे छानकर कर सेवन करें।
8. थोड़ी सी हल्दी और एक चुटकी नमक में पानी में डालकर पीने से खांसी में आराम मिलता है।
9. बबूल की छाल का काढ़ा पीने से खांसी में बहुत आराम मिलता है।
10. मुलहटी एक चम्मच, सोंठ आधा चम्मच तथा अदरक का रस एक चम्मच तीनों को शहद में मिलाकर सेवन करें।
11. काला नमक का टुकड़ा धीरे–धीरे चूसने से खांसी रूक जाती है।
12. त्रिफला चूर्ण में बराबर मात्रा में शहद मिलाकर पिये खांसी में फायदा मिलता है।
13. खांसी होने पर सेंधा नमक की डली को आग पर अच्छे से गर्म कर लीजिये जब नमक की डली कर्म हो जाये तो तुरन्त आधा कम पानी में डालकर निकाल लीजिये और सोने से पहले इस पानी को पीकर खांसी ठीक हो जाती है।

16.4. प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार खांसी के कुछ उपाय :–

1. शुरूआती खांसी में सर्वप्रथम दो दिन तक का उपवास या रसाहार करके कब्ज घटने तक गुनगुने पानी का प्रयोग करके फिर दो–तीन दिन फलाहार या उबी साग–सब्जी ही खायें, जब खांसी के साथ ज्वर भी रहे तो पेड़े पर गीली मिट्टी

की पट्टी रात भर के लिये लगायें, परन्तु जब ज्वर ना रहे तो फिर मिट्टी की पट्टी के स्थान पर कमद की भीगी पट्टी लगायें।

नीबू का रस मिलाकर जल प्रचुर मात्रा में पीवें बस इतने से ही उपचार से कई खांसी अवश्य चली जायेगी।

2. पुरानी खांसी में तीन दिनों तक रसाहार पर रहकर दस दिनों तक फल ही खायें तथा कब्ज घटने पर एनिमा लें, फिर रोटी सब्जी ली खायें सुबह डेढ़ घण्टा तक छाती और कन्धों पर भीगी पट्टी बांधने के 10 मिनट तक उदर स्नान करें, दोपहर को सिर पर भीगा गमछा रखकर और मुंह बन्द करके नाक के नथुनों से भाप खींचे फिर ठण्डे पानी से भीगी तौलिया से सारा शरीर पोछें, उसके 10 मिनट पर कटि स्नान करें।

प्रातः सांय स्वच्छ वायु में टहलने, सादा व सुपाच्य भोजन ग्रहण करें तथा साधारण स्नान के पूर्व व पश्चात शुष्क घर्षण स्नान जरूर करें।

3. लहसुन के रस को रूई में डालकर सूंघना तथा तीन चाय के चम्मच भर प्याज के अर्क में दो चम्मच शुद्ध शहद मिलाकर चाटना चाहिये इस रोग में बड़ा फायदा मिलता है।

16.5. खांसी के बचाव के लिये आयुर्वेदिक चिकित्सा :–

1. आक के बीज और लौंग और दोनों को एक–एक रत्ती पीसकर शहद के साथ सुबह–शाम चाटें,
2. छोटी कटेरी का धुर्ता करके उसके रस में पीपल का चूर्ण मिलाकर आधा कप प्रतिदिन पियें।
3. आक के पत्ते, मैंसिल, सोंठ काली मिर्च और पीपल इन सबको बराबर की मात्रा में लेकर गुड़ में मिलाकर छोटी–छोटी गोलियां बना दें, एक–एक गोली सुबह शाम पानी के साथ खायें।
4. हरड़ की छाल सोंठ, काली मिर्च, पीपल, चाय, चित्तक, सफेद नीम तथा गिलोय सब 10–10 माशे लेकर पीस लें, फिर इसमें थोड़ा सा गुड़ मिलाकर बरे के बराबर गोलियां बना लें निम्य सुबह–शाम गुनगुने पानी में 1–1 गोली का सेवन करें।
5. 10 माशे लौंग 10 माशें पीपल 10 माशे जायफल 20 माशे काली मिर्च 3 ग्राम सोठ तथा थोड़ी सी मिश्री इन सबको कूटकर चूर्ण बना लें तथा आधा–आधा चम्मच चूर्ण शहद के साथ लें।

खांसी कुछ ज्यादा ही तकलीफ देय होती है, खांसी में कफ निकलता है, जो बहुत परेशान करती है। जैसे हमारे गले में, फेफड़े, पेट में आदि।

खांसी अगर ज्यादा दिन तक हो जाय तो उसे नजर अन्दाज नहीं करना चाहिये। अतः तुरन्त डॉक्टर को दिखाना चाहिये।

16.5.1 निर्देश :–

1. खांसी होने पर ठण्डी चीजें का सेवन करने से बचें। जैसे – ठण्डी फल, सब्जियां, दही आदि से परहेज करें।
2. खांसी होने पर गर्म पानी को ही उपयोग में लायें।
3. खांसी होने पर काली चाय में तुलसी के पत्तों को मिलाकर उसका सेवन करें।

4. खांसी होने पर काली मिर्च अदरक आदि का उपयोग करने से खांसी में फायदा मिलता है।
5. ज्यादा दिनों तक अगर खांसी ठीक न हो तो तुरन्त डॉक्टर की सलाह लें।

16.6. जुकाम का परिचय

नाक के रास्ते पतले कफ निकलने को जुकाम कहते हैं, उससे आंखे लाल गला खराब तथा सिर भारी रहता है, हम जो कुछ भी खाते हैं उसकी पाचन क्रिया पूरी होने के बाद बने रक्त का ऑक्सीजनीकरण होता है, नाक द्वारा पूरा ऑक्सीजन न मिलने से यह क्रिया पूरी नहीं होती और रक्त में आवश्यक गर्मी न मिलने से यह क्रिया पूरी नहीं होती और रक्त में आवश्यक गर्मी न आने से यह रोग होता है। जिससे खाया–पिया जुकाम के रूप में बाहर निकलता रहता है, इस बीमारी से नाक से सूंघने की शक्ति तथा जुबान के स्वाद का भी पता नहीं, चलता तीन–चार दिनों के बाद बलगम गाढ़ा हो जाता है और फिर हल्की खांसी या छीकों के साथ कफ निकलता है।

कब्ज रहना भी एक रोग का मुख्य कारण है, कफ तथा वायुकारक वस्तुओं का प्रयोग शरीर से पसीना न निकलना शरीर को आवश्यकतानुसार गर्म न रखना आदि अनेक कारण इस रोग के होते है, यदि जुकाम की स्थिति बनी रहे तो आंखे कमजोर हो सकती है, कानों में कम सुनाई पड़ने लगता है, बाल सफेद हो जाते हैं तथा झड़ने लगते हैं।

16.6.1 जुकाम रोग की उत्पत्ति :–

जुकाम साधारणतः ठंड लगने कब्ज में सर्दी का प्रयोग होने ठंडे पानी में चलने–फिरने, बरसात में भीगने, एकाएक पसीना बन्द हो जाने, बाहरी पदार्थ के प्रवेश करने तथा ऋतु परिवर्तन आदि के कारण होता है यह एक संक्रामक रोग है, इसमें रोगी की नाक की श्लैष्मिक कला में सूजन आ जाती है।

16.6.2 जुकाम रोग के लक्षण :–

जुकाम फ्लू का छोटा भाई है, ''फ्लू'' की तरह यह भी नाक की झिल्ली को प्रभावित करता है, लेकिन इसमें ''फ्लू की तरह बुखार नहीं आता, जुकाम आने पर बार–बार छीकें आती है नाक से पानी बहता है तबीयत भारी हो जाती है, सिर में पानी रूकने के कारण भारीपन तथा दर्द होता है, नाक में जलन होती है, तथा आंखे, नाक और ओंठ लाल हो जाते हैं, नाक का पानी धीरे–धीरे गाढ़ा हो जाता है जो बलगम के रूप में बदल जाता है नाक बन्द हो जाती है।

किसी–किसी को ठंड से बुखार आता है, त्वचा गर्म और सूखी होती है तथा प्यास के साथ में जीभ में सूखापन एवं भूख न लगना जैसे लक्षण दिखते हैं, इसके साथ ही शरीर में जकड़ाहट और दर्द होता है, नाक की झिल्लियों में सूजन आ जाती है और नाक से श्वास लेने में परेशानी होती है।

16.6.3 जुकाम रोग के कारण :–

अनुपयुक्त आहार
अधिक समय तक बैठकर काम करना
रक्त परिसंचरण का मन्द होना
शुद्ध वायु का अभाव

सर्दी लगना

ऋतु परिवर्तन में जब शरीर का आन्तरिक तापमान बाह्य तापमान से तालमेल बैठाने का प्रयास करता है, तभी वह जुकाम के हमले का श्किार हो जाता है।

16.6.4 रोग में सावधानियां :–

जुकाम आरम्भ होते ही यदि रोगी सबल है तो उसे हल्की धूप में थोड़ी दूर टहलकर शरीर में पसीना लेना चाहिये, फिर तुरन्त एक मिनट तक स्पंज – स्नान लेकर पुनः बदन को गर्म कर लेना चाहिये परन्तु जो रोगी दुर्बल हैं उसे बजाय टहलने के आरम्भ से बिस्तर पर लेट जाना चाहिये और आधा–आधा घण्टा पर एक–एक गिलास गरम पानी में नीबू का रस डालकर या सादा ही पीते रहना चाहिये ऐसा करने से नाक खुलकर बहने लगेगी और सर्दी का जोर बहुत कुछ कम हो जायेगा।

16.6.5 जुकाम के बचाव के लिये घरेलू उपाय :–

1. अदरक को भून लें इसके बाद थोड़ी सी अदरक चबाकर खाएं।
2. नाक में स्वमूत्र की 2–2 बूंदे सुबह शाम डाले, 2 दिन में नाक से बहने वाला श्लेष्मा बन्द हो जायेगा।
3. 6 मुनक्के 100 ग्राम पानी में उबालें जब पानी आधा हो जाय तो मुनक्कों तथा पानी को सेवन करें।
4. 100 ग्राम खजूर नित्य 4 दिन तक बकरी के दूध में उबालकर खाएं फिर ऊपर से दूध पिएं।
5. आधा चम्मच सोंठ (पिसी) फांककर ऊपर से गाय का दूध पिएं।
6. दालचीनी और जायफल इन दोनों को बराबर की मात्रा में लेने से जुकाम ठीक हो जाता है।
7. मूली के बीजों का चूर्ण 2 चुटकी की मात्रा में कर्म पानी के साथ सेवन करें।
8. पानी में राई पीसकर नाक पर लेप लगाने से जुकाम चला जाता है।
9. सर्दी जुकाम में नाक पर तथा नाक के भीतर सरसों का तेल लगाएं।

16.6.6 पुराने और बिगड़े हुए जुकाम की चिकित्सा :–

पहले एक या दो दिनों का उपवास नींबू के रस मिले जल पर करें, फिर 7 से 14 दिनों तक रसदार फलों पर रहें, एनिमा का प्रयोग एक वक्त या दोनों वक्त कब्ज रहने तक करें प्रतिदिन प्रातः काल कटिस्नान रोज हल्की कसरत साथ ही गहरी श्वांस की भी कसरतें, 24 घण्टों में एक बार पैरों का गरम–स्नान लें पूर्ण विश्राम साथ–साथ 1–1 घंटे पर प्रचुर गर्म जल–पान ज्वर हो तो 1 या 1½ घंटा तक छाती व कन्धों की पट्टी लगावें जिसके बाद ही पैरों का गरम स्नान लें, खुली और हवादार जगह पर वास हो नाक में गरम भाप देना तथा नमक मिले गरम पानी में नाक डुबोकर पानी सूंघना या जलनेति, सूत्रनेति करना भी लाभ करता है, रोग 15–20 मिनट तक नंगे शरीर पर हल्की धूप लें, तथा नारंगी रंगी की बोतल का सूर्य तप्त जल दो भाग गहरे नीले रंग की बोतल का एक भाग और हरे रंग की बोतल का जल एक भाग मिलाकर 25 ग्राम की खुराक से दिन में 6 खुराक पीना हरी बोतल में सूर्यतप्त जल में रूई की बत्ती भिगोकर उसे नाक के नथुनों में रखना आधी नारंगी रंग की बोतल में सूर्यतप्त जल तथा आधा हरे रंग की बोतल का सूर्यतप्त जल मिलाकर उसी से श्वास लेना एंव नाक पर हरे रंग का प्रकाश 7 से 10 मिनट तक रोज डालना पुराने से पुराने जुकाम को भी दूर कर देता है। जुकाम में कभी–कभी गले में खराश हो जाती है। इसके लिये गुनगुने पानी में थोड़ा सा कागजी नीबू

का इस और जारा सा नमक मिलाकर दिन में दो से तीन बार गरारे करना चाहिये या गर्दन की ऊष्णकर भीगे कपड़े की पट्टी 1–2 घंटे तक आवश्यकतानुसार बांधनी चाहिये।

16.6.7 रोगी का आहार :–

जुकाम में उपवास बड़ा फायदा देता है, इसलिये एक या दो दिन पूर्ण उपवास केवल चार बार गर्म पानी, नीबू का रस तथा दो तीन चम्मच मधु मिलाकर लेना चाहिये, इसी से जुकाम ठीक हो जायेगा या एक सप्ताह सिर्फ सन्तरा रसदार फल व सब्जी का रस सब्जी का सूप पीने से ही लाभ हो जाएगा।

दिन में दो बार अदरक, इलायची, कालीमिर्च की चाय या प्राकृतिक चाय पिएं, जूस तथा सूप इस चाय की खुराक को दिन में 6 बार लें इससे पूरे शरीर में परिवर्तन आ जाएगा इसके बाद एक समय सादा भोजन दूसरे समय फल व सब्जियों का सूप और सुबह–शाम अदरक की चाय लें, ऐसा एक माह तक करें, इस आहार क्रम को एक–दो वर्ष तक अपना करके हर प्रकार के रोगों से बचें रहेंगे, यदि खांसी भी हो तो अदरक के रस में 2–3 चम्मच मधु मिलाकर दिन में दो बार लें तथा मुलहटी चूसें खांसी ठीक हो जाएगी।

पूर्ण स्वस्थ न होने तक विश्राम करना चाहिये, उसका रूप भयंकर न होने पावेगा, जुकाम का रूप भयंकर तब होता है और इस तरह से शरीर स्थित मल को जो जुकाम का मूल कारण माना जाता है, बाहर निकल जाने से रोक दिया जाता है।

कदाचित् ही कोई ऐसा व्यक्ति मिले जिसे कभी सर्दी न हो बहुत लोगों को जाड़ों में सर्दी अवश्य हो जाया करती है। सर्दी जिसको जुकाम भी कहते हैं, बहुत व्यापक, कपटदायक एवं असुविधाजनक रोगों में से एक रोग है जिसको अगर समझदारी के साथ तत्काल उपचार करके दूर न कर दिया जाय तो वही निमोनिया, ब्रोंकाइटिस इन्फ्लोएन्जा पीनल तथा तपेदिक जैसे भयानक और प्राणलेवा रोगों का जन्मदाता बन जाता है।

16.7 प्राकृतिक चिकित्सा :–

1. एक गिलास सहता हुआ गर्म पानी सुबह के समय नाक से पियें।
2. प्रतिदिन एक बाद पीठ पर गुनगुने पानी की धार छोड़े।
3. दो मिनट तक सूर्य के सामने पीठ करके धूप में बैठें।
4. कांच के हरे गिलास में जल भरकर नित्य 2–2 चम्मच जल भोजन के बाद पिएं।
5. प्रतिदिन गर्म पानी में 1 नीबू निचोड़कर पिएं
6. मुंह में जरा सा फिटकरी रखकर धीरे–धीरे चूसें

सत्य/असत्य बताइये

1.खांसी अपने आप मे काई बिमारी नही है यह शरीर मे स्थित रोग का एक लक्षण है।
2.खंसी होने पर ठंडी चीजों का सेवन करना चाहिए।
3.सर्दी जुकाम मे नाक पर तथा नाक के भीतर सरसों का तेल लगाना चाहिए।
4.सीने मे कफ की रुकावटमालूम होने पर गरम पानी मे तौलिया भिगों कर दिन मे दो बार सेकना चाहिए।

16.8 सारांश

1. ठंडी चीजें जैसे दही ठंडे फल तथा ठंडी सब्जियों आदि का सेवन करने से बचें।
2. सोकर उठने के बाद तुरन्त मुंह न धोएं, ठण्डी हवा में ना घूमें।

3. गर्दन को गर्म मफलर से ढककर रखें तथा गर्मी के जुकाम में कूलर की हवा से बचें।
4. गाय का दूध, चाय, कॉफी, चोकर का काढ़ा, काली मिर्च, तुलसी तथा अदरक का काढ़ा दिन में 3 बार अवश्य लेते रहें।
5. गर्म पानी से स्नान करें या शरीर को साफ पोछें।
6 खांसी होने पर ठण्डी चीजें का सेवन करने से बचें। जैसे – ठण्डी फल, सब्जियां, दही आदि से परहेज करें।
7. खांसी होने पर गर्म पानी को ही उपयोग में लायें।
8. खांसी होने पर काली चाय में तुलसी के पत्तों को मिलाकर उसका सेवन करें।
9. खांसी होने पर काली मिर्च अदरक आदि का उपयोग करने से खांसी में फायदा मिलता है।
10. ज्यादा दिनों तक अगर खांसी ठीक न हो तो तुरन्त डॉक्टर की सलाह लें।

16.9 शब्दावली

मानसिक	चित्त, मन, बृद्धि
उपचार	ईलाज
एलर्जी	संक्रमण
उपचारक गुण	ठीक करने की शक्ति

16.10 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1.सत्य
2.असत्य
3.सत्य
4.असत्य

16.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ.राकेश जिन्दल, प्राकृतिक आर्युविज्ञान, आरोग्य सेवा प्रकाशन, पंचवटी, उमेशपार्क मोदीनगर, उत्तर प्रदेश
2. नौटियाल डॉ. विनोद प्रसाद, योग और वैकल्पिक चिकित्सा, किताब महल, 22 सरोजिनी मार्ग, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 2012

16.12 निबन्धात्मक प्रश्न

प्र 0 खांसी क्या है खांसी रोग की उत्पति व कारण बताइये।
प्र0 प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार खांसी के कारण बताते हुए खांसी से बचाव के लिए कुछ घरेलू उपाय बताइयें।
प्र0 जुकाम के बारे मे बताते हुए उसकके लक्षण कारण सावधानियॉ व जुकाम से बचने के घरेलू उपाय बताइये।

इकाई 17 अस्थमा- कारण लक्षण एवं प्राकृतिक चिकित्सा

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3. प्राकृतिक चिकित्सा का सामान्य परिचय
17.4. दमा का परिचय
17.4.1 दमा के प्रमुख लक्षण
17.4.2 दमा के प्रकार
17.5 प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा दमा का उपचार
17.6 सारांश
17.7 शब्दावली
17.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
17.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
17.10 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

यह एक निर्विवाद सत्य है कि आज की सभ्यता की भागदौड़ में मानव समुदाय शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से जर्जर दिनों–दिन दुर्बल एवं मानसिक रूप से असंतुष्ट होता चला जा रहा है इतना ही नहीं उसका दिन का चैन एवं रात की नींद प्रभावित होते चले जाने से तनावजन्य रोगों से एवं मनोविकारों में बड़ी तेज से अभिवृद्धि हुई है।

सभ्यता की प्रगति से आधुनिक विज्ञान ने अनेकानेक साधन मनुष्य को उपलब्ध करवाये हैं जिससे एक समुदाय इन साधनों का दास बनकर रह गया है, वहीं दूसरी ओर स्वास्थ्य के आहार–विहार सम्बन्धी नियमों की जानकारी के अभाव में एक बहुसंख्यक समुदाय जो गांवों कस्बों में निवास करता है अपेक्षाकृत अधिक जल्दी रोगी एवं वृद्ध होता चला जा रहा है।

आधुनिक विज्ञान ने बहुत अधिक प्रगति की है उसने हमें अनुकों अनुदान दिये हैं, चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में निरोग बनाने एवं आयु बढ़ाने सम्बन्धी प्रयोग पिछले दो तीन दसकों में पूरे विश्व में हुये हैं उतने प्रयोग सम्भवतः गतपांच शताब्दियों में भी नहीं हुये हैं, फिर क्या कारण है कि मनुष्य अपनी जीवन शक्ति निरन्तर खोता जा रहा है। मनोशारीरिक एवं असहाय शारीरिक व्याधियां, कैंसर, हृदय रोग, मधुमेह, क्षय रोग, श्वांस सम्बन्धी रोग, जैसे दमा, मानसिक विक्षिप्तता एवं गुप्त रोगियों की संख्या दिनों–दिन बढ़ रही है।

गाँवों में आज भी 50 प्रतिशत से अधिक मौतें दूषित जल, अज्ञानता, स्वच्छता का अभाव और समय पर औषधि न मिलने से होती है, आंकड़ों के अनुसार चिकित्सालयों की इतनी संख्या होने पर भी रोगियों की संख्या में कमी नहीं हुई है फिर भी हम किस प्रकार से भविष्य के लिये स्वास्थ्य की गारण्टी ले सकते हैं यह बहुत ही विचारणीय प्रश्न है, समस्याओं का समाधान केवल चिकित्सालयों को खोलने से नहीं होगा क्योंकि स्वास्थ्य और रोग दोनों अलग–अलग महत्व के विषय है, यदि स्वास्थ्य अच्छा होगा तो जीवन शक्ति भी अधिक होगी तो रोग उत्पन्न ही नहीं होंगे तब चिकित्सालयों की आवश्यकता एवं उन पर खर्च करने की आवश्यकतायें भी नहीं होंगी।

भारतीय आयुर्वेदाचार्य आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व वर्तमान में उत्पन्न परिस्थितयों से परिचित हो गये थे इसी कारण षट कर्म, नैति, बस्ती, नौति, नाटक, कपालभांति जैसे क्रियाओं की खोज की थी, जिससे शरीर में रोग के लक्षण उत्पन्न ही न हों और यदि किसी भूलवश रोग हो भी जाये तो प्राकृतिक तत्वों जैसे तेल, मिट्टी, हवा, जड़ी–बूटी, मालिस, एक्यूप्रेशर चुम्बक, प्राणिक, हीलिंग, द्वारा उन रोगों पर तुरन्त नियन्त्रण प्राप्त कर लिया गया, इस तरह की पद्धतियों को प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग चिकित्सा पद्धति नाम से जाना गया।

17.2 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों इस विषय को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि

1. प्राकृतिक चिकित्सा क्या है।
2. प्राकृतिक चिकित्सा कैसे की जाती है।
3. प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा दमा का उपचार कैसे संभव है।

17.3 प्राकृतिक चिकित्सा का सामान्य परिचय

यदि हम अपनी दिनचर्या में बदलाव करें अर्थात संतुलित, आहार, स्वच्छता, रहन–सहन हमारे चारो ओर का वातावरण, इस पर ध्यान दिया जाये तो शारीरिक एवं मानसिक रोगों को काफी हद तक कम किया जा सकता है क्योंकि आज प्रत्येक व्यक्ति परेशान, व्याकुल, चिंता, तनाव, भय तथा शारीरिक रूप से सिरदर्द, कमरदर्द, अधिक पसीना, तीव्र हृदय गति, भूख की कमी, सीने में जलन और शारीरिक शिथिलता परिलक्षित होती है।

अतः हमारा मुख्य उद्देश्य ऐसे शारीरिक एवं मानसिक मनोविकारों के उपचार में प्राकृतिक चिकित्सा बहुत अधिक उपयोगी है।

प्राकृतिक चिकित्सा दो स्तरों पर कार्य करती है :–

1. व्यक्तिगत स्वास्थ्य स्तर
2. सामुदायिक स्वास्थ्य स्तर

1. व्यक्तिगत स्वास्थ्य स्तर :–

इस स्तर पर प्राकृतिक चिकित्सा निम्न स्तरों पर कार्य करती है :–

(क) शारीरिक शुद्धि
(ख) तेल मालिस
(ग) नख (नाखुन)
(घ) पैरों की सफाई
(ङ) आँख, कान और नाक की सफाई
(च) उदर की सफाई
(छ) हमारे चारों ओर वातावरण तथा सही आदतें

(क) शारीरिक शुद्धि :–

स्वास्थ्य के लिये शुद्धि बहुत आवश्यक है इसलिये शरीर के प्रत्येक अंग की सफाई आवश्यक है अतः प्राकृतिक चिकित्सा में वैज्ञानिक स्नान का ज्ञान कराकर शरीर की स्वच्छता बनाये रखने पर बल देती है।

(ख) तेल मालिश :–

हमारी त्वचा के अन्दर दो प्रकार की ग्रन्थियाँ होती है पहले तेल की ग्रन्थि तथा दूसरी पसीने की, तैलीय ग्रन्थि शरीर को मुलायम रखने के साथ रक्त परिसंचालन को

भी ठीक रखता है, इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा वैज्ञानिक मालिस का महत्व एवं तकनीक का ज्ञान उपलब्ध करवाती हैं।

(ग) नाखून :–नाखूनों की सफाई बहुत आववश्यक है इन्हें काटकर सदैव छोटा रखना चाहिये, क्योंकि नख में मैल जमा होने के कारण जीवाणुओं का निवास स्थल बन जाता है जो भोजन के समय हमारे आमाशय में पहुँचकर विभिन्न रोगों का जन्मदाता सिद्ध होता है।

(घ) पैरों की सफाई :–गर्म जल से पैरों की सफाई करनी चाहिये, क्योंकि पैर की अंगुलियों में मैल जमा होने के कारण चर्म रोग उत्पन्न हो जाते हैं अतः इनकी सफाई आवश्यक होती है।

(ङ) आँख, कान और नाक की सफाई :– हवा के माध्यम से धूल, कान और जीवाणु हमारी नाक और आँख में प्रवेश कर जाते हैं कुछ आँसुओं में बाहर आहर आ जाते हैं लेकिन कुछ अचेत अवस्था में वहीं रह जाते हैं। अतः स्वच्छ पानी के छीटें से आँख की सफाई हो जाती है और स्नायुतन्त एवं मस्तिष्क को अतिरिक्त बल मिलता है।

नाक की सफाई भी अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि नाक से एक ऐसा विशेष प्रकार का तरल निकलता है जो बाहर से प्रवेश करने वाले रोगाणुओं को नष्ट कर देता है लेकिन यदि मैल तथा गन्दगी जम जाती है तो उसका प्रभाव कम हो जाता है जिससे श्वांस सम्बन्धी रोग एवं फेफड़ों को प्रभावित करता है। अतः प्राकृतिक चिकित्सा में जल नैति, पर विशेष बल दिया जाता है जिससे नाक के दोनों छिद्र साफ रहें तथा फेफड़ों को स्वच्छ हवा मिल सके।

(च) उदर की सफाई :– समय–समय पर उदर की सफाई करनी चाहिये जिससे पाचन तन्त्र सामान्य रूप से कार्य करता रहे एवं स्वस्थ पाचन प्रणाली का विकास हो सके, इसके लिये प्राकृतिक चिकित्सा कुंजल क्रिया पर बल देती है जिससे उदर स्वच्छ एवं साफ रह सके।

(छ) हमारा पर्यावरण एवं सही आदतें :– प्राकृतिक चिकित्सा पर्यावरण के साथ–साथ सही आदतों पर बल दती है जैसे शान्त वातावरण, स्वच्छ वायु, सूर्य रश्मि का सेवन इत्यादि, अतः हम इसे निम्न भागों में बाँट सकते हैं जैसे :–

(1) स्वच्छ वायु एवं सूर्य की रश्मि का सेवन
(2) गहरी श्वांस
(3) आराम–विश्राम व मनोरंजन
(4) निरन्तर व्यायाम
(5) पर्याप्त नींद
(6) संतुलित भोजन

2. सामुदायिक स्तर :–

प्राकृतिक चिकित्सा सामुदायिक स्वास्थ्य के लिये निम्न क्षेत्रों में अपनी भूमिका निभाती है :–

(क) स्वास्थ्य शिक्षा
(ख) समुचित पोषण
(ग) सुरक्षित जल आपूर्ति
(घ) मल मूत्र का उचित निष्कासन

(ङ) स्वच्छता एवं सफाई प्रबन्धन
(च) जीवाणु एवं रोगाणु पर नियन्त्रण
(छ) शारीरिक शिक्षा
(ज) विद्यालयीन स्वास्थ्य शिक्षा
(झ) विवाह मंत्रणा
(ञ) परिवार मंत्रणा
(ट) मनोरंजन सेवाओं का प्रबन्ध

प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा रोगों का उपचार :–

प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा सामान्य एवं जटिल रोग जैसे – दमा, टी.बी., मधुमेह, उच्च रक्तदाब सम्बन्धी अनेक रोगों का उपचार किया जाता है।

इसी क्रम में हम प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा दमा (Asthma) के बारे में जानकारी प्राप्त करते हुये इसके उपचार पर भी बात करेंगे।

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में प्रयोग चिकित्सायें :–

प्राकृतिक चिकित्सा पंचमहाभूत द्वारा की जाती है शरीर का निर्माण पांच तत्वों से हुआ है जैसा कि एक कवि द्वारा कहा गया है :–

''पवन पानी पृथ्वी प्रकाश और आकाश
पंच भूत के खेल, बना जगत का पाश''

शरीर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का एक छोटा सा अंग है

यथापिंडे तथा ब्रह्माण्डे

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में प्राकृतिक रूप से चिकित्सा की जाती है।

1. **आकाश :–**

आकाश ब्रह्माण्ड का आधार है उपवास द्वारा इस तत्व की प्रापित की जाती है हमारे शरीर में या शरीर के भतर दो रन्ध्रों के बीच की जगह ही आकाश है, यदि हम उपवास रखकर इस जगह यदि बनाकर रखते हैं तो निरोग रहकर लम्बा जीवन–यापन कर सकते हैं।

2. **वायु चिकित्सा :–**

वायु के द्वारा प्राण चलायमान होता है एक आदमी सोलह–अठ्ठारह बार श्वांस लेता है और ली गई श्वांस से हमें प्राणदायनी ऑक्सीजन प्राप्त होती है जो कि शरीर एवं मन को शान्ति एवं शक्ति प्रदान करती है जो रक्त को शुद्ध करती है एवं प्रत्येक कोशिका, उत्तक व संस्थान को स्वस्थ रखती है।

3. **अग्नि चिकित्सा :–**

अग्नि को देवता मानकर उसकी उपासना करने का विधान शास्त्रों से मिलता है, अग्नि के अधिष्ठाता भगवान सूर्य हैं, सूर्य भगवान की उपासना, वेदों मे और उपनिषदों में मिलता है योगी सूर्य नमस्कार प्रातःकालीन में ही करते हैं, सूर्य की किरणों में विभिन्न रंग होने के कारण रंग द्वारा चिकित्सा की जाती है कांच की विभिन्न रंग की बोतलों में जल भरकर उनमें से गुजारा जाता है जिस कारण यह जल औषिधीय रूप ले लेता है और रोग विनाश करने में यह रामबाण सिद्ध हुआ है।

4. **जल :–**

हमारे शरीर में 70–75 प्रतिशत जल होता है यह जल न केवल शरीर की सफाई करता है अपितु रोग निवारण में भी बहुत उपयोगी होता है। अग्नि समन करने, मिट्टी गीली करने में भी इसका प्रयोग किया जाता है ठण्डे व गर्म जल के अलग–अलग चमत्कारिक उपयोग है।

कटि स्नान, गर्म जलपाद, ठंडा जल पाद, भाप स्नान, एनिमा पूर्ण चादर लपेट, रीढ़ स्नान, जल नेति में इसका उपयोग किया जाता है।

5. **पृथ्वी** :–मानव की उत्पत्ति तत्व से हुई है इनमें ही हमारा पालन–पोषण, विकास एवं विनाश होता है, जड़ी–बूटी, पेड़ पौधे सभी इसमें पाये जाते हैं। पृथ्वी को ही मिट्टी कहते हैं इस मिट्टी में घर बनाने तथा विष मारने की क्षमता होती है मिट्टी में अनेक प्रकार के खनिज लवण होने से उनके कई चमत्कारित प्रभाव से अनेक लाभ प्राप्त होते है।

रज स्नान, बालू भक्षण, मिट्टी की गर्म व ठण्डी लपेट इत्यादि से स्वास्थ्य वर्धन प्राप्त करते हैं।

17.4 दमा का परिचय

दमा अंग्रेजी शब्द अस्थमा का हिन्दी रूपान्तरण है जिसका अर्थ है जीर्ण सूजन की बीमारी जैसा कि नाम से प्रतीत होता है दमा अर्थात दम का घुटना अर्थात श्वांस लेने में कठिनाई होना।

जब फेफड़ों की नलियों में किसी कारणवश अकड़न या संकुचन उत्पन्न होता है तो श्वांस लेने में तकलीफ होती है, यही अवस्था श्वांस रोग, दमा या अस्थमा कहलाती है, यह रोग ज्यादातर प्रौढ़ स्त्री–पुरूषों को होता है, कुछ एक मामलों में यह आनुवांच्छित भी होता है। कभी–कभी नाक के भीतर फोड़ा बनते उपदंश (Blonkitis) जरायु या डिम्बकोश के रोग से भी दमा हो जाता है।

17.4.1 दमा के लक्षण :–दमा एक फेफड़ों की समस्या है जहां हवा के मार्ग (Respiratory system) प्रभावित होता है, यह श्वसन मार्ग में रूकावट या बाधा लाता है, जिससे श्वसन तन्त्र को ऑक्सीजन की कमी के कारण रोगी को घुटन जैसा महसूस होता है। जिससे उन्हें सांस लेने में तकलीफ होती है, इस रोग को दमा नाम से जाना जाता है क्योंकि अधिकतर यह श्वसन प्रकार का दमा का सामना करना पड़ता है।

श्वसनी दमा के लक्षण एवं कारक :–

व्यक्ति की प्रतिरक्षा प्रणाली और एलर्जी के लिये प्रतिरोध के स्तर के आधार पर दमा के कारण अलग होते हैं प्रतिरोध के उच्च स्तर श्वसन में हवा के बहाव की रूकावट का कारण बनता है, हालांकि सांस की मांशपेशियां दिन या हृदय को ऑक्सीजन पंप करने के लिये बहुत अधिक मेहनत करती है तथा समय के साथ ज्यादा तनाव के कारण अधिक कमजोर हो जाती है।

मांशपेशियों पर श्वसन और हवा के आदान प्रदान की प्रक्रिया की सहायता करने के बावजूद रक्त नलिकायें सहायता करने के लिये असमर्थ होती है जिसके परिणामस्वरूप श्वसन तन्त्र प्रभावित होता है तथा मांसपेशियों की ऐठन और श्वसनी दीवार मार्ग अवरूद्ध हो जाता है। ठण्डी और शुष्क हवा, धुंआ प्रदूषण, परागकण धूल कवच तनाव, चिंता और श्वसन संक्रमण जैसी एलर्जी कारकों से आप में दमा के विकास की संभावना में वुद्धि हो जाती है।

श्वसनी दमा के कुछ प्रमुख लक्षण :–

1. सांस लेने में तकलीफ
2. सीने में भारीपन
3. सीने में दर्द
4. घबराहट
5. अत्यधिक खांसी
6. अधिक थकान

हर व्यक्ति में यह लक्षण एक समान नहीं हो सकते हैं लेकिन श्वसनी दमा का सामना करने वाले लोगों में श्वसनी दमा के हल्के व गंभीर लक्षणों के उतार चढ़ाव देखते को मिल सकते हैं और श्वसनी दमा का अटैक भी आ सकता है, आमतौर पर श्वसनी दमा लाइलाज है लेकिन उसे रोकने के कई उपाय हैं जिसमें हवा फिल्टर का उपयोग करके, अपने पर्यावरण को नियन्त्रित करना धूल मुक्त गद्दे व तकिये के कवर को सुनिश्चित करना तथा बहुत अधिक ठण्ड और शुष्क मौसम की स्थिति से बचना।

आहार :–

अस्थमा रोगियों को इस बात का ध्यान देना चाहिये कि उन्हें अस्थमा का अटैक ना पड़े यानि उन्हें अस्थमा अटैक से बचाने वाले आहार पर भी खास ध्यान देना चाहिये कई बार अस्थमा रोगियों को यह पता नहीं होता है कि जिस आहार को वे ले रहे हैं उससे उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

अस्थमा को बढ़ाने वाले खाद्य पदार्थ :–

अस्थमा के मरीजों को दूध और इससे बनने वाले खाद्य पदार्थ जैसे दही, आइसक्रीम, पनीर घी इत्यादि से बचना चाहिये क्योंकि इनसे कफ, खाँसी तथा छींक जैसी समस्यायें बढ़ जाती है।

प्रोसेस्ड फूड :–

इस तरह के खाद्य प्रदार्थ रोगियों के लिये नुकसान देय होते हैं क्योंकि प्रोसेस्ड फूड लेने से साधारण अस्थमा एलर्जिक अस्थमा में बदल जाता है, खासतौर पर उन रोगियों को जिन्हें अस्थमा का अटैक पड़ता रहता है।

नट्स :–इनके सेवन में न सिर्फ अस्थमा पीड़ितों की समस्यायें बढ़ जाती है अपितु अटैक भी जल्दी–जल्दी पड़ने लगते हैं ऐसे में अस्थमा के मरीजों को नट्स के सेवन से बचना चाहिये।

17.4.2 दमा या अस्थमा के प्रकार

दमा फेफड़ों को खासा प्रभावित करता है दमा के कारण व्यक्ति को श्वसन सम्बन्धी कई बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है दमा सिर्फ युवाओं और व्यक्तियों को ही नहीं अपितु बच्चों को भी अपनी चपेट में ले लेता है। हालांकि अस्थमा के इलाज के लिये इनहेलर भी दिया जाता है लेकिन इनहेलर के दुष्प्रभाव भी होते हैं। इसके अलावा सवाल ये उठता है कि दमा एक प्रकार का होता है या विभिन्न प्रकार का, आइये जानते हैं दमा के प्रकार का होता है या विभिन्न प्रकार का, आइये जानते हैं दमा के प्रकार।

एलर्जिक अवस्था :–

एलर्जिक अवस्था के दौरान आपको किसी चीज से एलर्जी है जैसे धूल– मिट्टी के सम्पर्क में आते ही आपको दमा हो जाता है या फिर मौसम परिवर्तन के साथ ही आप दमा के शिकार हो जाते हैं।

नॉन एलर्जिक अस्थमा :–इस तरह के अस्थमा के कारण किसी एक चीज का एक्सट्रीम पर जाने से ऐसा होता है जब आप बहुत अधिक तनाव में हो, या बहुत तेज–तेज हंस रहे हों या बहुत अधिक ठण्ड लग रही हो या बहुत अधिक खांसी जुकाम हो।

निमिक अस्थमा :–जब आपको स्वास्थ्य सम्बन्धी कोई बीमारी जैसे निमोनियां, कार्डियक जैसी बीमारी हो तो आपको निमिक अस्थमा हो सकता है आमतौर पर मिमिक अस्थमा अधिक तबियत खराब होने पर होती है।

चाइल्ड ऑनसेट अस्थमा :– यह अस्थमा का वह प्रकार है जो सिर्फ बच्चों को होता है अस्थमैटिक बच्चा जैसे–जैसे बड़ा हो जाता है तो बच्चा अपने आप ही अस्थमा से उबरने लगता है यह ज्यादा रिस्की तो नहीं होता है पर समय पर इसका उपचार जरूरी होता है।

एडल्ट ऑनसेट अस्थमा :–यह अस्थमा युवाओं को होता है और अक्सर 20 वर्ष की आयु के बाद होता है इस प्रकार के अस्थमा के पीछे कई एलर्जिक कारण छिपे रहते हैं हालांकि इसका मुख्य कारण प्रदूषण, प्लास्टिक अधिक धूल–मिट्टी और जानवरों के साथ रहने पर होता है। विश्व अस्थमा दिवस 03 मई को माना जाता है विश्व अस्थमा दिवस मई महीने के पहले मंगलवार को पूरे विश्व में घोषित किया गया है।

अस्थमा रोगियों को पूरे जीवन भर विशेष सावधानियां अपनानी पड़ती है अस्थमा रोगियों हर मौसम में अतिरिक्त सावधानियां अपनानी पड़ती है तथा सांस ही अतिरिक्त सुरक्षा की भी आवश्यकता पड़ती है।

मिस्क्ड अस्थमा :–इस प्रकार का अस्थमा किसी भी कारण से हो सकता है कई बार ये अस्थमा एलर्जिक कारणों से, या नॉन एलर्जिक कारणों से हो सकता है इतना ही नहीं इस प्रकार के अस्थमा होने के कारण का पता लगाना थोड़ा मुश्किल भी होता है।

एक्सरसाइज इनड्यूस अस्थमा :–कई लोगों को शारीरिक सक्रियता के कारण अस्थमा हो जाता है तो कई लोग क्षमता से अधिक कार्य करने लगते हैं तो वे अस्थमा के शिकार हो जाते हैं।

कफ वेरियंट अस्थमा :– कई बार अस्थमा का कारण वेरिएंट होता है जब आपको लगातार कफ की शिकायत रहती है या खांसी के दौरान अधिक कफ आता है तो आपको अस्थमा का अटैक पड़ सकता है।

आक्यूपेशनल अस्थमा :– यह अस्थमा अटैक अचानक काम के दौरान पड़ता है यदि आप नियमित रूप से एक ही जैसा काम करते हैं इस दौरान आपको अस्थमा का अटैक पड़ने लगते हैं या आपको अपना कार्यस्थल सूट नहीं होता हो जिससे अस्थमा अटैक पड़ जाता है।

नाइटटाइम या नॉर्क्टनल अस्थमा :– यह एक विशेष प्रकार का अस्थमा होता है जो निश्चित समय पर अटैक आता है या अक्सर रात के समय अस्थमा अटैक पड़ने लगे तो यह समझना चाहिये कि आप नॉर्क्टनल अस्थमा के शिकार हैं।

17.5 प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा अस्थमा या दमा का उपचार

प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा अस्थमा का उपचार :–

1. तुलसी और अदरक का रस दोनों को 3–3 ग्राम शहद के साथ सेवन करें।
2. सफेद प्याज का रस 2 चम्मच तथा शहद दो चम्मच दोनों को मिलाकर पियें।
3. मदार की जड़ 10 ग्राम अजवायन 5 ग्राम तथा गुड़ 10 ग्राम सबको पीसकर छोटी–छोटी गोलियां बनाकर प्रतिदिन 2 गोली गर्म पानी के साथ खायें।

4. गेहूं के हरे पौधे का रस नित्य पियें।

उपवास का प्रयोग करें रात में यदि भोजन न लें तो उत्तम रहेगा या अदरक नीबू तुलसी का काढ़ा बनाकर सेवन करें।

दमा या अस्थमा के प्राकृतिक उपचार में निम्न उपाय किये जा सकते हैं।

1. सुस्ती या कमजोर निर्गमन अंगों को बल प्रदान करना
2. रोग जनक पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने के लिये समुचित आहार कार्यक्रम अपनाना, ताकि फेफड़ों को बल मिले उनमें लचीलापन आये और श्वांस प्रणाली तेज हो।

रोगी को एनीमा देकर उसकी आंतों की सफाई करनी चाहिये, ताकि उनके पेट में विसंगति न पनप सके, पेट में गीली पट्टी रखने से बिना पचे हुये खाद्य पदार्थ सड़ नहीं पायेंगे, आंतों की क्रिया तेज होने के जल्दी ही पानी में भीगा कपड़ा रखने फेफड़ों की जकड़न कम होगी और उन्हें बल मिलता है रोगी को भाप स्नान करवाकर उसका पसीना बहाया जा सकता है जिससे फेफड़ों की जकड़न दूर होगी।

शरीर की प्रणाली को पोषक तत्व प्रदान करने के लिये तथा हानिकारक तत्व बाहर निकालने के लिये रोगी को कुछ दिन तक रोज फलों का रस ही लेना चाहिये, एक गिलास रस के साथ एक गिलास गुनगुना पानी हर दो–दो घण्टे बाद सुबह 8 बजे से शाम 8 बजे तक लेना चाहिये।

किन्तु विसंगत खाद्य पदार्थों से दूर ही रहें तो उचित होगा अस्थमा रोगी को अपनी क्षमता से कम ही खाना बेहतर रहता है धीरे–धीरे भोजन को चबाकर खाना रहता है तथा भोजन के साथ 20 मिनट पहले या बाद ही पानी लेना चाहिये।

उचित और सही प्रकार का भोजन करने से श्वांस नलियों का संक्रमण नियंत्रण में रहता है श्वांस नलियां खुल जाती है बलगम या कफ पिघलकर पतला हो जाता है या बिखर जाता है और दमे का दौरा दूर हो जाता है और साथ ही रोगी को खाद्य पदार्थों से होने वाली एलर्जी से भी बचा जा सकता है।

रोगी को धूलवाले स्नान, ठंडी जलवायु, दमा भड़काने वाले भोजन मानसिक तनाव एवं दबाव आदि से दूर ही रहना चाहिये।

सत्य/असत्य बताइये

1. अस्थमा के मरीजों को दूध और दही के द्रव्य से दूर रहना चाहिए।
   (सत्य/अस्त्य)
2. अस्थमा वाले रोगी को श्वास लेने में तकलीफ नहीं होती हैं
   (सत्य/असत्य)
3. फेफड़ों की नलियों में संकुचन होना अस्थमा का कारण है।
   (सत्य/असत्य)
4. अस्थमा का एक प्रकार एलर्जी अस्थमा भी है।
   (सत्य/असत्य)
5. अस्थमा का सम्बन्ध श्वासन तंत्र से नहीं है।
   (सत्य/असत्य)

17.6 सारांश

प्राकृतिक चिकित्सा अद्भुत एवं अद्वितीय है, सारी चिकित्सा पद्धतियों में एक ही विषय है मानव शरीर, परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा को छोड़कर अन्य चिकित्सा पद्धति रोगों का बाह्य कारण ढूँढती है – कीटाणु विषाणु फफूँद इत्यादि, परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा में रोग का कारण बाहर नहीं अपितु अन्दर मानव का आहार– विहार एवं चिन्तन भी माना जाता है इनके कारण विजातीय द्रव्य उत्पन्न होते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा इस विजातीय द्रव्य को बाहर निकालती है जिसका निकालना तीव्र ज्वर कहलाता है इस तीव्र ज्वर को औषधि के जरिये या अन्य प्रक्रियाओं द्वारा जब दबाया जाता है तो विकार शरीर में कम होते दिखते हैं और यदि औषधि का सेवन करने का तरीका यही रहा तो यह शरीर में कम तीव्र से शरीर में जीर्ण रोग का रूप ले लेते हैं जो आगे चलकर मारक रोग में रूपान्तरित हो जाते हैं।

जबकि प्राकृतिक चिकित्सा जिसका चिकित्सा के रूप में अपने साधनों द्वारा रोग की चिकित्सा ही नहीं करती बल्कि रोगी के रोग प्रतिरोधक घमता को बढ़ाकर उसको मानसिक एवं शारीरिक संतुलन प्रदान करती है।

17.7 शब्दावली

शक्ति	=	ताकत
संतुलित		बराबर (सम)
प्रचलित		प्रसिद्ध, सामाजिक
उपचारक गुण		ठीक करने की शक्ति

17.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

(1) सत्य
(2) असत्य
(3) सत्य
(4) सत्य
(5) असत्य

17.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. डॉ.विनोद प्रसाद नोटियाल, वैकल्पिक चिकित्सा, किताब महल, 22 सरोजिनी मार्ग, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 2012
2. डॉ.रजनी नोटियाल, योग द्वारा मानसिक आरोग्य , किताब महल, 22 सरोजिनी मार्ग, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 2012
3. कुवल्यानन्द यौगिक चिकित्सा, कैवल्यधाम, लोनावाला.
4. डॉ.प्रमोद मालवीय, शरीर क्रिया विज्ञान, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 38 यू.ए जवाहर नगर बंगलो रोड, दिल्ली, 2012
5. हरिकृष्ण बाखरू ,रोगों का प्राकृतिक उपचार, प्रभात प्रकाशन, 2012

17.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्र0 1. दमा के प्रमुख लक्षण व उनके प्रकारों की व्याख्या करें।

प्र0 2. प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा दमा का उपचार किस तरह सम्भव है।

इकाई 18 साइनोसाइटिस - कारण लक्षण एवं प्राकृतिक चिकित्सा

18.1. प्रस्तावना
18.2 उद्देश्य
18.3. प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा रोगों का उपचार
18.4. साइनोसाइटिस का सामान्य परिचय
18.4.1 साइनोसाइटिस के कारण
18.5 प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा साइनोसाइटिस का उपचार
18.6 सारांश
18.7 शब्दावली
18.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
18.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
18.10 निबन्धात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना :–

प्राकृतिक चिकित्सा अर्थात ''प्रकृति का प्रकृति के द्वारा इलाज''।
सरल शब्दों में हम कह सकते हैं कि उन्हीं प्राकृतिक तत्वों की सहायता से लाईलाज बीमारियों का इलाज किया जा सकता है जिन से मिलकर जीवों की शरीर रचना हुयी है।

आधुनिक काल में मानव समुदाय जो कि समस्त जैविक समुदायों से अधिक प्रबल एवं बुद्धिमान है जिसने आज के युग में अविश्वसनीय कार्य कर दिये हैं। हम सभी भली प्रकार से जानते हैं कि करोड़ों वर्ष पूर्व मानव भी जानवरों की तरह जंगलों में निवास करता था तथा अन्य जीवों की तरह आचार–व्यवहार करता था। तब न तो विभिन्न प्रकार की चिकित्सा प्रणालियां थीं और न हीं किसी प्रकार की शल्य प्रणाली।

तब हम सोचने के लिए मजबूर हो जाते हैं कि क्या मानव तब बीमार नहीं होते थे, या तब मानव के साथ कोई दुर्घटना नहीं होती थी, या मानव को कोई प्रकृति जन्य बीमारी नहीं होती थी।

या फिर हम पुनः उन जंगली जानवरों पर एक बार विचार करे जो आज भी जंगलों में निवास करते हैं क्या उनको कोई बीमारी नहीं लगती और अगर लगती है तो क्या वे इस बीमारी के चलते मर जाते हैं और यदि वह फिर भी सामान्य हो जाते हैं तो कैसे ? किस चिकित्सक के द्वारा इनका इलाज करवाया जाता है और कौन सी दवाईयां उनको दी

जाती है जिनसे इनके रोगों का निवारण हो जाता है तो इन तमाम सवालों का एक मात्र उत्तर आपको मिलेगा की वह चिकित्सक प्रकृति है और वह दवाई भी प्रकृति ही है।

उदाहरण के लिए हम देखते हैं कि किसी पशु को किसी कारणवश कोई चोट लगती है और खून बहने लगता है बिना किसी बाह्य सहायता के भी हम देखते हैं कि वह खून अपने आप 2 से 7 मिनट के अन्दर बन्द हो जाता है, और कुछ दिन बाद हम देखते हैं कि बिना किसी ईलाज के वह घाव भी भर जाता है, इसका एकमात्र कारण है कि जब प्रकृति ने हमारी रचना की तो उसमें हमारे अन्दर एक ईम्युन, रक्षात्मक तन्त्र, (Immun System) की भी रचना की है, जो समय–समय पर बाह्य उिद्धपनों से हमारे शरीर की रक्षा करता है।

प्रस्तुत लेख से मैंने यह समझाने का प्रयास किया है कि जीवों का शरीर पंच महाभूत तत्वों से मिलकर बना है (आध्यात्मवाद के अनुसार) जो तत्व निम्न हैं :–

1. पृथ्वी तत्व – शरीर का बाह्य आकार व बनावट
2. आकाश तत्व – शरीर के अन्दर का खाली भाग जैसे (उदर गुहा)
3. जल तत्व – शरीर का तरल भाग
4. वायु तत्व – स्नायु तन्त्र
5. अग्नि त्वचा – जहर अग्नि

इन पांचों तत्वों में किसी प्रकार की असममितता के कारण यदि शरीर के किसी भाग में शिथिलता या अत्यधिकता आ जाती है और शरीर में विकार उत्पन्न हो जाते हैं तो इन्हें पंचतत्वों के द्वारा उनका निवारण भी किया जा सकता है।

स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के क्षेत्र में ''प्राकृतिक चिकित्सा'' को सर्वोपरि चिकित्सा प्रणालियों में सम्मिलित करने के प्रयास में इस लेख पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास किया गया है।

सम्पूर्ण प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली अत्यन्त विस्तारित प्रणाली है किन्तु इस लेख में मैं ''साइनोसायटिस'' नामक बीमारी के उपचार कारण एवं प्राकृतिक पहचान के सम्बन्ध में समझाने का प्रयास करूंगा।

18.2 उद्देश्य :–

- इस अध्याय मे विद्यार्थी साइनोसाइटिस का सामान्य परिचय जान सकेगें।
- इस अध्याय मे संक्रमणके कारण एंव विषय मे भी जान सकेगें।
- इस अध्याय मे विद्यार्थी साइनोसाइटिस की प्राकृतिक चिकित्सा के बारे मे जान सकेगें।

18.3 प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा रोगों का उपचार :–

प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा सामान्य एवं जटिल रोगों का जैसे दमा, टी.वी., मधुमेह, उच्च रक्तचाप, साइनोसाइटिस अनेक रोगों का उपचार किया जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा में रोगों का कारण बाहर नहीं अपितु अन्दर मानव का आहार, विहार एवं चिन्तन को माना जाता है इनके कारण विजातीय द्रव्य उत्पन्न होते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा इस विजातीय द्रव्य को बाहर निकालती है जिसका निकलना तीव्र ज्वर कहलाता

है इस तीव्र ज्वर को अन्य पद्धतियों के द्वारा दबा दिया जाता है तो विकार शरीर में कम होते दिखाई देते हैं और इसी प्रकार के चलते शरीर जीर्ण रोग का रूप ले लेता है, जो आगे चलकर मारक रोगों का रूप ले लेती है।

जबकि प्राकृतिक चिकित्सा अपने साधनों द्वारा रोग की चिकित्सा ही नहीं करती बल्कि रोगी के रोग प्रतिरोध क्षमता को बढ़ाकर मानसिक एवं शारीरिक संतुलन प्रदान करती है।

अग्रलिखित लेख में हम सामान्यतः मुख्य बिन्दुओं पर चर्चा करेंगे :–

1. साइनोसाइटिस का सामान्य परिचय
2. साइनस के प्रकार
3. संक्रमण के संकेत एवं लक्षण
4. संक्रमण का कारण
5. साइनोसाइटिस की प्राकृतिक चिकित्सा

18.4 साइनोसाइटिस का सामान्य परिचय :–

मेडिकल डिक्सनरी के अनुसार साइनोसाइटिस साइनस की श्लेष्मा झिल्ली (Mucus Membrane) में होने वाली सूजन (Information) है और खास तौर पर ये Paranosal वाले साइनस पर होती है।

साइनस :–साइनस हमारे चेहरे के पास वाली हड्डियां (Bones) में कुछ छोटे–छोटे स्थान होते हैं जो कि हवा से भरे होते हैं और नमीदार बने रहते हैं, यह साइनस श्लेष्मा झिल्ली द्वारा ढके होते हैं, और बाह्य संक्रमण से इसकी रक्षा करते हैं।

साइनस के प्रकार :–

साइनस निम्न प्रकार के हैं :–

1. Paranassal Sinuse
2. In frontal Bone (आंखों के ऊपरी हिस्से में दर्द)
3. In Ethomoidal Bone (आंखे तथा नाक के ऊपरी भाग में)
4. In Maxillary Bone (दाढ़ की हड्डी में दर्द हो सकता है)
5. In Sphenoidol Bone (कर्ण मूल व खोपड़ी में दर्द)

हाल में ही एक शोध में पता चला है कि Ethamoiclol Bone में स्थित साइनस पर कवच (Fungus) के संक्रमण से सूजन आ जाती है और लगातार इस संक्रमण के बड़ने से Brontal Bone में भी संक्रमण बढ़ने से Migrane होने लगता है।

जिन लोगों को Migrane pain होता है उन्हें नाक से गाढ़ा बहाव (Thick nassal discharge) नहीं होता है और यह साइनस संक्रमण का सामान्य लक्षण है।

संकेत और लक्षण (Signs & Symptoms) :–

- प्रभावित साइनस पर एक सूस्त व लगातार सिर दर्द, चेहरे पर दर्द
- संक्रमित साइनस पर तेज दर्द होता है जो झुकने एवं खांसने में बढ़ जाता है
- सिर में तेज दर्द
- कभी–कभी नाक से खून आता है

- नाक में रूकावट व गले में खरास रहते हैं।
- रोगी को ज्वर बढ़ जाता है
- साइनस संक्रमण भी नासिका मार्ग की भीड़ की वजह से माध्य कान समस्याएं पैदा कर सकते हैं।

जटिलतायें (Complications) :–

साइनस के लिए मस्तिष्क के करीब निकटता विशेष रूप से संक्रमण से मस्तिष्क के ललाट और फन्नी के आकार की साइनस सबसे खतरनाक संक्रमण दर्शाता है।

अवायवीय जीवाणु हड्डियों व रक्त वाहिकाओं के माध्यम से फोड़े, दिमागी बुखार आदि बीमारियों को उत्पन्न कर सकते हैं।

साइनस पर किसी प्रकार के संक्रमण से श्लेष्मकला पर नमी की कमी आ जाने से ये झिल्ली सूखी (Rough) हो जाती है तथा Airway से आने वाले संक्रामक कीटाणु साइनस पर सूजन पैदा कर देते हैं, यदि समय रहते इसका ईलाज न किया जाय तो ये धीरे–धीरे बढ़ने लगता है और नई बीमारियों को जन्म देने लगता है जैसे Mannignitis, Migraines आदि।

18.4.1 राइनोसाइटिस के कारण (Causes of sinusitosis) :–

- एलर्जी
- अधिक समय तक सर्दी वाले मौसम में रहने से
- दांतों की जड़ों में इनफेक्सन होने से
- सायनस में किसी कारणवश चोट लगने से
- संक्रमित खून का साइनस में जाने से
- संक्रमिक पानी में नहाने से
- कफ की मात्रा बढ़ने से
- छाती में संक्रमण होने से

साइनोसाइटिस साइनस पर होने वाले संक्रमण से होने वाली बीमारी है जिसके उपरोक्त मुख्य कारणों से हमें पता चलता है कि ये Mucus membran में आने वाली Drayness के कारण होती है।

साइनस पर जो नमी बनी रहती है ये बाहर से आने वाले कारकों से सायनस की रक्षा करता है किन्तु संक्रमण के कारण यह झिल्ली रफ हो जाती है और इसमें सूजन आ जाती है और धीरे–धीरे वह बड़ी बीमारी का रूप धारण कर लेती है।

यदि प्राकृतिक चिकित्सा की दृष्टि से हम देखे तो साइनस में नमी कम होना जल तत्व की कमी है तथा वायु तत्व का अशुद्ध होना है।

18.5 प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा साइनोसाइटिस का ईलाज

साइनोसाइटिस का प्राकृतिक ईलाज या उपचार के लिये निम्न उपाय किये जा सकते हैं। जैसे सुस्ती या कमजोर निर्गमन अंगों को बल प्रदान करना रोगी पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने के लिये समुचित आहार कार्यक्रम को अपनाना, शरीर का पुनर्निमाण करना, शरीर की कमजोरी को दूर करना, कुछ समय के लिये मलहम द्वारा साइनोसाइटिस रोगी के लिये

राहत तो मिलती है लेकिन इसे दबाने से गंभीर बीमारी जन्म ले सकती है इसके लिये रक्त को साफ रखना आवश्यक है।

उपचार को शुरू करने से पहले उपवास रखना जरूरी है तत्पश्चात कुछ दिन तक फलों के रसपान या नारंगी के रस से शरीर में जहरीले शारीरिक विकार त्वचा के रास्ते बाहर निकल जाते हैं।

उपचार के दौरान रोगी को चाय, कॉफी, शराब, सुगंधित खाद्य पदार्थ, सफेद आटा से दूर रहना ही अच्छा रहता है।

साइनोसाइटिस रोगी के लिये कच्ची सब्जी का रस कॉफी फायदेमंद होता है रोगी को मुख्यतः गाजर का रस, या पालक का रस गुनगुने पानी के साथ लेना चाहिये, जो इसके लिये रामबाण सिद्ध है जहां तक संभव हो ताजी हवा, स्वच्छ पानी का 2–3 लीटर गुनगुना पानी प्रतिदिन लेना आवश्यक है। साइनोसाइटिस में गरम पानी पट्टी लगायें इस पट्टी को 20–30 मिनट तक रहने दें, स्नान करते समय इसकी सफाई आवश्यक है।

इसके अलावा मिट्टी की चिकित्सा का इसके ईलाज में महत्वपूर्ण योगदान है। साइनोसाइटिस मुख्यतः साइनस पर सूखापन आने के कारण बाह्य तत्व का संक्रमण हो जाता है इस संक्रमण को दूर करने के लिए सम्पूर्ण साइनस पर नमी लाने के लिए जल चिकित्सा का प्रयोग करना भी उपयुक्त माना गया है।

इसके अलावा मिट्टी धातु पर संक्रमण दूर करने के लिए मिट्टी का लेप कर बाह्य संक्रमण को दूर कर मिट्टी तत्व की कमी पूरी करने को भी प्राकृतिक चिकित्सकों द्वारा उपयुक्त माना है।

इसके अलावा शुद्ध जलवायु एवं शुद्ध खान–पान को विशेष महत्व दिया गया है एवं ताजे रसदार फलों का सेवन भी महत्वपूर्ण है।

सत्य/असत्य बताइये

1. संक्रमित साइनस पर तेज दर्द होता है। जो झुकने एंव खासने मे बढ जाता है।।
2. साइनस वाले रोगी नाक मे रुकावट व गले मे खरास रहती है।
3. साइनोसाइटिस साइनस पर होने वाले संक्रमण से होने वाली बीमारी नही है।
4. साइनोसाइटिस रोगी के लिए कच्ची सब्जी का रस काफी फायदेमंद है।
5. साइनस मे मिटटी की चिकित्सा का इलाज बहुत महत्पूर्ण है।

18.6 सारांश

विभिन्न प्राकृतिक चिकित्सकों का मानना है कि प्राकृतिक चिकित्सा प्रकृति के द्वारा दी गयी वह प्रणाली है जो शरीर के किसी एक विकार को तो दूर करती ही है और इसके साथ–साथ अन्य जन्म लेने वाली बीमारियों को भी दूर करती है।

जबकि इसके विपरीत आज की चिकित्सा प्रणाली जो कि किसी एक बीमारी के निवारण के साथ–साथ अन्य नई बीमारी को जन्म दे देती है।

उदाहरण के लिए दर्द की अवस्था में ली जाने वाली एलोपैथिक दवा Diclofenac या Paracetamol दर्द तो कम कर देती है किन्तु दूसरी अल्सर (Ulcer) जैसी खतरनाक बीमारी को जन्म दे देती है और इसी प्रकार विभिन्न दवाईयों से नई–नई बीमारियों का जन्म होता जा रहा है।

इन तमाम पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करने के बाद कुछ प्राकृतिक चिकित्सकों ने प्रकृति के द्वारा ईलाज की प्रणाली पर फोकस किया है एक इस प्रणाली को आधुनिक समाज में प्राथमिकता दिलाने का संकल्प लिया है।

18.7 शब्दावली

ईम्युन	रक्षात्मक
मानसिक	चित्त, मन, बृद्धि
एलर्जी	संक्रमण
प्रचलित	प्रसिद्ध, सामाजिक
उपचारक गुण	ठीक करने की शक्ति

18.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

उत्तर

1.सत्य

2.असत्य

3.सत्य

4.असत्य

18.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ.विनोद प्रसाद नोटियाल, वैकल्पिक चिकित्सा, किताब महल, 22 सरोजिनी मार्ग, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 2012
2. डॉ.रजनी नोटियाल, योग द्वारा मानसिक आरोग्य , किताब महल, 22 सरोजिनी मार्ग, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 2012
3. कुवल्यानन्द यौगिक चिकित्सा, केवल्यधाम, लोनावाला.
4. डॉ.प्रमोद मालवीय, शरीर क्रिया विज्ञान, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 38 यू.ए जवाहर नगर बंगलो रोड, दिल्ली, 2012
5. हरिकृष्ण बाखरू ,रोगों का प्राकृतिक उपचार, प्रभात प्रकाशन, 2012

18.10 निबन्धात्मक प्रश्न

प्र01 साइनोसाइटिस के बारे मे बाताते हुए इसके कारणों को समझाइये।

प्र02 प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा साइनोसाइटिस का क्या उपचार है।